TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS
FESTIVAL
विश्व रंग
BHOPAL (INDIA)

पंजीयन क्रमांक MPHIN 37775

वनमाली कथा

वर्ष-1, अंक-12, जनवरी, 2023

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका

www.cvrump.ac.in | Follow us On :

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Madhya Pradesh, Khandwa AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Recognized by : UGC Approved by : M.P. Govt.

ACCELERATING
With changing times.

Unlimited access to eLearning materials with Learning Management System (LMS)

- 10,000+ Student registered
- 500+ Faculties Conducting Online Classes
- 4500+ Classes Conducted

Reach the heights of success

Programmes Offered

Arts | Paramedical | Science | Agriculture | Commerce
Management | Computer Science & Information Technology
Education | Bachelor of Vocational (B.Voc)
Master Vocational Studies (M.Voc)

Integrated future-ready courses in association with

AISECT Future Skills ACADEMY | coursera | Red Hat | Micro Focus Software University

Prominent Features

- Best Infrastructure
- Scholarship On Merit Basis
- Features Like Online teaching, LCD Projectors and E-Learning
- Effective placement and training support
- Optional Skills Course
- International academic research and cultural partnership
- Quality Education & Meaningful research

Our Top Recruiters

Infotech | AIS | Hexaware | AUCB | IBM | ICICI | ORACLE | ASTHA | airtel | Patn | L&T Infotech | BSNL | MCL

ADMISSION OPEN 7000456427, 9907037693, 07320-247700/01

SCAN TO VISIT THE WEBSITE

For enquiries & other information, contact us at:

University Campus: Village Balkhadsura, Post - Chhaigaon Makhan, Khandwa, Madhya Pradesh, 450771 **Email:** admission@cvrump.ac.in

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका
वर्ष-1, अंक-12, जनवरी, 2023

प्रबन्ध सम्पादक
सिद्धार्थ चतुर्वेदी

सम्पादकीय सम्पर्क
वनमाली कथा
वनमाली भवन
ई-7/22, एसबीआई, अरेरा कॉलोनी
भोपाल-462016 (म.प्र.)
फोन : 91-755-4851056
मो. 09875370979 (सम्पादन)
09893100979 / 09826493844 (प्रसार)
ईमेल : vanmali@aisect.org

प्रबन्धक : महीप निगम
शब्द संयोजन : रवि चौहान, मुकेश रघुवंशी
कार्यालय सहायक : अशोक कनाडे, राहुल गोयल

मूल्य : 50 रुपये (एक अंक)
वार्षिक : 500 रुपये, **त्रैवार्षिक :** 1200 रुपये

Online Transaction
Benificary Name : **VANMALI**,
State Bank of India, Mahavir Nagar Branch, Bhopal.
Bank A/c 40865384472, IFSC Code SBIN0003867
ध्यान रहे, शुल्क जमा करने के बाद प्रपत्रक को 9893100979 पर जरूर ह्वाट्सऐप करें।

वनमाली कथा से सम्बन्धित सभी विवादास्पद मामले केवल भोपाल न्यायालय के अधीन होंगे। इसमें प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे *वनमाली कथा* की सहमति अनिवार्य नहीं है। साथ ही, उनके मौलिक अथवा अप्रकाशित होने का उत्तरदायित्व भी सम्पादक और प्रकाशक का नहीं है।

प्रकाशक-मुद्रक : सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशंस, ई-7/22, एसबीआई, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 के लिए प्रकाशित तथा मुद्रित। **सम्पादक :** कुणाल सिंह

संरक्षक
संतोष चौबे

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा

सम्पादक
कुणाल सिंह

सहायक सम्पादक
संजय सिंह राठौर, ज्योति रघुवंशी

आईसेक्ट पब्लिकेशन

स्थानिकता का विश्वरंग

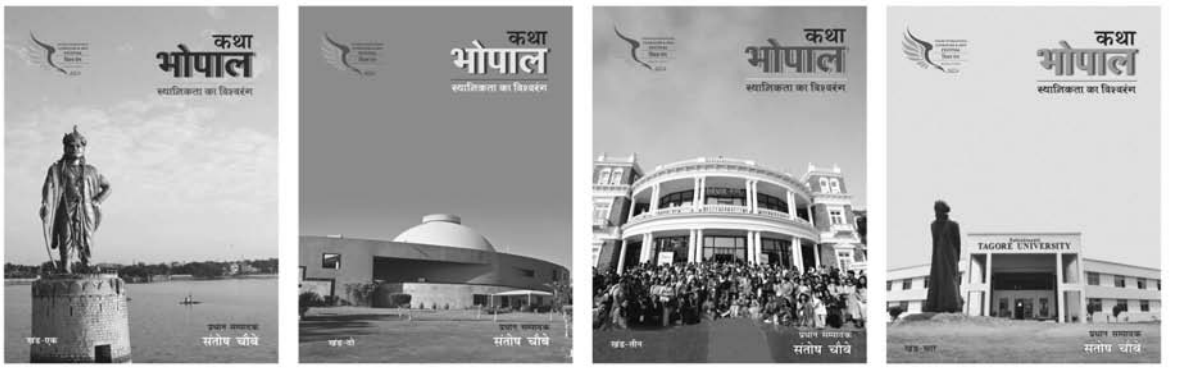

कथा भोपाल

(4 खंडों में)

प्रधान संपादक : **संतोष चौबे** संपादक : **मुकेश वर्मा**

शहर, उसका वातावरण, उसके पात्र कथा को एक स्थानिकता प्रदान करते हैं, घटनाएँ वायवीय न होकर स्वाभाविक नज़र आती हैं और शहर के साथ-साथ चलती मनोजगत की यात्रा आपको भीतर से समृद्ध करती चलती है। कथावस्तु अंततः एक वैश्विक स्वरूप ग्रहण करती है। कहानी हमारे सामने उपस्थित यथार्थ का भाष्य करती है और एक विश्वसनीय संसार का निर्माण करती है, सॉमरसेट मॉम ने कहा भी है कि कहानी में लेखक 'सत्य' का चित्रण नहीं करता, वह जो चित्रण करता है, वह सत्य की तरह लगता है। स्थानिकता कहानी को वह आधार प्रदान करती है जो उसे विश्वसनीय बनाये। स्थानिकता से शुरू हुई यात्रा वैश्विकता पर समाप्त होती है।

इस यात्रा में मैं मुकेश वर्मा, महेंद्र गगन, बलराम गुमास्ता, कुणाल सिंह और ज्योति रघुवंशी जैसे अपने मित्रों से साथ चलने का अनुरोध करता हूँ। हम सब खुशी-खुशी इस यात्रा पर निकल पड़ते हैं, जिसे 'कथा मध्यप्रदेश' और 'कथादेश' के बाद अब 'कथा विश्व' तक जाना है। यह स्थानिकता का विश्वरंग होगा। इस यात्रा के तीसरे पड़ाव के रूप में 'कथा भोपाल' आपके सामने है।

- संतोष चौबे

मूल्य : 600 रु. (प्रत्येक खंड), सम्पूर्ण सेट के क्रय पर विशेष छूट देय

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका
वर्ष-1, अंक-12, जनवरी, 2023

दस्तखत / 5
इनबॉक्स / 7
मुख्तसर / 12
देशकाल / 107

किरदार

सूरज प्रकाश : उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' का विस्थापन अभी जारी है... / 16

कथेतर

चन्द्रकान्ता : बाहर अमरीकी भीतर भारतीय / 18

पुनःपाठ

शर्मिला बोहरा जालान : ऐ लड़की– आधुनिकता और परम्परा का द्वन्द्व / 24

दस कहानियाँ

उषाकिरण खान : उसी देहरी पर / 28
जया जादवानी : तलाश / 33
अल्पना मिश्र : लड्डू बाबू मरने वाले हैं / 40
पंखुरी सिन्हा : अभी बस इतना ही / 46
विभा रानी : शब-ए-माहताब में / 54
विनीता चौबे : सुई, निर्माता / 69
ममता सिंह : बंकर / 71
इन्दिरा दाँगी : पापा जल रहे हैं / 78
उजला लोहिया : कियारा और जंगल / 85
एनी ऐर्नो : लौटना (कथाविश्व– फ्रांस) / 91

दस कविताएँ

बाबुषा कोहली, सपना भट्ट, रक्षा दुबे, पल्लवी त्रिवेदी,
अर्चना लार्क, जमुना बीनी, श्रुति कुशवाहा,
विशाखा मुलमुले, हर्षा श्री और निवेदिता दिनकर की कविताएँ / 63

आसपास

डॉ. अर्चना शर्मा मिश्र : भाषा में स्त्री की भागीदारी / 94

लेखाजोखा

साधना अग्रवाल : वर्ष 2022 की स्त्री-रचनाशीलता / 97

गुडबुक

प्रज्ञा : स्त्री-संघर्ष की यात्रा / 102
(चाँद गवाह : उर्मिला शिरीष)
मनीषा कुलश्रेष्ठ : जिन्दगी में यकीन की कहानियाँ / 104
(मुझे जुगनुओं के देश जाना है : सबाहत आफरीन)

अन्ततः

मुकेश वर्मा : सत्कथा कही नहीं जाती / 114

आवरण

आईसेक्ट कला प्रभाग

भीतरी रेखांकन

एस. विनीता

दस्तखत

'वनमाली कथा' का यह बारहवाँ अंक है। इस अंक के साथ पत्रिका के प्रकाशित होते एक वर्ष हो जाएँगे। इतने कम समय में 'वनमाली कथा' को लेखकों-पाठकों का जो स्नेह व सहयोग प्राप्त हुआ है, वह हमारे अनुमान व अपेक्षा से कहीं अधिक है। इसके लिए एक अदद धन्यवाद शब्द सर्वथा अपर्याप्त है। आगे हमारा यही प्रयास रहेगा कि हम आपके भरोसे को बनाये रखते हुए अपने देशकाल का सृजनात्मक प्रतिनिधित्व करते रहें। नयी सदी की नयी रचनाशीलता को प्रश्रय व प्रोत्साहन देना हमारा सर्वोपरि लक्ष्य है। हमारी कोशिश रहेगी कि लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका के रूप में हमारी छवि पूर्ववत् प्रतिष्ठित रहे।

यह अंक अघोषित रूप से स्त्री-रचनाशीलता पर केन्द्रित है। यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि स्त्री-रचनाशीलता से हमारा आशय स्त्री-विषयक रचनाशीलता नहीं, यहाँ बस स्त्री-लेखकों (हालाँकि यह शब्द-युग्म अपनी संरचना में निरर्थक है, इसके प्रयोग को सहूलियत के अर्थ में लिया जाए) की रचनाओं का सम्मिलन-भर है। हमारे समय में रचनाशील दस स्त्री-लेखकों की कहानियाँ और दस कवयित्रियों की कविताएँ इस अंक में दी जा रही हैं। हमें प्रसन्नता है कि इस अंक के लिए उषाकिरण खान, जया जादवानी, अल्पना मिश्र, पंखुरी सिन्हा, विभा रानी, विनीता चौबे, ममता सिंह, इन्दिरा दाँगी और उजला लोहिया ने अपनी कहानियाँ दीं। 'कथाविश्व' के अन्तर्गत गत वर्ष साहित्य के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित फ्रेंच लेखिका एनी ऐर्नो की कहानी दी जा रही है। इस कहानी का अनुवाद किया है युवा कवि-कथाकार निशान्त उपाध्याय ने।

'दस कविताएँ' स्तम्भ के अन्तर्गत हर बार की तरह किसी एक कवि की दस कविताओं को न लेकर कविता के प्रदेश में सृजनरत दस युवा कवयित्रियों की

कविताओं को शामिल किया जा रहा है। बाबुषा कोहली, सपना भट्ट, रक्षा दुबे, पल्लवी त्रिवेदी, अर्चना लार्क, जमुना बीनी, श्रुति कुशवाहा, हर्षा श्री, विशाखा मुलमुले और निवेदिता दिनकर की कविताएँ इस अंक का विशिष्ट आकर्षण बन पड़ी हैं।

इसके अलावा 'कथेतर' में वरिष्ठ कथाकार चन्द्रकान्ता का यात्रा-संस्मरण प्रकाशित है। इससे गुजरते हुए आप पायेंगे कि अमेरिका में बसे भारतीय परिवारों की स्त्रियाँ किस पसोपेश से दो-चार हैं। 'किरदार' में सूरज प्रकाश ने उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के किरदारों को पुनर्सृजित किया है। हिन्दी में स्त्री-साहित्य (इस शब्द-युग्म को भी पूर्ववत् लें) में कृष्णा सोबती के लघु उपन्यास 'ऐ लड़की' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'पुनःपाठ' के अन्तर्गत शर्मिला बोहरा जालान ने इसी रचना को नये आलोक में देखने का यत्न किया है। 'आसपास' में अर्चना शर्मा मिश्र ने भाषा में स्त्री की भागीदारी पर विचार करते हुए स्त्रीभाषा के स्वरूप में आ रहे बदलावों की गहन पड़ताल की है। 'गुडबुक' के अन्तर्गत वरिष्ठ लेखिका उर्मिला शिरीष के पहले उपन्यास 'चाँद गवाह' पर प्रज्ञा और युवा लेखिका सबाहत आफरीन के पहले कहानी-संग्रह 'मुझे जुगनुओं के देश जाना है' पर मनीषा कुलश्रेष्ठ ने कलम चलायी है। साधना अग्रवाल ने वर्ष 2022 में विविध विधाओं में प्रकाशित स्त्री-रचनाकारों की पुस्तकों का लेखाजोखा प्रस्तुत किया है। 'देशकाल' में पत्रिका की सहायक सम्पादक ज्योति रघुवंशी एवं 'अन्ततः' में प्रधान सम्पादक मुकेश वर्मा पूर्ववत् उपस्थित हैं।

फरवरी 2023 का अंक 'वनमाली कथा' के प्रकाशन के दूसरे वर्ष का पहला अंक होगा। पत्रिका की साज-सज्जा में परिवर्तन के साथ-साथ हम कुछ नये स्तम्भों के साथ उपस्थित होंगे। पत्रिका की बेहतरी की दिशा में आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

'वनमाली कथा' के लेखकों-पाठकों और शुभचिन्तकों को पत्रिका-परिवार की ओर से नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ।

(कुणाल सिंह)

• इंस्टाग्राम पर हमसे जुड़ने के लिए @vanmali_e7 पर फॉलो करें

इनबॉक्स

आह्लादकारी अनुभव की कहानी 'चेरी और नाना'

वनमाली कथा का सितम्बर अंक विशिष्ट है क्योंकि इसमें एक नहीं, वरन दो-तीन कहानियाँ स्मरणीय हैं। 'फोकस' में पंकज सुबीर की कहानी 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' एक मनोरोगी के विभाजित मनोविज्ञान का खुलासा है, जो डॉक्टर की बुद्धि और सिद्धि की परीक्षा लेता रहता है। इसके अतिरिक्त युवा कथाकार राकेश दूबे की कहानी 'औरंगजेब मुर्दाबाद', बशीर मियाँ का किरदार खड़ा करने में कामयाब है।

संतोष चौबे की लम्बी कहानी 'चेरी और नाना' सितम्बर अंक की सबसे सहज-सरस और सशक्त रचना लगी। कहानी का प्रवाह मानो चेरी का सरित प्रवाह। जल-भीरु नाना के समस्त डर को धता बताती, अपनी बात मनवाती चेरी एक कामयाब किरदार है। बहुत दिनों बाद ऐसी कहानी पढ़ी जिसे परिवार का हर सदस्य पढ़कर प्रेरित हो सकता है। नाना के पास किताबी ज्ञान है तो चेरी के पास वास्तविक। तैरने के लिए पानी में उतरना पड़ता है, यह सीधी-सी बात नाना को चेरी समझाती है। इधर कहानी इतनी वयस्क हो गयी है कि वयस्क लोग भी उससे कतराते हैं। उनके बीच संतोष चौबे की कहानी 'चेरी और नाना' एक आह्लादकारी अनुभव है।

– ममता कालिया, गाजियाबाद (उ.प्र.)

सकारात्मक और व्यापक बदलाव की कहानी

वनमाली कथा, अक्तूबर 2022 में मो. आरिफ की कहानी 'इनाम' दिल को छूती गयी और बरबस पढ़ती गयी। पढ़ने के साथ-साथ मन कहता गया कि ऐसा ही तो चल रहा है सचमुच। शीर्षक, कहन और भाषा में रवानगी के साथ-साथ प्लॉटिंग बिल्कुल दुरुस्त। बाजारवाद और फासीवाद के बीच उलझा चरित्र अब्दुल मियाँ– कहानी का नायक– अपनी उलझन को सुलझाने के लिए राम उमेद बाबू से सहायता माँगता है। वे सहायता देते भी हैं। जहाँ बुजुर्ग, राजनीति-प्रेरित समाज के नौजवानों की अराजकता को सँभालते हुए लोकतन्त्र की रक्षा में लगे हैं और नादान बच्चे (वैभव) जो वास्तव में हर युग, हर समय में सच्चे कोमल मन से लैस होते हैं, वहीं आज का नौजवान भ्रमित होता है। इस तरह कहानी में वर्तमान राजनीति से प्रेरित, घर और समाज की कहानी कहते हैं मो. आरिफ। इस कहानी को पढ़कर कहा जा सकता है कि जैसे सिनेमा देखे-समझे जाने पर सकारात्मक और व्यापक बदलाव की उम्मीद होती है, वैसा बदलाव बिल्कुल सम्भव है। इस तरह की कहानियों को पढ़कर पाठक के विचार भी लोकतान्त्रिक हो सकते हैं। यानी सकारात्मक बदलाव कहानी को पढ़कर सम्भव किया जा सकता है, सिर्फ पर्दे पर सिनेमा की कहानी ही बदलाव सम्भव नहीं करती।

– आभा बोधिसत्व, मुम्बई

ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे

'वनमाली कथा' में पंकज सुबीर की कहानी 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' पढ़ी। इसका पात्र राकेश कुमार बड़ा अपना-सा लगा। आज वातावरण में ऐसी तरंगें विचरण कर रही हैं जिन्होंने लोगों की सहनशीलता को समाप्त कर दिया है। कोविड से पहले, कोविड के समय और कोविड के बाद की नकारात्मकता जो चारों तरफ छायी हुई है, समझ में आती है। पर पूरे विश्व की हवाओं में असहिष्णुता बहुत पहले से छायी हुई है। राकेश कुमार जैसे कई विवेकशील व्यक्ति जो स्वस्थ चिन्तन और विचार-विमर्श करना चाहते हैं, घर और परिवार में अलग-थलग हो रहे हैं, सोशल मीडिया पर उनका बहिष्कार हो रहा है।

पंकज ने बहुत खूबसूरती से इस विषय को पिरोया है। यह कहानी हर उस बुद्धिजीवी की है, जिसका विवेक जाग्रत है। राकेश कुमार जैसे बहुत-से लोग इस दुनिया में मिसफिट हैं और किसी अनजान जगह या किसी टापू पर जाकर रहना चाहते हैं। नया माहौल और नया वातावरण अपनी सोच और विचारों से निर्मित करना चाहते हैं। 372 साल पहले इंग्लैंड से ऐसे ही लोगों ने पलायन किया था और अमेरिका में आ बसे थे, जो वहाँ के सिस्टम और मूल्यों के खिलाफ थे, वहाँ के समाज में मिसफिट थे।

वर्तमान समय में धर्म की परिभाषा ही बदल गयी है। कुछ समझने-समझाने का समय ही नहीं रहा। इस पार जाओ या उस पार, मध्य रास्ता अब समाप्त होता जा रहा है। पंकज सुबीर ने राकेश कुमार के चरित्र और मानसिक गुत्थियों को बहुत बारीकी से उकेरा है। लेखक ने नॉस्टैल्जिक भाव को 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' के साथ पूरी कहानी में खूबसूरती से बिखेरा है। यह भाव संवेदनाओं को चित्रित करने में सहायक होता है। मनोविज्ञान के एक बारीक तन्तु को पकड़कर कथानक बुना गया है। राकेश कुमार की संवेदना को तीन भागों में बाँटा है, जिससे राकेश कुमार का चरित्र सीधे पाठकों के दिल तक पहुँचता है। गाँव में बीते बचपन का समय, जिसने राकेश को सुरक्षा और भावनात्मक सहयोग दिया। फिर शहर में बीता समय और अधेड़ अवस्था में असुरक्षित होने पर फिर उसी सुरक्षा और भावनात्मक सम्बल की ओर मुड़ना, जो उसे बचपन में मिली होती है।

बरसात ने कहानी में माहौल बना दिया। पंकज सुबीर की लेखनी की यह विशेषता है, हर कहानी में वह अपने पात्रों की मन:स्थिति के अनुसार वातावरण उत्पन्न करते हैं। एक बढ़िया कहानी के लिए पंकज को बधाई।

– सुधा ओम ढींगरा, इंग्लैंड

कथा-पत्रिका ही नहीं, एक सम्पूर्ण पत्रिका

'वनमाली कथा' ने बहुत कम समय में एक विशिष्ट पत्रिका के रूप में साहित्यकारों और आम पाठकों के बीच अपनी जगह बना ली है। यह एक कथा-पत्रिका के रूप में भले शुरू हुई हो, लेकिन अब यह केवल कथा-पत्रिका नहीं रह गयी है। यह एक सम्पूर्ण पत्रिका के रूप में स्थापित हो गयी है। इसमें कथा है, कथेतर गद्य है, कविता है, यात्रावृत्त है, कला है। इसमें दूसरी भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं में मुकम्मल रचनात्मक आवाजाही भी है। यह इस पत्रिका की तेजस्विता का ही परिणाम है कि अपने आरम्भिक काल में ही इसे फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स ने पुरस्कृत किया है।

इसका नया अंक (अक्तूबर 2022) हाल में मुझे प्राप्त हुआ। बसन्त त्रिपाठी की कविताएँ आकर्षित करती हैं। 'उदासी मनुष्य न हो पाने की पीड़ा है/ वह हमें और ज्यादा मनुष्य बनाती है।' बसन्त जी अपनी कविताओं में आज की छद्म आधुनिकता को विमर्श का मुद्दा बनाते हैं। उनकी पीड़ा हम सबकी पीड़ा है। 'न रात कटती है/ न अँधेरा छँटता है।' लेकिन एक ऐसी अजीब तड़प और अवशता भी वे छिपाते नहीं, जो हम सब पर तारी है– 'तीली? है तो सही/ पर जरा गीली है/ बारूद भीग गया है/ रगड़ से जलेगा नहीं।' यह अंक पिछले अंकों की ही तरह पठनीय है। इस सुन्दर, गम्भीर और सामग्री से अँटी पत्रिका को निरन्तर इसी रूप में निकालते रहने का श्रेय इसके सम्पादक मंडल को जाता है। संरक्षक संतोष चौबे जी और प्रधान सम्पादक मुकेश वर्मा जी के साथ युवा कथाकार एवं सम्पादक कुणाल सिंह को इसका श्रेय मिलना ही चाहिए।

– सुभाष राय, सं. जनसन्देश टाइम्स, लखनऊ (उ.प्र.)

पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी

'वनमाली कथा' का अक्तूबर अंक अवलोकन का सुयोग मिला। हिन्दी पत्रिकाओं की भीड़ में एक उच्चस्तरीय साहित्यिक पत्रिका पढ़कर अपने आपको प्रतिक्रिया देने से रोक नहीं पायी। सर्वप्रथम तो सम्पादक-मंडल को हार्दिक धन्यवाद। इतने कम समय में 'वनमाली कथा' पत्रिका को फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, नयी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत होने पर कोटिश: बधाई। आकर्षक आवरण से सुसज्जित लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका पढ़कर महसूस कर रही हूँ कि जहाँ लोकतन्त्र ही सर्वोपरि है, साहित्यिक मूल्य जिसका केन्द्रीय भाव है। दस्तखत, इनबॉक्स, मुख्तसर, देशकाल आरोह हैं। किरदार, कथेतर, कला-डायरी, दस कविताएँ, फोकस, छविशेष, उसने कहा था, गुडबुक, सृजन-यात्रा, दीवान, अन्तत: अद्भुत दस्तावेज हैं, जो सहृदय पाठकों को इस शब्दों के सागर में डुबकी लगाने को विवश करते हैं, क्योंकि पाठक को जिस मोती की चाह होती है, वह इस पत्रिका में समाहित है। 'देशकाल' पढ़ते हुए मैं स्वयं मानसिक रूप से विश्वरंग पुस्तक-यात्रा 2022 में शामिल हो गयी। एक सार्थक उद्देश्य के साथ नवीन चिन्तन पर आधारित समाज को नयी दिशा की गति प्रदान कर एक दिन कारवाँ बना ही लेगी। 'मुख्तसर' के समस्त आलेख विविध विषयों की यात्रा कराते हुए दिल पर अमिट छाप छोड़ते हैं। अमिता नीरव की रचना 'स्त्री होने के तर्क की आड़ में' स्त्री-मन को छूने में पूर्णत: समर्थ है। 'कथेतर' के अन्तर्गत 'शादियाँ' अशोक भौमिक की बेहतरीन रचना है जो पाठक के अन्तर्मन को गुदगुदाती है, वहीं 'छविशेष' गोदार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से रूबरू कराता है। कविताएँ जहाँ अनुभूति एवं अनुभव से परिपूर्ण हैं, वहीं कहानियाँ गद्य के उत्कृष्ट लेखन एवं शब्द-चयन के कारण पाठकों को अपनी-सी लगती हैं।

पत्रिका की सभी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। सम्पादक मंडल की अन्तर्दृष्टि एवं दूरदृष्टि 'वनमाली कथा' को नये मुकाम तक ले जाएगी। यह पत्रिका पठनीय ही नहीं, बल्कि संग्रहणीय भी है। 'वनमाली कथा' के उज्ज्वल भविष्य हेतु अनन्त एवं आत्मीय शुभकामनाएँ।

– डॉ. अनिता सिंह, बिलासपुर (छ.ग.)

चेरी और नाना

कहानी इतनी सादगी से लिखी जाए जहाँ सादगी ही शिल्प बन जाए...

करीब चालीस साल पहले का अदबी मंजर, जब आसान और मुश्किल तख्लीक पर बहस जारी थी। दो खेमों के बीच ये तकरार कि मुश्किल लिखा जाए या आसान। वो अलामती यानी प्रतीकात्मक कहानी का भी दौर था, जो बहुत गूढ़, जटिल भी हो जाती थी। प्रतीकात्मक कहानी, दरहकीकत, पाकिस्तान में फौजी हुकूमतों के रहते, अपनी बात और अपने प्रतिवाद को व्यक्त करने का बेहतर माध्यम था। हिन्दोस्तान में भी प्रतीकात्मक कहानी, उर्दू में, उन दिनों खूब लिखी गयी।

मुश्किल और आसान की बहस जारी थी कि नासिर काजमी की शायरी ने सारी बाजी पलट दी। वो पहले भी आसान ही लिखते थे– 'आये हैं इस गली से तो पत्थर ही ले चलें... क्या तुझे हो गया बता तो सही'। लेकिन अपने जीवन के आखिरी दिनों में उन्होंने चौबीस बहुत आसान, लेकिन बिम्बात्मक और प्रतीकात्मक गजलें लिखकर सबको हैरान कर दिया– 'हमारे घर की दीवारों पे नासिर / उदासी बाल खोले सो रही है' ... 'दिल तो मेरा उदास है नासिर / शहर क्यों साँय-साँय करता है'। नासिर की आसान जदीद गजल ने ऐसा माहौल बदला कि न इजाफतों का प्रचलन रहा न फारसीयत का। बहुत आसान तरीन शायरी होने लगी। सिवाय मनचन्दा बानी के, जदीद शायरों ने आसान शायरी का दामन थामा।

वही सादगी और सरलता 'वनमाली कथा' के सितम्बर अंक में शाया संतोष चौबे की कहानी 'चेरी और नाना' में देखने मिली। यह बहुत सरल और बहुत खूबसूरत कहानी है। पठनीयता और विश्वसनीयता, जिन दो तत्त्वों पर कहानी का दारोमदार होता है, वो दोनों तत्त्व कहानी को ताकतवर बनाते हैं। कहानी में यात्रा है और यात्रा में कहानी। बच्चे के साथ बच्चा हो जाना, यह कला इस कहानी के किरदार नाना में है। कहानी में गर्मजोशी है। तपाक है। जिन्दगी जीने का फलसफा है। कि बेशक बूढ़े हो जाओ, लेकिन दिल का एक कोना ऐसा भी रखें जहाँ आप बच्चे-जैसे हो जाएँ।

नाना का किरदार बेहद जीवन्त और उतनी ही चंचल चेरी है। यहाँ वो सड़ियल नाना नहीं कि मूँगफली में दाना नहीं, हम तुम्हारे नाना नहीं। यहाँ नाना 'मैन ऑफ मूमेंट्स' हैं। हर क्षण जीवन्त, जिन्दादिल और खुशतरीन। वो श्लोक बोलते हैं। वो हनुमान चालीसा बोलते हैं। यानी, जीवन-शैली कहानी की शैली है।

कहानी इतनी सादगी से लिखी जाए कि सादगी ही शिल्प बन जाए, यही इस कहानी का हासिल है। व्याकरण की तरह बात करते अदीबों के बीच एक कथाकार इतनी सरलता से कहानी लिखने का हौसला पैदा करे, यह नया मुहावरा है जनाब। बहुत मुबारक संतोष चौबे। बहुत मुबारक वनमाली कथा।

– ज्ञानप्रकाश विवेक, बहादुरगढ़ (हरयाणा)

विश्वरंग पुस्तक-यात्रा : एक सराहनीय कदम

'वनमाली कथा' के अक्तूबर अंक के सम्पादकीय 'दस्तखत' में कुणाल सिंह जी ने 'विश्वरंग पुस्तक यात्रा' के सम्बन्ध में जानकारी दी है। जानकर बेहद खुशी हुई कि यह यात्रा 2019 से चल रही है तथा इस बार मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और झारखंड राज्यों में 11 पुस्तक यात्राएँ निकाली गयी हैं। यात्राएँ 9 दिनों के लिए हैं तथा इन राज्यों के 500 से अधिक गाँवों तक जाएगी। पुस्तक-संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए यह बहुत ही सराहनीय कार्य है। इसके लिए 'विश्वरंग' के निदेशक संतोष चौबे जी को बहुत-बहुत बधाई व शुभकामनाएँ।

बताते हुए खुशी हो रही है कि उत्तराखंड में 10 वर्ष पूर्व हम लोगों ने 'शैक्षिक दखल' के नाम से विद्यालयी शिक्षा के शिक्षक-शिक्षिकाओं के बड़े वर्ग के बीच पढ़ने की संस्कृति की मुहिम आरम्भ की थी। इसके तहत शिक्षक सम्मेलनों में पुस्तक प्रदर्शनी लगाना, शिक्षा के मुद्दों पर छमाही पत्रिका का प्रकाशन, अपने घर की किताबों को पुस्तकालय में तब्दील करना, दीवार-पत्रिका जैसे अभियान शुरू करना आदि सम्मिलित था। आज उत्तराखंड में जगह-जगह अपनी-अपनी तरह से पुस्तक-संस्कृति व किताबों के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत से लोग काम कर रहे हैं। राज्य के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ में महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने न सिर्फ पुस्तकालय के लिए आन्दोलन किया, बल्कि वे निरन्तर पुस्तक-प्रदर्शनी, पुस्तक-चर्चा का आयोजन करते हैं। 'धाद' संस्था विद्यालयों की कक्षाओं में 'पुस्तक कोने' की अवधारणा पर काम कर रही है। इसके अलावा कई शिक्षक अपने घर-गाँव में पुस्तकालय खोलकर किताबों के प्रचार-प्रसार में लगे हैं। 'पहरू' पत्रिका ने कुमाऊनी भाषा के साहित्य के प्रचार-प्रसार व पुस्तक-प्रकाशन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। समय साक्ष्य, सम्भावना व काव्यांश प्रकाशन स्तरीय किताबों का प्रकाशन करने व उन्हें पाठकों तक पहुँचाने के लिए

निरन्तर पुस्तक-प्रदर्शनी व मेलों का आयोजन करते रहते हैं।

सार यही है कि किताबों से प्रेम करने वाले लोग अगर उन्हें लोगों तक पहुँचाने की भी ठान लें तो हिन्दी बेल्ट में भी पुस्तक-संस्कृति का निर्माण हो सकता है। एक बार पुनः 'विश्वरंग' को इन पुस्तक-यात्राओं के लिए बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

– दिनेश कर्नाटक, नैनीताल (उत्तराखंड)

विश्वरंग और वनमाली कथा

'वनमाली कथा' का अक्तूबर अंक पढ़ा। बहुत अच्छी प्रस्तुति के साथ बेहतरीन कुछ रचनाएँ, जो पढ़ पाया, उनकी प्रतिक्रिया हेतु यह पत्र।

'विश्वरंग' का आयोजन हुआ। इस हेतु विश्वरंग परिवार का साधुवाद। साहित्य और कला के उन्नयन हेतु ऐसे आयोजन होना अपरिहार्य हैं। मेरी शुभकामनाएँ।

इस अंक में 'मुख्तसर' स्तम्भ खास लगा। जितेन ठाकुर की स्मरण-प्रतिक्रिया अच्छी लगी। कथेतर स्तम्भ में सूरज प्रकाश, अशोक भौमिक के लेख और लीलाधर मंडलोई की डायरी महत्त्वपूर्ण हैं।

इस अंक की कहानियों में हेतु भारद्वाज, कैलाश बनवासी और रणीराम गढ़वाली की कहानियाँ पढ़ीं। तीनों कहानियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लगीं। पहली कहानी जहाँ आधुनिक राजनीति पर अच्छा कटाक्ष है, वहीं कैलाश जी ने वर्तमान डिजिटल टेक्नोलॉजी के आगे पहले के कारीगरों की दशा पर बहुत हृदयस्पर्शी कहानी दी है। रणीराम जी ने सेवानिवृत्त जीवन का बहुत वास्तविक चित्रण अपनी कहानी में किया है। अन्य रचनाएँ भी पढ़ूँगा। शुभकामनाएँ।

– शशिभूषण बडोनी, देहरादून (उत्तराखंड)

नीलाक्षी सिंह की खूबसूरत और अर्थगर्भा कहानी

'वनमाली कथा' के जून अंक में आई कहानी 'खिड़की नम्बर तीन का बयान' की लेखक हमारी पीढ़ी की सबसे कमउम्र पर सबसे वरिष्ठ लेखिका नीलाक्षी सिंह हैं। इस कहानी में उनकी शुरुआती कहानियों की-सी रवानगी है। सबसे अच्छा है नीलाक्षी का इसमें अपने पुराने सहजपन तक फिर से लौटना। यह एक परतदार कहानी है, जिसकी तमाम परतों को किसी परिचयात्मक-से लेख में समेट पाना बहुत मुश्किल है, न ही यह इस टिप्पणी का उद्देश्य ही है। फिर भी संक्षेप में कहें तो यह उनकी तमाम प्रसिद्ध कहानियों की तरह एक प्रेम कहानी है, पर थोड़ी अलग किस्म की प्रेम कहानी... वैसा प्रेम जिसमें पा लेने की कोई अतिरिक्त चाहना नहीं होती। बस साथ होने का भाव जिसमें महत होता है, वही प्रेम-जैसा प्रेम...

प्रेम के इसी अनोखेपन का एक और शेड है यहाँ– अपनी माँ के लिए उसकी जिन्दगी-भर दबाकर रखे गये प्रेम को महसूसना, उसके दर्द को बूझना और उससे एकाकार हो पाना। मूलतः एक पुरुष याकि बेटे की कहानी है यह, एक विक्षिप्त माँ के बेटे की कहानी। माँ से उसके सम्बन्ध, माँ का जीवन और उसके जन्म के इर्द-गिर्द बुनी गयी यह कहानी माँ की मृत्यु से शुरू होती है। सुनने-कहने में यह भले ही अजीब-सा लगे पर जीवन-सत्य तो यही है, 'अन्त' से 'प्रारम्भ' का आरम्भ होना।

अन्त के अलावे कुछ इकबालिया बयानों से भी शुरू होती है यह कहानी– 'मेरी माँ पागल थी और मैं उन्हें दुलारी बुआ कहते हुए बड़ा हुआ था... दुलारी बुआ का क्रिया-कर्म तीन दिनों में निबटा दिया गया था। सारी क्रियाएँ पूरी होने के अगले ही दिन मैं लौट आया था।' ...'चिता को अग्नि देते वक्त भी मैं टस से मस न हुआ और अपनी कठोरता में चिता की लकड़ियों का विस्तार ही साबित हुआ। न पूरी तरह ऐसा भी न था... मैंने जलना तो दूर सुलगना भी कबूल नहीं किया।' ...'दफ्तर में माँ के मरने की बात मैंने इसलिए नहीं बतायी कि मुझे लगा था मैं ताजा-ताजा मरी माँ के बेटे-जैसा खुद को प्रस्तुत नहीं कर पाऊँगा।'

इन बयानों में कहीं दुख है, कहीं क्षोभ, तो कहीं गहरी हताशा और उदासी। 'प्रेम नहीं था' इस बात पर अतिरिक्त जोर देना दरअसल कहीं उस प्रेम को और गाढ़े तरीके से रेखांकित करता है और इस क्रम में नीलाक्षी की शुरुआती कहानी 'धुआँ कहाँ है' की स्मृति भी दिलाता है, नकार में छिपे स्वीकार को अंगीकार करने, न करने की वही पुनरावृत्ति।

रेलवे के एक टिकट बाबू के जीवन के इर्द-गिर्द घूमती यह कहानी टिकट खिड़की पर दो चेहरों के आगमन के साथ बदल जाती है, जिसमें से एक पुरुष है (बुजुर्ग, पर ठीक उसके-जैसी शक्ल वाला) और एक स्त्री। उनकी उपस्थिति-भर से 'वह कुछ भी' रोशनलाल को स्पष्ट समझ आने और दिखने लगता है, जिन बातों पर उसने अभी तक कभी ध्यान नहीं दिया था या जिनसे यूँ ही कतराकर निकलता आया था। यहाँ तक कि उसके जन्म की वह कथा भी, जिसे वह अब तक 'ओपन ऐंड शट' किस्से-जैसा समझता रहा था। क्योंकि ननिहाल के लोग जहाँ वह बचपन से रहा और पला था, उसे यही बताना और समझाना चाहते थे।

लेकिन यह बात ऐसी ही और इतनी एकरेखीय नहीं। सच के सामने आने पर वह यह तय करने में खुद को असमर्थ पाता कि किसी भागे हुए नौकर के बेटे का बेटा होना ज्यादा दुखद है (जैसा उसके परिवार वाले उससे अब तक बताते

आये थे) या फिर किसी पागल स्त्री की नाजायज याकि अवैध सन्तान होना। यहाँ यह सबकुछ जानना एक बदली हुई दिशा से दृश्य को, यथार्थ को और पाठकों के लिए कथानक को भी देखने और जानने-जैसा है। बस दिशा बदल जाने से कहानी का पूरा परिदृश्य एकदम से अलग हो उठता है।

रोशनलाल के अपनी माँ को नये सिरे से जानने-समझने में सबसे बड़ी भूमिका स्त्री-पात्र 'सरिता कुमारी' निभाती है। वही सरिता कुमारी, जो टिकट लेने के बाद अक्सर पैसे उसे अदा 'गूगल पे' से करती है, जो उसे गुड मॉर्निंग के मैसेज रोज भेजती है। गलतफहमीवश 'गूगल पे' से बीस रुपये समय पर न मिलने के कारण जिससे, रोशनलाल की दोस्ती शुरू होती है। जो गर्भ से है और जो किसी मिठाई की दुकान में बिलिंग काउंटर पर पर्चियाँ बनाने का काम करती है। जो अपनी गर्भावस्था का बोझ अकेले अपने कन्धे पर उठा रही है। जिसे अपने बच्चे को इस दुनिया में लाने के लिए और उसे सँभालने के लिए किसी पुरुष की जरूरत और अपेक्षा नहीं है। इस कहानी में कोई चर्चा नहीं कि वह बच्चा किसका है, उसका बाप कहाँ है! है भी कि नहीं आखिर? यहाँ तक कि इस मामले में वह मुख्य पात्र रोशनलाल की सहानुभूति और मदद भी नहीं सहन कर पाती। अब शायद अलग से यह स्पष्ट करने की जरूरत नहीं रही कि सरिता भी रोशन की माँ की तरह (भावी) सिंगल मदर है और रोशनलाल के सवाल– 'पागल स्त्रियाँ माँ बन सकें, ऐसे सम्बन्ध बन जाते हैं?' के जवाब में सरिता कुमारी का यह कहना– 'पागल स्त्रियाँ माँ बनने के लिए सबसे मुफीद होती हैं' जितना व्यंजनात्मक है, उतना ही मर्मभेदी भी। पर पात्र है कि अन्य महत जगहों की तरह यहाँ भी बेहद सहज और संजीदा ढंग से करते हैं ये सारी बातचीत। जैसे कि ये सब बड़ी समान्य बातें हों, दैनन्दिन में घटने वाली रोजमर्रा की बातों जैसी ही।

इस कहानी की तीन माँएँ नानी, दुलारी बुआ और सरिता कुमारी अपने बच्चों को लेकर बेहद सजग और संवेदनशील हैं। पारिवारिक प्रतिष्ठा और इज्जत के लिए जान देने और लेने वाली नानी अपनी विक्षिप्त और गर्भवती बेटी को समाज के कहर से न सिर्फ बचा लेती है, बल्कि उनकी सबसे बड़ी चिन्ता है कि उनके बाद उनकी इस बेटी का ख्याल कौन रखेगा! इतना ही नहीं, दिन-रात परिवार वालों के उसके प्रति दुर्व्यवहार की चिन्ता भी उन्हें रहती है, जिससे बचाव के कुछ अन्यतम नुस्खे हैं उनके पास। दुलारी बुआ अर्थात् मुख्य पात्र की माँ अपनी तमाम विक्षिप्तता के बावजूद अन्य बच्चों के नाईं अपने बेटे के हाथ से खिलौने, चॉकलेट, बिस्कुट नहीं लेती। उसके पढ़ने के कमरे के आसपास शोर करते बच्चों को डाँटती और भगाती रहती है। वह अपने पागलपन में भी शायद यह जानती है कि वही उसका 'गोरका बउआ' है। वहीं सरिता कुमारी अपने बच्चे को सातवें महीने तक पेट में लिये नौकरी करती है और इस नौकरी की खातिर रोजमर्रा की यात्राएँ भी निपटाती है और इसके लिए टिकट खिड़की की लम्बी लाइन में लगा करती है।

यूँ तो कहानी एक आत्मालाप है, पर आत्मालाप से भी कहीं ज्यादा मारक हैं इस कहानी के छोटे-बड़े संवाद। यूँ तो संवाद कम हैं, पर जहाँ भी हैं अपने बेहद समर्थ स्वरूप में– ''बदल जाना एक दगाबाज शै था, इसलिए किसी भी मुकाम पर उसका बदला जाना सम्भव था। और फिर वह तो एक खिड़की का ही नाम था।''

प्रेम और घृणा के द्वन्द्व के बीच बुनी गयी यह कहानी अन्ततः प्रेम के पाले में, हवा में तैरते किसी अदृश्य गेंद की तरह आ गिरती है– 'मैं समाज ही हूँ, अपनी माँ के लिए तो समाज ही रहा। मैं आदमी कब रहा, याद नहीं।' रोशनलाल पिता-जैसा दिखते हुए भी बिलकुल अपने पिता-जैसा नहीं है। वह पिता जो उसकी माँ को गर्भवती करके चला गया था। रोशनलाल एक अपरिचित गर्भवती स्त्री का हमदर्द हुआ जाता है। ग्लानिबोध, सहृदयता, मित्रता जैसे सहज गुण उसे एक इंसान की शक्ल पिता से ज्यादा अता करते हैं।

कहानी के पूरे पटल पर बिखरा हुआ है बस 'खुद जैसा शक्ल वाले आदमी' का इन्तजार। वांछित अन्त तक पहुँचने के बावजूद ये कहानी समान्य पाठकों के लिए कई प्रश्नचिह्न छोड़ जाती है– सरिता कुमारी का फिर क्या होता है? नायक जैसा चेहरे वाला दूसरा इंसान और नायक के बीच के रिश्ते की पहेली कैसे खुलेगी? इन्हीं प्रश्नों के साथ यह कहानी पाठकों के मन में अटकी और बची रह जाती है।

कहानी जहाँ आकर समापन पर पहुँचती है, वहाँ समान मुख वाले अजनबी का एक कथन है– 'बगैर मिट्टी के भी जड़ों का जमीन से रिश्ता साबित किया जा सकता है'। यही वाक्य किसी प्रश्नसूचक चिह्न की तरह कहानी के अन्त में मुँह बाये खड़ा मिलता है– 'बगैर मिट्टी के भी जड़ों का जमीन से रिश्ता साबित किया जा सकता है?' यहाँ मिट्टी मतलब माँ है, जमीन मतलब पिता और जड़ मतलब नायक। 'साबित किये जाने' को यहाँ 'होने' के अर्थ में पढ़ा जाना ज्यादा उचित होगा।

एक खूबसूरत और अर्थगर्भा कहानी के लिए नीलाक्षी को बधाई।

– कविता, मुजफ्फरपुर (बिहार)

मुख्तसर

रील्स और शॉर्ट्स के इस जमाने में 'वनमाली कथा' के पाठकों के लिए 'मुख्तसर' का प्रकाशन किया जाता है। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ अपेक्षित हैं। इस स्तम्भ के अन्तर्गत आप भी अपने मौलिक विचार (चित्र सहित) हमें प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं।

गीत चतुर्वेदी

कविता की सृष्टि

इजरायली कवि डैन पगीस (1930-1986) की एक प्रसिद्ध कविता है, जिसका शीर्षक है– 'रेल के बन्द डिब्बे में पेंसिल से लिखा हुआ'। महज छह पंक्तियों की छोटी-सी कविता हिन्दी अनुवाद में इस तरह है–

यहाँ इस डिब्बे के भीतर
मैं हूँ ईव
अपने बेटे आबेल के साथ।
अगर आपने मेरे बड़े लड़के केन को देखा हो
जो कि आदम का बेटा है
तो उससे कहना कि मैं।

पढ़ने पर लगता है कि यह अधूरी कविता है, लेकिन अधूरी है नहीं। बल्कि इसे बीसवीं सदी की महान कविताओं में से माना जाता है। ऐसा क्यों? इसके पीछे एक कहानी है–

ईश्वर ने आदम और ईव को स्वर्ग से निकाल दिया, तो दोनों धरती पर रहने आ गये। यहाँ उनके दो बेटे हुए– केन और आबेल। दोनों बड़े हुए तो केन किसान बन गया और आबेल चरवाहा। दोनों ईश्वर की वन्दना करते थे, लेकिन ईश्वर सिर्फ आबेल से प्रसन्न होता था, केन से नहीं। उसे यह बात बुरी लगती। एक रोज केन ने आबेल के कान में कुछ कहा। क्या कहा, किसी को नहीं पता, लेकिन जो कुछ कहा, उसे सुन आबेल बड़े भाई के साथ एक वीरान-सी जगह पर चला गया। वहाँ केन ने आबेल की हत्या कर दी। काफी समय तक जब आबेल की खबर न मिली तो ईश्वर ने केन से पूछा। उसने झूठ कह दिया कि उसे नहीं पता। ईश्वर को आबेल के खून के निशान मिल गये और सचाई जान, उसने केन को पृथ्वी के किसी दूसरे हिस्से में निर्वासित कर दिया।

यह सृष्टि के पहले परिवार की कथा है। केन संसार का पहला मनुष्य था, जो माँ की कोख से जन्मा। आबेल संसार का पहला मनुष्य था जिसकी हत्या हुई। यह सृष्टि के पहले हत्यारे और पहले हत की कहानी है। अत्याचार व पीड़ित, कत्ल व मकतूल, हत व हत्यारे का चक्र, सृष्टि के साथ ही शुरू हो गया था। भाई द्वारा भाई की हत्या का यह लम्बा इतिहास आज तक खत्म नहीं हुआ है। यह सिर्फ बाइबिल की नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक रूप से समस्त मानव-जाति की कहानी है।

अब आते हैं इस कविता पर। इसके कवि डैन पगीस यहूदी थे। जर्मनी में हिटलर ने यहूदियों का कत्लेआम करवाया था। चालीस लाख लोगों को ट्रेनों में बिठाकर मौत के वीरान घाट भेजा गया था। नौ साल के पगीस किसी तरह बच गये थे। उस कत्लेआम और दमन ने उनके मन पर गहरा असर किया था। तीस साल बाद यह कविता उन्हीं अनुभवों से निकली। क्या हिटलर, केन का कोई वंशज था? क्या संसार के सारे हत्यारे केन के ही वंशज हैं?

इस कविता में सृष्टि की पहली माँ है, जिसे अपने दोनों बच्चों की चिन्ता है। एक की हत्या हो चुकी है, लेकिन वह हत्या के बाद भी प्रतीक रूप में जीवित है व माँ के साथ है। दूसरा बेटा हत्या करके भाग गया है। माँ उसे भी खोज रही है और उससे कुछ कहना चाहती है कि मैं...। इसके बाद कवि खामोश हो गया। केन ने आबेल से क्या कहा था, किसी को नहीं पता। इस कविता में माँ, केन से क्या कहना चाहती है, किसी को नहीं पता, लेकिन शायद हम उसका अन्दाजा लगा सकते हैं। माँ शायद दोनों भाइयों को आपस में मिलाना चाहती है। हत्या के उस निर्बाध दुष्चक्र को रोकना चाहती है। जब दो भाइयों के बीच हिंसा होती है तो सबसे अधिक पीड़ा सम्भवतः माँ को पहुँचती है। इस कविता की माँ दरअसल मनुष्यता है, जो अब भी इस संसार को बचाना चाहती है।

इस कहानी और आज की दुनिया में फैली हिंसा के बारे में जितना सोचा जाए, अधूरी-सी दिखने वाली इस कविता के उतने ही अधिक अर्थ खुलने लगते हैं। केन हत्या करता रहेगा, आबेल मासूम होने के बाद भी मारा जाता रहेगा, दोनों को जोड़े रखने की कोशिश करती माँ इतनी दुखी होती रहेगी कि उसके मुँह से शब्द तक न निकल पायेंगे। इंसान द्वारा इंसान की हत्या का यह चक्र शायद यूँ ही चलता रहेगा।

गोविन्द गुंजन

अँधेरे के खिलाफ एक हाका

बचपन में, हमारे कस्बे सनावद में, अपने दोस्तों के साथ घूमते-फिरते हम काफी दूर निकल जाया करते थे। गाँव के बाहर रेलवे स्टेशन हमारी प्रिय जगह हुआ करती थी। लगभग पचास साल पहले स्टेशन का रास्ता सुनसान रहता था। उन दिनों मीटर गेज की एक ट्रेन या कोई-कोई मालगाड़ी ही स्टेशन पर आती-जाती थी।

मीटर गेज की ट्रेन अब बन्द हो चुकी है पर तब वह हमारे बाल-मन के लिए आकर्षण का केन्द्र थी। ट्रेन को आते-जाते देखना बहुत अच्छा लगता था। धीरे-धीरे गुजरती ट्रेन के दरवाजे पर खड़े मुसाफिरों को हम बच्चे देखते, उन्हें हाथ हिलाकर टाटा करते और वे हमें देख मुस्करा देते। उन अनजान मुसाफिरों में मुस्कराहट बाँटने का एक अलहदा सुख था। लेकिन कुछ बच्चे शरारत पर उतर आते। वे पत्थर उठाकर मुसाफिरों की तरफ उछालते। किसी यात्री को निशाना बनाते। यह देखकर मैंने उन दोस्तों से रिश्ता तोड़ लिया और तय कर लिया कि उनके साथ कहीं आना-जाना नहीं करूँगा।

बाद में कई बार हम कुछ दोस्त स्कूल की छुट्टी के दिनों में उस मीटर गेज की ट्रेन से पाताल पानी स्टेशन तक जाते जो इन्दौर की तरफ पड़ता था और जहाँ का झरना हमारे क्षेत्र में बड़ा प्रसिद्ध था। वो मनोहारी झरना और सतपुड़ा विन्ध्याचल पर्वत की हरी-भरी पहाड़ियाँ मुझे बुलाती हुई लगती थीं। पृथ्वी पर विन्ध्याचल पर्वत-श्रेणी को सबसे पुरानी पर्वत-शृंखला माना जाता है, शायद हिमालय से भी पहले यह पर्वत पृथ्वी पर शान से सिर उठाये खड़ा था। ट्रेन के पाताल पानी स्टेशन तक पहुँचने के रास्ते में पहाड़ को काटकर कुछ बोगदे (टनल्स) बनाये गये थे, जिनसे ट्रेन गुजरती तो बोगी में एकदम अँधेरा छा जाता था। कुछ देर के लिए दिन में रात हो जाती थी। बोगी में अँधेरा होते ही ट्रेन में सवार लोग बहुत जोर से शोर मचाते, मानो अँधेरे के खिलाफ हाका लगा रहे हों। जंगल में किसी हिंसक पशु को भगाने के लिए जंगलवासियों द्वारा जो शोर मचाया जाता है, जिससे डरकर वह पशु भाग जाता है, उसे हाका लगाना कहते हैं। थोड़ी देर बाद ट्रेन बोगदे से बाहर निकलती तो अचानक रोशनी से बोगी जगमगा जाती। अँधेरा चम्पत हो जाता, मानो बोगी में सवार लोगों के हल्ला मचाने से डरकर वह अँधेरा भाग गया हो। कुछ देर बाद आगे फिर दूसरा बोगदा आता और फिर अँधेरा छा जाता। हम भी उन लोगों के साथ फिर हाका लगाते, खूब चीखते-चिल्लाते और बोगी गूँज जाती। यह क्रम थोड़ी-थोड़ी देर बाद फिर किसी बोगदे से गुजरते हुए जारी रहता था।

अँधेरे के खिलाफ हाका लगाते हुए वे लोग मुझे अच्छे लगते थे। यदि हम शोर नहीं मचाते तब भी ट्रेन बोगदे से बाहर निकलती और अँधेरा भाग जाता। परन्तु तब लगता कि अँधेरा और उजाला होना एक प्राकृतिक घटना है। लगता कि अँधेरे के खिलाफ हमने कोई आवाज नहीं उठायी। उसका कोई विरोध नहीं किया। जब अपनी मस्ती में हम अँधेरे को ललकारते और वह भाग जाता था तो लगता था, यह रोशनी अपनी कमायी हुई है। इसे हमने मुफ्त में प्राप्त नहीं किया है। पाताल पानी के झरने तक कई बार ट्रेन बोगदों से निकलती, हर बोगी में अँधेरा भर जाता और हम सब मिलकर उसके खिलाफ हाका लगाते और हर बार नयी रोशनी कमा कर आगे बढ़ जाते।

कुछ लोग जो चुपचाप इस अँधेरे-उजाले के खेल को देखते और कोई आवाज नहीं करते थे, मुझे आकर्षित नहीं करते थे। मुझे लगता था, और मैंने चाहा है कि मैं ऐसे लोगों के साथ रहूँ जो अँधेरे का विरोध करना जानते हैं। कुछ नहीं तो उसके खिलाफ हल्ला तो मचा ही सकते हैं। जब थोड़ी समझ बढ़ी तो मैंने साहित्य का रास्ता चुना, जिसकी ट्रेन में अँधेरे को ललकारने वाले कुछ अलमस्त लोगों का हुजूम हमेशा नजर आता था। साहित्य का रसस्रोत भी पाताल की तरह गहरा होता है, शायद इसलिए यह पाताल पानी स्थान मेरे अवचेतन मन को अपने नाम से लुभाता था।

सुभाष राय

मैं जब भी गाँव जाता हूँ...

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, थोड़ा और मनुष्य बनकर लौटता हूँ। वहाँ जाकर लगता है, अभी गाँव जिन्दा है। वहाँ लोग मिलना चाहते हैं। इन्तजार करते हैं। उन्हें कुछ नहीं चाहिए मुझसे या मुझ जैसे किसी शहरी से। वे बस इतने से ही खुश हो जाते हैं कि मुझे गाँव अब भी याद है। पुराने दोस्त, साथ पढ़े हुए लोग या दशकों पहले एक-दो बार मिले हुए लोग भी मिलते हैं इस तरह जैसे कभी बिछड़े ही नहीं। पल-भर में दशाब्दियाँ सिमट जाती हैं।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, रास्ते बदल जाते हैं, लोगों के चेहरे बदल जाते हैं, कुछ नयी इमारतें बीच में आ जाती हैं, लेकिन अपने सारे बदलाव के बाद भी गाँव अपनी आत्मा से एक ऋषि की तरह खड़ा मिलता है। ऐसा नहीं कि गाँव में सबकुछ अच्छा ही है। नशा पहुँच गया है वहाँ। कुछ छल-कपट भी। राजनीति और शहर दोनों गाँव में दाखिल हो गये हैं। फिर भी गाँव की हवा अभी भलमनसाहत की गन्ध सँभाले चलती है। दुख वहाँ भी कम नहीं हैं लेकिन दुख किसी को भी अकेला नहीं कर पाता है। लोग मिलकर साहस के साथ मुकाबला करते हैं। वहाँ सुख के साथ दुख बाँटने का सलीका अभी भी मौजूद है।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, मेरा बचपन याद आता है। वे सिर्फ यादें-भर हैं। न वे बगीचे रहे, न वे ताल-पोखर, न वह बाँस का

जंगल जिनके बीच घूमते हुए, कुछ नया खोजते हुए। बरसों बीते, सबकुछ बदल गया है। गाँव अब वार्ड बन गया है। शहर उसकी पहचान छीन लेने पर आमादा है। वहाँ शो-रूम खुल रहे हैं। भविष्य में गाँव के हृदय में अँधेरा भरने की जुगत करनी है। बाजार को वहाँ बहुत सम्भावनाएँ दिख रही हैं। पता नहीं, गाँव इस नये हमले से खुद को बचा पायेगा या नहीं।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, थोड़ा गाँव लेकर वापस लौटता हूँ। जो अनुभव केवल स्मृति में रह गये हैं, वे भी जाग उठते हैं। वह बड़ा बरगद का पेड़ चला आता है मेरे साथ, जो सूरज को, बादलों को नीचे नहीं उतरने देता था। जो एक बड़े छाते की तरह तना रहता था, एक बड़े भूगोल में। जिसकी जड़ें जितनी जमीन में थीं, उतनी हवा में भी लटकी रहती थीं। बरोह कहते थे हम उन्हें। उसकी पत्तियों के सघन वितान को आर-पार देखना सम्भव नहीं होता था। उनके भीतर एक ऐसा अँधेरा बसता था, जो बहुत सारे जीव-जन्तुओं को आश्रय देता था, उनके बच्चों को बचाये रखता था। वह न जाने कितनी शताब्दियों तक किसी ध्यानस्थ योगी की तरह बैठा रहा गाँव के प्रवेश-द्वार पर।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, खन्ती में उगे कमलिनी के रक्त-नील पुष्प खिल जाते हैं मेरे भीतर। वह एक नदी की तरह थी, जिसका उद्गम और पर्यवसान भी मेरा गाँव ही था। उसके एक तट पर खड़े रहकर उन फूलों को देखना कठिन होता था। सुबह-सुबह उनकी पंखुरियाँ पानी पर बिछी हुई लाल और नीली सुगन्धित रोशनी की बिछावन की तरह लुभाती थीं। और हम किशोर दोस्त डूबने के भय को चुनौती देते हुए खन्ती में उतर जाते थे। वह कई गरीब परिवारों के जीने का सहारा भी थी। उसके पानी में मछलियाँ खेलती रहती थीं। हम उनका सतह पर आना और लहर बनाते हुए तल में चले जाना देखते रहते थे।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, मुझे हुंड़ार याद आता है। नकली हुंड़ार बनकर मेरे पड़ोस के बाबा हम बच्चों को डराते, चौंकाते थे। असली हुंड़ार मैंने कभी नहीं देखा था, लेकिन हुंड़ार की जो छवि थी मन में, वह एक ऐसे खतरनाक जानवर की थी, जो बच्चों को रात में उठा ले जाता है। बाबा होते तो देखते कि असली हुंड़ार तो अब आया है, जो दिख नहीं रहा। जो डराता नहीं, लुभाता है; जो बच्चे नहीं उठाता, पूरा गाँव ही अपने जबड़े में डालने को आतुर है। वह हुंड़ार बिल्कुल गाँव की सरहद पर खड़ा ललचायी नजरों से गाँव के प्रेम, गाँव की सदाशयता, गाँव के गाँवपन को देख रहा है।

मैं जब भी गाँव जाता हूँ, सोचता हूँ कि गाँव आखिर कब तक गाँव रह पायेगा!

अमिता नीरव

दुख ज्ञान की कसौटी है

''बुद्ध ने चार आर्यसत्य दिये हैं। एक, संसार में दुख है। दो, दुख के कारण हैं। तीन, दुख के निवारण हैं और चार, निवारण के अष्टांगिक मार्ग हैं।'' मैं कहता हूँ।

''हाँ, मैं जानती हूँ। मगर अनुभव यह कहता है कि दुख तो है, लेकिन उसका कोई निवारण नहीं है। कम से कम प्राकृतिक दुखों का कोई निवारण नहीं है। रोग का, शोक का कोई निवारण नहीं है।'' वह जवाब देती है।

''यदि निवारण नहीं होता तो इंसान जिन्दा नहीं रह सकता था। बिना दुख के जीवन है ही नहीं। ऐसे में दुख के साथ इंसान कितना सरवाइव कर सकता है?'' मैं पूछता हूँ।

''दुख से सुलह करनी होती है। उससे पार पाया जाता है और वह किसी बुद्ध के किसी उपाय से नहीं मिलता है। उसके

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आलोचक के बयान

साक्षात्कार

धनंजय वर्मा

मूल्य 350 रु.

प्रख्यात आलोचक प्रोफेसर (डॉ.) धनंजय वर्मा अपने व्यापक अध्ययन और स्वतन्त्र विचार-चिन्तन, तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि और तलस्पर्शी विश्लेषण, निर्भीक वक्तव्य और बेलाग साफगोई के लिए चर्चित और रुसवाई की हद तक विवादास्पद हैं।

उनके साक्षात्कारों, भेंटवार्ताओं, अन्तरंग बातचीत और सार्थक संवादों की एक पुस्तक 'आलोचक का अन्तरंग' पहले प्रकाशित और चर्चित हो चुकी है। आईसेक्ट पब्लिकेशन अब प्रस्तुत करता है वर्ष 2005 से लेकर 2019 तक उनके इक्कीस साक्षात्कारों, वार्ताओं और संवादों के साथ एक परिचर्चा का यह संकलन– 'आलोचक के बयान'।

आग-ताप में झुलसना ही पड़ता है। यदि आप पर दुख आया है तो वह बिना आपको झुलसाये नहीं जाएगा, यह सत्य है। तो दुख का निवारण नहीं हो सकता है। उसे सहना ही सच है।'' वह कहती है।

''तो तुम यह कहना चाहती हो कि दुख के साथ ही जीना होता है!'' मैं पूछता हूँ।

''नहीं, तुम समझे नहीं। मैं कहना चाहती हूँ कि दुख का कोई निदान नहीं है, सिवा उसे सहने के। जो दुख व्यवस्था से उपजते हैं, उनका तो हमारे पास जस्टिफिकेशन है लेकिन जो दुख प्राकृतिक है, उसका कोई जस्टिफिकेशन नहीं है। यदि मुझे रोग है तो वो है, यदि मुझे शोक है तो वह है। वह किसी ज्ञान से दूर नहीं होता है।'' वह कहती है।

''यार ऐसा क्या है जो हमेशा रहेगा? जो भी जनमा है, वह मरेगा। जो आया है, उसे जाना ही होगा। यह जान लेने के बाद शोक का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।'' मैं फिर कहता हूँ।

''मैं जानती हूँ, जो भी चर-अचर हैं, उन सबको एक दिन खत्म होना है। जब धरती और सूरज तक को एक दिन खत्म हो जाना है तो हम आप क्या हैं? हमें भी एक दिन खत्म हो जाना है, लेकिन इसे जान लेने से दुख कम नहीं हो जाते हैं।'' कहते हुए वह तालाब की तरफ देखने लगती है।

''एक कहानी है, बुद्ध के पास एक माँ अपने बच्चे का शव लेकर जाती है और कहती है कि बुद्ध उसे जीवित कर दे।'' मैं कहानी पूरी करता हूँ, उससे पहले ही वह उसे लपक लेती है।

''हाँ! और बुद्ध उससे कहते हैं कि तुम ऐसे घर से चावल लेकर आओ, जहाँ अभी तक कोई मृत्यु नहीं हुई हो। वह माँ खूब भटकती है लेकिन उसे ऐसा कोई घर नहीं मिलता है और आखिरकार वह बुद्ध के पास आकर स्वीकार करती है कि मृत्यु अटल है... तो... यह जान लेने से क्या दुख कम हो जाते हैं?'' वह मुझसे सवाल करती है।

''यार जो सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है, सार्वत्रिक है, उसे जान लेने के बाद तो दुख से उबरा जा सकता है... आखिर ज्ञान क्या है?'' मैं पूछता हूँ।

''वो सारे तथ्य हैं। इस ब्रह्मांड में जो कुछ भी है, उसके होने का एक समय है। कोई जल्दी तो कोई देर से जाना वाला है। मगर जाना तो सबको है, जब धरती और सूरज की उम्र तय है तो फिर कोई भी अमर नहीं है। यह तथ्य है लेकिन सूरज के न रहने और मेरे पिता के न रहने में फर्क है।'' वह कहती है।

''अरे! जब सब खत्म होना है तो फिर सब खत्म होना ही है न... तुम्हारे-मेरे माता-पिता क्या और तुम-मैं क्या?''

''नहीं। यह उतना और वैसा नहीं है। सब खत्म होना है और हमारा कुछ खत्म हो गया है, दोनों अलग-अलग चीज हैं। पता है, धरती को शास्त्रों में मृत्युलोक कहा गया है। हम अपने इर्दगिर्द कई लोगों को मरते, बीमार होते देखते हैं लेकिन वे सब हमारे लिए तथ्य होते हैं। ज्ञान की परीक्षा तब होती है, जब रोग और शोक हमें होता है।'' कहते-कहते वह भावुक हो जाती है। ''जब आप दुख में होते हैं, तब आपकी कोई जानकारी, कोई सूचना, कोई तथ्य आपके काम नहीं आता है। तब सिर्फ और सिर्फ एक चीज होती है– दुख...! पागल कर देने वाला, लील जाने वाला दुख... और हकीकत यह है कि दुख का कोई निवारण नहीं है।''

''यही, यही तो ज्ञान है। जो हमें द्रष्टा होना सिखाये, आखिर जो सबके साथ होता है, वो हमारे साथ भी होगा ही। उसे ही तो हमें ग्रहण करना होगा।'' मैं कहता हूँ।

''लेकिन यही ज्ञान की सीमा है। पता है, दुख आँधी की तरह होता है और ज्ञान एक सूखे पत्ते की तरह। जब आँधी आती है तो बड़े-बड़े पेड़ उखड़ जाते हैं, एक सूखे पत्ते की क्या बिसात रहती है तब! तो जब दुख होता है, तब ज्ञान अनुपस्थित हो जाता है।'' वह कहती है।

''तब वह ज्ञान कैसे होगा, ज्ञान वो है जो हमें दृष्टि दे।'' मैं अब भी अपनी बात पर अड़ा हुआ हूँ।

''नहीं है, ज्ञान कहीं नहीं है। जरूरत के वक्त हमें जो दृष्टि देता है, वह ज्ञान कहीं है ही नहीं। तुम्हारे हिसाब से तो ज्ञान प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी हुआ?'' वह कहती है।

''कैसे?''

''अरे! देखो, दुख प्रेम से उपजता है। तुम्हारा ज्ञान उस दुख का शमन करता है, इसका मतलब यह है कि वह हमें प्रेम करने से विमुख करता है। तो ज्ञान प्रेम का प्रतिस्पर्धी हुआ न?'' वह उत्तर देती है।

''ऊँ हूँ... मेरा मतलब है कि ज्ञान दुख की सार्वभौमिकता का उद्घाटन करता है।'' मैं कहता हूँ।

''ठीक है, तो उससे दुख का निवारण कैसे हो जाता है?'' वह फिर पूछती है।

''मतलब यदि तुम्हें दुख है तो इस तरह के दुख सृष्टि में है ही। इसमें कुछ भी नया नहीं है।'' मैं उत्तर देता हूँ।

''तो ये कब कहा कि दुख मौलिक है। दुख तो पुराना ही है, लेकिन वह होता है और उससे बचने का कोई उपकरण, कोई उपाय खोजा नहीं जा सका है।'' वह कहती है। ''पता है दुख को मौलिक होने की जरूरत ही नहीं है। जिसकी जिन्दगी में होगा दुख, विशिष्ट ही होगा। इसलिए ये दुख के सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वत्रिक होने का तथ्य है न, यह ऐसा ज्ञान है जो व्यक्तिगत दुख के समय कसौटी पर कसा जाता है। और इसमें सबसे खराब बात क्या है, पता है?'' वह पूछकर मेरी तरफ देखती है। मैं प्रश्नवाचक नजरों से उसे देखता हूँ।

''ज्ञान, दुख की कसौटी पर अक्सर असफल हो जाता है।'' कहकर वह मेरी तरफ सूनी नजरों से देखती है।

❑

किरदार

सौ, सवा-सौ साल की कहानी ने ऐसे कई पात्रों को सिरजा है जो अपने अनूठेपन की वजह से नजीर के तौर पर रखे जा सकते हैं। लहना सिंह, घीसू-माधव, मधूलिका, बाबा भारती, टोबाटेक सिंह, मित्रो, लतिका, अब्दुल गनी आदि ऐसे ही चरित्र हैं। कथाकार नहीं रहे, लेकिन ये किरदार आज भी जिन्दा हैं। यह जानना रोचक होगा कि आज के देशकाल में यदि ये किरदार अपने कथानक के फ्रेम से बाहर आ जाएँ तो कैसे दिखेंगे!

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' का विस्थापन अभी जारी है...

सूरज प्रकाश

1960 में छपी वरिष्ठ लेखिका उषा प्रियंवदा की एक बहुपठित और बहुचर्चित कहानी है– वापसी। यह बहुआयामी कहानी मानी जाती है। कुछ लोग इसे पीढ़ियों के संघर्ष की, पिछली पीढ़ी के सन्दर्भहीन हो जाने की कहानी मानते हैं तो कुछ लोग इसे पुरुष विमर्श की कहानी मानते हैं। बाकी पाठक इसे स्त्री विमर्श की कहानी मानते हैं। उनका कहना है कि अगर गजाधर बाबू ने अकेलापन झेला है तो उनकी पत्नी ने भी उतना ही अकेलापन झेलते हुए उनके परिवार को पाला-पोसा है।

कहानी कुछ इस तरह है– गजाधर बाबू पैंतीस बरस की रेल की नौकरी करके अवकाश प्राप्त हुए हैं। वे अपने घर वापिस लौटने की तैयारी में लगे हुए हैं। घर लौटते समय उनके मन में जहाँ एक ओर अपने परिवार के बीच जाने की उत्सुकता है, वही दूसरी ओर अपने पड़ोसियों, कर्मचारियों का स्नेह उन्हें विषाद से भर दे रहा है। सांसारिक दृष्टि से उनका जीवन सफल रहा है। शहर में एक बड़ा मकान, दो बच्चों की शादी, दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। बच्चों की पढ़ाई के कारण पत्नी अधिकतर शहर में रहीं और उन्हें अकेला रहना पड़ता। अब वे खुश हैं कि इतने बरस बाद परिवार के साथ सुख से रह सकेंगे।

वे अपने परिवार के साथ सुख से बिताये गये पुराने दिन याद करते हैं। पत्नी का स्नेह, परिवार के साथ दिन गुजारना। सबकुछ याद करते और बहुत सारे अरमान लिये गजाधर बाबू अपने घर पहुँचे। मेल-जोल हुआ। वे खुश होते हैं पर पिता की अनुपस्थिति का आदी परिवार उनकी उपस्थिति से असहज हो जाता है। उनकी चारपाई अब बैठक में ही लगा दी गयी है। वे अब सबको टोकने लगे हैं, मीन-मेख निकालने लगे हैं। खर्च कम करने के लिए नौकर को निकाल दिया है। उनकी दखलअन्दाजी पसन्द नहीं की जाती और उनकी उपेक्षा की जाने लगती है। उन्हें अब यह महसूस होने लगा है, वे अवांछित हैं अपने ही घर में। पत्नी का व्यवहार भी वे, बदला हुआ और उपेक्षापूर्ण पाते हैं। वे विचलित हो जाते हैं।

तभी वे घर पर बताते हैं कि उन्हें एक चीनी मिल में नौकरी मिल रही है। वे पत्नी से पूछते हैं कि क्या वह भी उनके साथ चलेगी परन्तु पत्नी इंकार कर देती है। वे पारिवारिक सुख से वंचित और निराश होकर रिक्शे पर बैठ जाते हैं और उन्हें विदा कर दिया जाता है। उनका परिवार राहत महसूस करता है और उनकी चारपाई कमरे से बाहर निकाल दी जाती है। आते-जाते उससे ठोकरें लग रही थीं।

दरअसल इस कहानी को मैं विस्थापन की पीड़ा की बहुत बड़ी कहानी मानता हूँ। विस्थापन हमेशा अवसाद पैदा करता है, दुख दे जाता है और एक ऐसी पीड़ा आपको दे जाता है कि जिससे मुक्ति नहीं होती। न तो विस्थापित व्यक्ति अपने विस्थापन को स्वीकार कर पाता है और न ही वे लोग कोशिश करके भी उसके विस्थापन को स्वीकार कर पाते हैं जिनके पास वह लौट कर आया है। दोनों के अपने-अपने कारण, तर्क और प्रयोजन होते हैं और दोनों ही एक-दूसरे को स्वीकार नहीं कर पाते। ये कहानी अकेले गजाधर बाबू के विस्थापन की है लेकिन आज हमारा समाज, देश और पूरी दुनिया विस्थापन के दर्द से जूझ रही है। हमारे देश का हर तीसरा आदमी गजाधर

बाबू है और वह दोनों जगहों पर अवांछित है।

विस्थापन, यानी एक जगह से उखड़ कर अपनी मूल जगह पर लौटना या हमेशा के लिए दूसरी जगह जाना, यह आज की समस्या नहीं है। विस्थापन हमेशा होता रहा है, अकेले का, परिवार का, समुदाय का और किसी देश की बहुत बड़ी जनसंख्या का। कारण कई होते हैं। विस्थापन किसी भी समाज की दुखद किन्तु अपिरहार्य घटना है।

अभी हाल ही में हमने रूस और यूक्रेन के युद्ध के कारण हजारों की संख्या में वहाँ पढ़ाई कर रहे बच्चों को विस्थापित होते हुए देखा। हम विभाजन की त्रासदी से हुए बहुत बड़े पैमाने पर हुए विस्थापन को कैसे भूल सकते हैं! इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी कि जहाँ से वे जा रहे हैं, वहाँ उपेक्षित हो चुके होते हैं और जहाँ जा रहे हैं, वहाँ उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता। पाकिस्तान की तरफ से आये पंजाबी एक पूरी पीढ़ी तक रिफ्यूजी कहलाते रहे और पाकिस्तान में गये मुसलमान आज भी मुहाजिर यानी विस्थापित कहे जाने का दंश झेल रहे हैं।

दुनिया की सोच को अपने सिद्धान्तों से बदलने और नया नजरिया पेश करने वाले कार्ल मार्क्स जीवन-भर इंग्लैंड में विस्थापित जीवन जीते रहे। उनका देश छूट गया था और इंग्लैंड ने बेशक उन्हें घर दिया था, लेकिन घर पर नेम प्लेट लगाने की अनुमति नहीं दी थी। वे स्टेटलैस यानी बिना देश वाले नागरिक थे। स्टेटलैस व्यक्ति दरअसल वह होता है जिसका कोई देश या राष्ट्रीयता नहीं होती। इसकी वजह यह भी हो सकती है कि जिस देश का वह नागरिक था, वह देश ही अब अस्तित्व में न रहा हो और बाद में उसे किसी और देश ने अपनाया न हो। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी राष्ट्रीयता खुद उनके देश ने समाप्त कर दी हो और इस तरह से उसे शरणार्थी बन जाना पड़ा हो। ऐसे लोग भी स्टेटलैस यानी बिना देश वाले हो सकते हैं जो किसी ऐसे अल्पसंख्यक जनजातीय समुदाय से ताल्लुक रखते हों जिसे उस देश की नागरिकता से वंचित कर दिया जाये जिसके इलाके में वे पैदा हुए हैं या वे किसी ऐसे विवादग्रस्त इलाके में पैदा हुए हैं जिसे अपना कहने को कोई आधुनिक देश तैयार ही न हो। पिछली शताब्दी में ऐसे में बहुत से गणमान्य व्यक्तियों के साथ हुआ कि वे बेघर-बार और बेदरो-दीवार हो गये और अपना कहने के लिए उनके पास कोई देश या राष्ट्र नहीं था। और ऐसे व्यक्तियों में महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आंइस्टीन, कार्ल मार्क्स, स्पाइक मिलिगन और फ्रेडरिक नीत्शे के नाम शुमार हैं।

विस्थापन की सबसे बड़ी पीड़ा अभी हाल ही में हमने कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान देखी। लाखों-करोड़ों लोगों को बेघर और बेसहारा होते देखा। जहाँ वे रह रहे थे वहाँ पर उपेक्षित हो चुके थे, नौकरी नहीं रही थी, देने के लिए घर का किराया नहीं था। खाने रहने का ठिकाना नहीं था। जैसे भी बन पड़ा, पैदल, साइकिल पर, टैम्पो, बस में सबकुछ छोड़ कर या औने-पौने दाम पर बेच कर किराये का जुगाड़ करके अपने वतन की तरफ चल दिये। लाखों-लाख गजाधर। यहाँ अगर कुछ नहीं बचा है तो वहाँ कुछ तो होगा। आखिर अपने घर जा रहे हैं। अब तक मनीऑर्डर भेज रहे थे, अब खुद जाने की जरूरत आन पड़ी है। सब के सब अपना बाकी बचा माल-असबाब कन्धों पर लाद कर बिना पानी और बिना भोजन के चल पड़े थे। किसी की गोद में तो किसी के पेट में बच्चा। किसी के साथ अपंग और बूढ़ा बाप तो कोई निपट अकेला। कोई नंगे पैर है तो किसी ने पहिये वाले सूटकेस पर बच्चे को लिटा रखा है। दिन-रात चल रहे हैं, चल रहे हैं, चल रहे हैं। लेकिन यह चलना इतना आसान नहीं था। अपने ही देश में उनके लिए हाइवे बन्द कर दिये गये थे। पहली बन्दिश, राज्य में घुसने की इजाजत नहीं। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्य में उन्हें घुसने नहीं दिया गया। भरी हुई बसें लौटा दी गयीं। किसी तरह राज्य के अन्दर घुस भी गये तो शहर, गाँव, मोहल्ला और घर के रास्ते उनके लिए बन्द किये जा चुके थे। हम तुम्हें कोरोना लेकर यहाँ नहीं आने देंगे। लौट जाओ जहाँ से आये हो।

एक बार फिर उनकी वापसी यात्रा गजाधर बाबू की तरह शुरू हो गयी थी। वे अपने ही घर में उपेक्षित हो गये थे, उस घर में जो उनके भेजे मनीऑर्डर से चलता था। और एक बार फिर लौटने के लिए उनके कदम चल पड़े थे। गजाधर बाबू के पास फिर भी मिल की नौकरी थी, इनके पास तो कुछ भी नहीं था। जब तक कमा कर पैसा भेज रहे थे, उनका स्वागत था, लेकिन जब वे रिटायर होकर आये और पैसे भेजने की स्थिति में नहीं रहे तो अपने ही घर में बेकार हो गये थे।

इन विस्थापितों के साथ भी यही हुआ। काम छूट चुका था। कोरोना का आतंक सिर पर। जेब खाली। सामान बेचकर ही तो आने-जाने का इन्तजाम किया था। अब घर वालों के लिए बेकार थे और उनके लिए दरवाजे बन्द किये जा चुके थे।

विस्थापन जारी रहता है। व्यक्ति के लिए, समाज के लिए। और विस्थापित व्यक्ति दोनों तरफ से मार खाता है। उसकी कोई जगह नहीं रहती। कहीं भी उसकी जरूरत नहीं होती क्योंकि वह अब आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं रहा है। वह सबको टोकेगा, तंग करेगा और घर की पारिवारिक सुख-शान्ति को भंग करेगा। विस्थापन तोड़ देता है, बेशक कुछ लोग विस्थापन की सम्भावित पीड़ा को झेलने के लिए तैयार नहीं होते और विस्थापन के लिए मना ही कर देते हैं। जहाँ हैं, वहीं रह जाते हैं। पता है जहाँ लौटना है, इससे भी बुरी हालत होने वाली है। यह विस्थापन से भी ज्यादा घातक होता है।

मो. 9930991424

कथेतर

बाहर अमरीकी भीतर भारतीय

चन्द्रकान्ता

ईस्ट कोस्ट से वेस्ट कोस्ट तक की अमेरिका-यात्रा के दौरान छह प्रदेशों में सप्ताह-सप्ताह-भर रुकने की योजना बनी थी, पर शारलेट, नॉर्थ कैरोलाइना में ही पन्द्रह दिन रुकना पड़ा। भैया ग्रीनस्बरो हवाई अड्डे पर कार लेकर लेने आये। बच्चे उत्सुकता से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। अमेरिका में जनमे-पले बच्चों को अपने घर में भारत से आये आंटी-अंकल का स्वागत करने का मौका मिल रहा था। वे बेहद खुश थे। माँ तो हमें देखकर भाव-विह्वल हो गयीं। वह बार-बार हमारा माथा चूमतीं, बाल सहलाती बतियाती रहीं। अमेरिका में बसे हमारे परिवारजन हमारा स्वागत कुछ अलग ढंग से करना चाहते थे, जिसमें कई नयी जगहों की सैर शामिल थी। ढेर सारी बातें थीं, बिना पूछे भी उनके वहाँ बस जाने के कारणों के सोदाहरण उत्तर थे।

लम्बे-चौड़े हरियाये लॉन, पॉपुलर और डॉगवुड के आकाश छूते पेड़ों के बीच, सुस्ताता उनका उनाबी फूलों वाले क्रीपर से सजा परी महल-सा घर, काँच की आदमकद खिड़कियों-दरवाजों से हमें भीतर आने को आमन्त्रित कर रहा था। जेटलैग से मुक्त होने के लिए हमें सिर्फ एक दिन घर में रिलैक्स करने की इजाजत दी गयी और पहले से तय किये गये प्रोग्राम के मुताबिक वे हमें कई जगह घुमाने के लिए निकल पड़े।

दाएँ-बाएँ सतरंगी फूलों का फैलाव और लम्बे-ऊँचे सघन वृक्षों की पहरेदारी के बीच नागिन-सी लिश्कदार सड़कों पर कार, जैसे पानी पर नाव फिसल रही हो। साउथ कैरोलाइना

की सीमा पर बने कैरोविंड्स कैम्पग्राउंड में पूरा दिन घूमते हम बच्चों की तरह छोटे-बड़े खेलों में शामिल होते रहे। कैरोविंड्स आकार में छोटा डिजनीलैंड समझिये। पाइरेट आइलैंड में ब्लैक बियर्ड का प्रतिशोध देखने, आतंक और गोलीबारी के माहौल में बैठे बच्चों के साथ बड़े-बूढ़े भी शामिल थे। साथ बैठे उम्रदराज लोगों की उत्सुकता देखकर सुखद-सा अहसास हुआ कि यहाँ जीवन का भरपूर आनन्द उठाने में उम्र बाधक नहीं होती। गैरजरूरी हिचक, सामाजिक अवरोध और उम्र को लेकर किसी हीन भावना के लिए यहाँ कोई जगह नहीं। रिप टाइड रीफ में पाइप लाइन ट्यूब स्लाइड्स की वृहत्ताकार नीली पाइप में घुस कर हलकोरे लेते रबर बोटों में फिसल कर ट्यूब से बाहर निकल आने का रोमांच गजब का था– भय और उत्सुकता एक साथ! दिल जोर से धक-धक करता रहा, पर हार मान कर कौन अपनी भद उड़ाता? बच्चे, हाय हो, दिस इज फन चिल्ला-चिल्ला झरनों की शक्ल में बहते पानी पर उछलती छोटी डोंगीनुमा नावों पर बाँहें पकड़ कर हमें बिठाते रहे। हम आपके साथ बोट में बैठेंगे, रोलरकोस्टर पर तो मैं ही आंटी के साथ बैठूँगा, तुम तो डरपोक डिली हो। बच्चे हमारे साथ बैठकर राइड लेने के लिए आपस में झगड़ने लगे। पानी की बौछारों के बीच बचते-उछलते, हम बच्चों की प्यार-भरी नोक-झोंक की आत्मीयता से सराबोर हो उठे। भूख लगी तो बच्चों ने मैकडॉनल्ड में चिकन नगेट, बर्गर ऑडर किये, किसी ने फ्रेंच फ्राइज और कोक-पेप्सी, कोई स्ट्रॉबरी-ग्रेप्स पैकेट की तरफ लपक गया। जो मन हो खा लो, इधर कोई रूल-रेग्युलेशन नहीं। पिकनिक है भई! एंज्वाय!

खान-पान की शुद्धता, साफ-सुथरे माहौल और भीड़ के अनुशासन की सराहना करते मन में टीस-सी उठी कि हम अपने भारत में तमाम प्रगति के बावजूद अभी भी जगह-जगह उखड़ी-पुखड़ी गड्ढेदार सड़कों पर चलते हैं। वातावरण में ट्रकों-बसों का धुआँ और जगह-जगह गन्दगी के ढेरों के बीच जीना हमारी नियति हो गयी है।

लेकिन तमाम तामझाम के बावजूद उन्होंने अपने चौगिर्द अमेरिका में बसे भारतीयों का घेरा बना दिया था (भारतीय होने का सुरक्षा कवच), जिनके साथ वे अपने सुख-दुख, बोली-बाणी और स्मृतियों के कोष साझा किया करते। दीप के दोस्त प्रतिभा और सन्दीप तीसेक वर्षों से अमेरिका में रहते हैं, भाइयों-जैसा स्नेह है। पहले वॉशिंगटन में नौकरी करते थे, अब दोनों परिवार शारलेट में आये हैं। वे लोग काफी आत्मीयता से मिले, घर बुलाकर मराठी खाना खिलाया। श्रीखंड बनाना वे भूले नहीं हैं। उनके घर में ओड़िसा के जगन्नाथ की कलात्मक मूर्तियाँ और कश्मीर की अखरोटी लकड़ी का नक्काशीदार फर्नीचर देखा। घर के भीतर पूरी भारतीय धज। दीप के भारतीय मित्र मिलने आये तो गले में बाँहें डालकर अपनापा जताया। लगा कि वहाँ के तमाम सुख-सुविधाओं के बीच भी अपनेपन की सोंध की कमी खटकती है। अमेरिका में यों तो रंगभेद का बहिष्कार है, पर भारतीय-अमेरिकी यह भी जानते हैं कि वहाँ की तमाम सुविधाओं के हकदार होने के बावजूद वे इंडियन-अमेरिकन ही हैं। वहाँ की सभ्यता-संस्कृति (जो कि भिन्नदेशीयों की मिली-जुली आचार संहिता है) में वे शामिल नहीं हैं। लोग शालीन हैं, दोस्ती भी निभाते हैं, हर व्यक्ति को अपना स्पेस देते हैं। अच्छा काम करने पर बॉस पीठ भी थपथपाता है, पर जरा-सी चूक होने पर बात का बतंगड़ या कहिये राई का पहाड़ भी बना देता है। वही गलती अगर उधर का व्यक्ति करे तो शायद थोड़ा समझा-बुझा कर बात को टाल दिया जाता है।

इसके अलावा भी भारतीय वहाँ की जीवनशैली और विचारधारा को पूरी तरह से आत्मसात नहीं कर पाता। काफी कुछ इतना भिन्न, कहीं-कहीं हमारे संस्कारों के विरुद्ध सोच देख-समझ कर भारतीय मानस उखड़ जाता है! कहाँ वह ठेठ हिन्दुस्तानी गप्प-गोष्ठियाँ, धौल-धप्पे, छत-तोड़ ठहाके और दूसरों के मामलों में टाँग अड़ाने की हद तक हमदर्दी और भाईचारा दर्शाने का खाँटी तरीका और कहाँ हाय-हेल्लो और दबे-दबे स्वर से हाऊ आर यू? खास दोस्ती हुई तो जन्मदिन पर केक या कार्ड भेज दिया। बहुत हुआ तो बीच पर एक वीकेंड साथ बिताया। सबके सुख-दुख नितान्त निजी, बेहद व्यक्तिगत! वीकेंड पर किसी लड़की से रोमांस के बाद औपचारिक बाय-बाय। अपने यहाँ तो भूमंडलीकरण की हवा पहुँचने के बावजूद आज भी प्यार में लड़की लैला और लड़का मजनूँ हो जाता है। कुछ देर दीवानगी के आलम में सराबोर रहना किसी से प्यार होने का प्रमाण माना जाता है और उधर? जैसे हरी घास पर क्षण-भर लेटकर आसमान में पंख तौलते दो पाखियों को देखा, सराहा और फिर कपड़े झाड़ कर अपने-अपने काम पर चल दिये! हमेशा व्यस्त रहना और व्यस्त दिखना अमेरिकी सभ्यता है। अपन भारतीय तो लाख कामकाजी हों, फुरसत के लम्हों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य देने के लिए तरसते हैं। अमरीकी जहाँ वीकेंड महज अपने लिए सुरक्षित रखता है, भारतीय अपनों को ढूँढ़ता, तलाशता है। दीप के अमेरिकी दोस्त जेनिस और जॉन वीकेंड पर कैम्पर में सपरिवार कैम्पिंग के लिए जाते हैं। कभी ओपन कार में पोर्टेबल बोट लेकर तैराकी का प्रोग्राम बनाते हैं। नयी-नयी जगहें देखना, नये खेल सीखना, नये शौकों को पूरा करना आम अमरीकी का नशा है। बूढ़ों के लिए ओल्ड होम हैं, जन्मदिन या नये वर्ष पर उन्हें कार्ड भेज दिया या समय मिले तो मिलने चले गये कोई छोटी-मोटी

भेंट लेकर। एक विचित्र-सी तटस्थता हर रिश्ते में! बच्चे किशोर हो गये तो अपने शौक पूरे करने के लिए खुद पार्ट-टाइम नौकरी कर धन इकट्ठा कर लेंगे। माता-पिता अपने शौक पूरे करेंगे, बच्चे पन्द्रह-सोलह साल के बाद अपने खर्चे आप उठाएँगे, चाहे किसी स्टोर पर खरीदारों का बिल बना कर या किसी रेस्तराँ में पिज्जा बना कर! जेनिस की चौदह साल की बेटी औरलैंडो जाना चाहती है। पैसे चाहिए तो दिन में तीन-चार घंटे बेबी-सिटिंग करके पैसा इकट्ठा करती है। पर भारतीय अमेरिकी के साथ ऐसी मजबूरी नहीं है। वह अपने भारतीय संस्कारों को सहज ही छोड़ नहीं सकता। यहाँ भी ताउम्र बच्चों की पढ़ाई और शौकों के लिए खटना वह अपना धार्मिक और नैतिक दायित्व मानता है और बच्चों की शादी होने तक उन पर लगभग छाया रहता है। बच्चों पर इस रीति-नीति का प्रभाव पड़ता ही है! वे बाहर अमरीकी और घर में हिन्दुस्तानी बनकर दुहरी मानसिकता में जीते हैं। मम्मी-डैडी से उम्मीदें रखते हैं, फरमाइशें करते हैं, जबकि अमरीकी युवा खुद श्रम करके अपनी जरूरतों के लिए धन कमाता है और बहुत जल्दी आत्मनिर्भर रहना सीख लेता है।

इसके अलावा भारतीय-अमेरिकी अपने बच्चों को भारतीय संस्कारिता का शीरा पिलाना भूलता नहीं। आजाद दुनिया की स्वच्छन्दताओं से बचाने की हर सम्भव कोशिशों में अपने साथ बच्चों को भी तनावग्रस्त करता है। बच्चे बाहर और घर के भीतर की भिन्न-भिन्न आचार संहिताओं और नैतिकता के प्रतिमानों को एक साथ स्वीकार नहीं पाते और अकसर दुविधाग्रस्त और दुहरी मानसिकता के शिकार हो जाते हैं। संजय इन्हें एबीसीडी कहता है (अमेरिकन बॉर्न कन्फ्यूज्ड देसीज), एक तरफ से शायद भाग्यशाली, दूसरी तरफ से तनावग्रस्त! दो राहों पर खड़े भौचक!

ज्योति अमेरिका में जनमी, पली, हाल में ही डॉक्टर हो गयी है। माँ-पापा हिन्दुस्तानी वर ढूँढ़ते खासे परेशान हुए जा रहे हैं। हमसे पूछा, ''तुम्हारी नजर में कोई डॉक्टर लड़का है जो अमेरिका में बसना चाहे, हम यहाँ उसकी आगे की पढ़ाई का खर्चा भी उठाएँगे।'' ज्योति से पूछा तो वह माँ-पापा का लिहाज करते हुए भी दबे-दबे गुस्से से बोली, ''आंटी, अमेरिकी लड़कों में क्या खराबी है? आखिर मैं भी तो अमेरिकी हूँ?'' उसे लगता है माँ-पापा उसके साथ ज्यादती कर रहे हैं। मम्मा उसके युवा होने के बाद भी अमरीकी लड़कों से डेटिंग के लिए मना करती रही– हमारे यहाँ यह गलत है, वह गलत है कहकर! लड़कियाँ वीकेंड पर अपने बॉयफ्रेंड्स के साथ डेटिंग के लिए जाती थीं तो उसे लड़कियों के साथ घूमते देख मजाक उड़ातीं– क्या तुझे कोई लड़का नहीं मिला?

अब उसकी अपने एक नीग्रो सहपाठी से दोस्ती हो गयी है तो माँ-पापा के होश गुम हो गये हैं। कहाँ सफेद चमड़ी से भय और कहाँ सात फुटा नीग्रो!

नैन्सी राय बेलाग बात करती है। ''आंटी, मम्मा-डैडी हमें प्यार करते हैं, हमारी हर डिमांड पूरी करते हैं, पर हमें अपना साथी चुनने के लिए अकेला नहीं छोड़ते। सेक्स को लेकर हंगामा खड़ा करते हैं। इधर तो यह सब नैचुरल है। आफ्टर ऑल, वी हैव टू फांइड हसबंड फॉर अवर सेल्वज!''

लेकिन यहाँ राय साहब बेटी के लिए हसबंड की तलाश में जुटे हैं। मिसेज राय अभी भी सोचती हैं कि कोई हिन्दुस्तानी लड़का मिलता तो वे गंगा नहातीं, यह जानते हुए भी कि गंगा 'पैसेफिक ओशन' से काफी दूर बहती है।

शिकागो में नलिनी पंडित अपने इर्द-गिर्द के माहौल से सन्तुष्ट दिखीं। उनके डॉक्टर पति के पास दीन-जहान की दौलत है, पैसा, पद, शोहरत! बच्चे एमआईटी और स्टैनफोर्ड-जैसे मशहूर और महँगे संस्थानों में पढ़ रहे हैं, लेकिन उनकी भी कोई रग बराबर दुखती रहती है। उनकी बेटी शैला बड़ी प्यारी लड़की है। माँ-पापा का आदर करती है, उनसे फालतू बहस नहीं करती। नलिनी जी समझ नहीं पातीं कि बेटी की हर ख्वाहिश पूरी करने के बावजूद उसने हाईस्कूल में हेडमिस्ट्रस से शिकायत क्यों की थी कि मेरे माँ-पापा मुझे अपने मनचाहे ढंग से जीने नहीं देते। वह वाकया नलिनी जी भूल नहीं पातीं। भूलें भी कैसे? उस बदलिहाज हेडमिस्ट्रस ने स्कूल में बुला कर चेतावनी जो दी कि अमरीकी सिटिजन होकर आप बच्चों पर जोर-जबरदस्ती नहीं कर सकते, आप पर मुकदमा दायर किया जा सकता है। वह क्या कम बेइज्जती की बात थी? नलिनी और डॉक्टर पर क्या गुजरी होगी उस वक्त, इसका अन्दाजा लगाना हमारे लिए मुश्किल नहीं था।

पूछने पर शैला ने एक ही बात कही, ''मम्मा-पापा ने मुझे बहुत कुछ दिया, पर आजादी नहीं दी।''

आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, नलिनी जी जानती हैं पर बेटी के लिए आजादी के मायने क्या थे– यह समझने में वह चूक गयी थीं।

वॉशिंगटन में रवि राव से मिलकर लगा कि अमेरिका में बसे भारतीय अपने अतीत में जिये गये समय में फ्रीज हो गये हैं, तभी शायद वे बच्चों की सोच और व्यवहार के प्रति कुछ ज्यादा ही शंकित रहते हैं। पिछले बीसेक वर्षों में भारत ड्रेस सेंस से लेकर आचार-विचार में कितना कुछ बदल गया है, इसे जानते हुए भी वे अपने बीते समय को कस कर थामे हुए हैं। संजय के दोस्त रवि ने हमारे पाँव छुए तो जरा अटपटा महसूस करने के बावजूद लगा कि विदेश में अपने भारतीय संस्कारों को बचाये रखकर वे वहाँ के 'कुकी कटर कल्चर' से अलग अपनी पहचान बचाये रखना चाहते हैं। यों युवा वर्ग में

पाँव छूने की रस्म तो अपने यहाँ भी बीती बात होती जा रही है। रवि के बुकरैक में ढेर सारी टेक्निकल पुस्तकों के बीच धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नीरज की कविताएँ देख कर खुशी हुई। सुगढ़ और मृदुभाषी है रवि पर पिताजी की नजर में नहीं, क्योंकि वह सुलक्षणा से शादी करना चाहता है, जो उनकी नजर में एक तो बिरादरी बाहर, ऊपर से छोटे कुल-गोत्र की है! हम चकित, इसमें गलत क्या है? उसकी अपनी जिन्दगी है, पूछे बिना न रह पाये। राव साहब का जवाब हाजिर– ''इस विदेशी भूमि पर रहकर हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करनी है। ज्यादा छूट बड़े बेटे को दें तो इनके छोटे-भाई बहन हमारी सुनेंगे? किसी भी ऐरे-गैरे के चक्कर में पड़ कर कुछ भी कर लेंगे...!''

संस्कृति, सभ्यता, देशी नैतिकता और विदेशी भूमि का आकर्षण! बड़ी गड्ड-मड्ड-सी लगी राव साहब की सोच और उनका रवैया!

लेकिन सैन फ्रांसिस्को में मिसेज अग्रवाल काफी उदार लगीं। उनके बेटे ने एक फ्रेंच लड़की से शादी की है। उन्होंने कोई एतराज नहीं किया। पोशाक और खान-पान में भी वे अमेरिकी रंग-ढंग अपना चुके हैं, पर वहाँ भी सब सुनसान नजर नहीं आया। नील दुखी-सा लगा, पूछा– ''मारिया के साथ खुश हो न?'' तो जैसे भरे गुब्बारे में पिन चुभो दी। ''खुश तो हूँ आंटी, पर मारिया अब जल्दी मुझे छोड़कर जाने वाली है।''

''अरे, क्या हुआ? तुमने तो प्रेम-विवाह किया है, फिर इतनी अच्छी आधुनिक विचारों की मम्मी पाई है जो तुम्हें बेहद प्यार करती है।''

''प्यार तो ठीक है, पर मारिया अपने ढंग से जीना चाहती है। कहती है, मम्मा ज्यादा पजेसिव हैं, हमें अकेला नहीं छोड़तीं।''

एक भिन्न और नितान्त वैयक्तिक, अपने खोल में बन्द जिन्दगी पहले तो लुभाती है, बाद में बाल-बच्चे होने पर वही मुक्त और स्वच्छन्द दुनिया आशंकाओं और आतंक से त्रस्त करने लगती है। भारतीय पुरुष अपने लिए कोई सीमाएँ नहीं मानता, पर पत्नी, बहन, बेटी को पराये मर्दों के साथ मिलते-घुलते देख आशंकित हो उठता है। माँएँ बेटों को तो माफ कर देती हैं, पर बेटियों को सफेद चमड़ी से डेटिंग करते, इश्क लड़ाते देख जहर खाने की स्थिति में आने लगती हैं। नतीजन, नयी पीढ़ी विदेशी वातावरण में न देसी रह पाती है और न विदेशी। दुविधाग्रस्त! एक तरफ घर का लाड़-प्यार, बिन माँगी सुविधाएँ, दूसरी तरफ निजी जीवन में अमरीकी स्वतन्त्रता से वंचित! अस्पष्ट विचारों और अवरुद्ध मन:स्थिति वाली पीढ़ी। बाहर अमरीकी, घर में भारतीय!

मारिया अपनी जगह गलत भी नहीं है। उनके मम्मा-पापा सोलह साल के बच्चों के साथ चिपके नहीं रहते। मारिया वन रूम अपार्टमेंट लेकर दे रही है, पर श्रीमती अग्रवाल तमाम सुविधाएँ देने के बावजूद परदेस में अकेले नहीं रहना चाहतीं। एक ही तो बेटा है इस पराये देश में, मेरे भाई-बन्ध भी तो नहीं।

क्या पता उन्हें अकेलेपन से डर लगता है या अन्तिम समय बेटे के हाथ से दो बूँद जल न मिलने की त्रासद आशंका घेरे रहती है। कितना बदल सकता है माँ का वत्सल मन? बेटा-बहू दुत्कार रहे हैं पर माँ समझना नहीं चाहती।

फ्रीमांट कैलिफोर्निया में कौल परिवार ने अकेलेपन का इलाज खोज लिया है। 'पिक्चरस्क' पहाड़ी के ऊपर सुआपंखी हरियाली के बीच दूर-दूर तक फैले परी महलों जैसे सुन्दर घर, जिनमें कई घर उनके मामा-चाचा और देवर-जेठों के हैं, पूरा मुहल्ला ही मुझे वहाँ हिन्दुस्तानी बन्धुओं का नजर आया। तीसेक वर्षों से वहाँ रहते कौल परिवार के सदस्य न दमआलू, मखनी, रोगनजोश बनाना-खिलाना भूल पाये हैं और न कश्मीरी कहवा। होली, दीवाली, नवरोज एक साथ मनाते हैं। विदेश में भी एक छोटा-सा भारत देश बसाया है– अपना खान-पान, अपने पर्व-त्यौहार!

न्यूर्सी में माहौल थोड़ा भिन्न है। इसे 'गार्डन स्टेट' कहा जाता है पर इधर क्रूड ऑयल की डिसटिलेशन करके पेट्रोल वगैरह बनाने के कारखानों के कारण चिमनियों से उठता धुआँ वातावरण को दूषित करता है। इसीलिए शायद इसे, 'आर्मपिट ऑफ अमेरिका' भी कहा जाता है। संजय ने कहा, ''भारतीयों को यहाँ, 'डॉट बस्टर्स' कहते हैं। अमेरिकी इन्हें यहाँ पसन्द नहीं करते।'' सुनकर थोड़ा धक्का लगा। जया ने पता नहीं किसका बचाव-सा करते कहा– दीदी, इधर अनेक भारतीय व्यापारी बस गये हैं, समझो न्यू जर्सी के व्यापार पर हावी हो रहे हैं। जाहिर है, यहाँ के निवासियों की नौकरियों और काम के अवसरों पर असर पड़ा है। कुछ मध्यवर्गीय व्यापारियों का रहन-सहन और ग्रोसरी स्टोर्स भी अमेरिकी स्टैंडर्ड के हिसाब से ज्यादा साफ-सुथरे नहीं हैं।

विनोद ने जोड़ा– ''मैं तो इसकी वजह 'बिजिनेस राइवलरी' मानता हूँ, यहाँ रोजमर्रा की जरूरतों के स्टोर्स, पंजाबी और दक्षिण भारतीय स्वाद के रेस्तराँ ही नहीं हैं, हिन्दोस्तानी डॉक्टर-इंजीनियर और टेकनोक्रेट्स भी काफी तादाद में हैं। आम भारतीय यहाँ श्रम करता है, ज्यादा पैसा कमाता और कम खर्चता है। पीछे भारत में छूटे माँ-बाप, भाई-बन्धुओं को भी तो डॉलर्स भेजने होते हैं।''

मन नहीं माना, बात का रुख बदल कर पूछा– ''तो क्या तुम लोग बिन्दी इसी डर से नहीं लगाते कि राह चलते कोई तुम लोगों को 'डॉट बस्टर्स' कहकर अनादर न करे?''

''नहीं, ऐसा अक्सर नहीं होता, पर ऐसा होने का मौका ही क्यों दिया जाए?''

''फिर तुम इस तरह के तनाव-भरे माहौल में क्यों रहते हो?''

मेरे सवाल का कोई सटीक जवाब उनके पास नहीं था।

अब कई सालों से यहीं रह रहे हैं, बच्चे यहीं हुए, पले-बढ़े और कई सुविधाओं के आदी हो गये। उन्हें भारत ले जाते हैं तो वे अपनों से मिल कर खुश तो होते हैं, पर उधर चौतरफ फैली गन्दगी, पॉल्यूशन से अक्सर बीमार पड़ जाते हैं। एम्मी को पिछली बार जबरदस्त डायरिया हो गया था।

जया जीव विज्ञान में डॉक्ट्रेट है। विदेश आई तो छिटपुट नौकरियों, प्रयोगशालाओं में पार्टटाईम काम के अलावा कोई मनपसन्द काम नहीं मिला। सो एक अमेरिकी दोस्त के साथ रेस्तराँ खोला। वहाँ पिज्जा-बर्गर के साथ कुछ भारतीय पकवान भी परोसती है। अब अच्छी-खासी आमदनी होती है। सबर्ब में घर लिया है, आधुनिक सुविधाओं से लैस। सामने खूबसूरत लॉन है, जिसे पति-पत्नी छुट्टी के दिन तराश लेते हैं। जया के पास डैटसन है, विनोद के पास निसान कार! बेटी को 'बाग' लेकर दी है। एम्मी का रंग-ढंग अमेरिकी लड़कियों-जैसा ही है, पर माँ शिकागो और वाशिंगटन में बसे दोस्तों-रिश्तेदारों से सम्पर्क बनाये है। वही, बेटी के लिए भारतीय-अमेरिकी वर की तलाश!

शीला जी काफी संजीदा लगीं, बर्कले यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं, छात्रों को भारतीय भाषाएँ सिखाती हैं। पति इंजीनियर हैं, बेटा आर्किटेक्ट! बर्कले की घुमावदार पहाड़ियों पर ओक और सफेदों की घनी छाँह में सुस्ताते-से अपने दुमंजिले घर में उन्होंने गर्मजोशी से हमारा स्वागत किया। हरियाली से ढँके-मुँदे, कहीं भूरे कहीं सफेद, ढलवाँ छतों वाले खूबसूरत घर! मुझे गुलमर्ग याद आ गया। ''वाह! कितना सुन्दर घर है!'' मैंने तारीफ की।

काँच की पारदर्शी दीवार के पार चीड़ के दरख्त ओढ़े पहाड़ियों के पीछे डूबते सूरज को देखते, जाने क्या सोचती-सी शीला जी बोलीं, ''पच्चीस साल हो गये हमें यहाँ रहते, पर कभी घर-जैसा नहीं लगा। मैं लगभग हर साल भारत जाती हूँ। वहाँ अपनी गलियों में अपने पुराने संगी-साथियों से मिल कर लौटती हूँ, जस्ट फॉर इमोशनल रीचार्ज!''

इमोशनल रीचार्ज शायद वॉशिंगटन में रहती राधिका के लिए भी जरूरी है, पर वह वर्षों घर नहीं जा पाती। एक सच यह भी है कि वहाँ रहते सभी भारतीय इतने धनवान नहीं हैं कि अपने परिवारों की जरूरतें भी पूरी कर सकें और आने-जाने का भारी खर्चा वहन कर साल-दो-साल में अपने माता-पिता और भाई-बन्धु के सुख-दुख में शामिल हो सकें। करीब छह वर्षों से वह घर नहीं जा पाई है। इस बीच उसके पिता गुजर गये, माँ बेटी को देखने को जान मुट्ठी में रोके बैठी है। मैंने राधिका से पूछा, माँ की याद नहीं आती? वह ईमानदार लहजे में बोली, ''दीदी, सुबह छह बजे बिस्तर छोड़ती हूँ। एक कप दूध हलक में डाल, दो घंटा ड्राइव कर वर्कप्लेस पहुँचती हूँ, घर लौटते शाम के सात-आठ बज जाते हैं। लौटते ही घर और बच्चों की जरूरतें पूरी करने में जुट जाती हूँ! रात दस बजे तक थक कर चूर हो जाती हूँ, तब तख्ता हुई कमर सीधी करने के लिए नींद के सिवा और कोई ख्वाहिश बची नहीं रहती...। शनि-रविवार घर की साफ-सफाई, लॉन मोइंग वगैरह में निकल जाता है। सच पूछो तो इट्ज गेटिंग लॉन्गर एंड लॉन्गर नाउ!''

उसकी आवाज में कैसी तो विरक्ति महसूस हुई। पूछा नहीं, 'मशीन बन कर जीने के लिए ही क्या तुम अपनों को छोड़ कर इधर रहने आई थी?'

न्यूयार्क की चैम्बर स्ट्रीट में ग्यारहवीं मंजिल के वन रूम अपार्टमेंट में रहती, नीता भी ज्यादा खुश नहीं दिखी। उसकी माँ ने मेरे हाथ बेटी के लिए कुछ उपहार भेजे थे। आग्रह किया था खुद उसके अपार्टमेंट में जाकर दे देना, देखोगी कैसे रहती है, मुझे तो कुछ बताती नहीं।

माँ का भेजा हाथ से बुना सिल्वर ग्रे स्कार्फ देखकर वह भावुक हो गयी। खिड़की के काँच से बाहर दूर सागर के बीच खड़े लिबर्टी स्टेचू और एलिस आइलैंड की इमारत को देखते वह भरे गले से बोली– ''आंटी! कभी सोचती हूँ, क्यों आई इधर? अपनों से दूर अकेली पत्थरों के इस जंगल में। क्या खोया और क्या पाया? तब एलिस आइलैंड पर डूबते सूरज की लालिमा में, कई साल पहले अनेक यात्रियों की कतार नावों पर सवार नजर आती है। कहाँ-कहाँ से आकर लोग इस द्वीप पर उतरे, उन्हें काम चाहिए था, वे बेघर थे, आक्रमणकारी नहीं थे आंटी, उन्हें जीने के लिए आसरा चाहिए था। मेरे पास मेरा घर था, अपना देश था, लेकिन मुझे अपने देश ने क्या दिया? मैं एक अच्छी एथलीट थी, पर कुछ तमगों के अलावा एक टुच्ची-सी क्लर्की के सिवा मेरे पास क्या था? अभावों से

जूझती जिन्दगी! पापा मुझे बेटा कहते थे, पर मैं मामूली कमाई से उनकी आर्थिक समस्याओं को हल नहीं कर पाती थी। यहाँ आई तो कम से कम अच्छे पैसे कमा कर उन्हें भेजती हूँ। एक ही तसल्ली है कि मम्मी–पापा की कुछ उम्मीदें पूरी कर पा रही हूँ।''

''तुम्हारा अपना भविष्य? कोई जीवन साथी?'' मैंने पूछा।

चालीस के आसपास पहुँची लड़की यहाँ 'रैग' कहलाती है। वह उदासी झटक कर मेरे लिए कॉफी बना लाई!

अनेक दास्तानें हैं भारतीय अमेरिकों की। सुविधाएँ, आकर्षण और विडम्बनाएँ साथ-साथ! आर्थिक आकर्षण, साफ-सुथरे माहौल में अपनी आजाद आकांक्षाओं को जीने और मनचाहा हासिल करने का स्वप्न! सामाजिक–नैतिक हिदायतों से दूर, जिन्दगी को परत दर परत खोलने की तमन्ना और खुद को साबित करने की कोशिश! दूसरी ओर स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के अनिवार्य परिणामों से उपजीं समस्याएँ! एक भिन्न और नितान्त वैयक्तिक, अपने खोल में बन्द जिन्दगी पहले तो लुभाती है, बाद में बाल-बच्चे होने पर वही मुक्त और स्वच्छन्द दुनिया आशंकाओं और आतंक से त्रस्त करने लगती है। भारतीय पुरुष अपने लिए कोई सीमाएँ नहीं मानता, पर पत्नी, बहन, बेटी को पराये मर्दों के साथ मिलते-घुलते देख आशंकित हो उठता है। वही सदियों पहले स्त्री के लिए तय की गयीं आचार संहिताएँ, लक्ष्मण रेखाएँ! माँएँ बेटों को तो माफ कर देती हैं, पर बेटियों को सफेद चमड़ी से डेटिंग करते, इश्क लड़ाते देख जहर खाने की स्थिति में आने लगती हैं। शुक्र है, वक्त के बदलाव के साथ नैतिकताओं की परिभाषा भी बदलने लगी है, पर विचारों का दोगलापन विदेशों में भी मुश्किल से छूटता है। नतीजन, नयी पीढ़ी विदेशी वातावरण में न देसी रह पाती है और न विदेशी। दुविधाग्रस्त! एक तरफ घर का लाड़-प्यार, बिन माँगी सुविधाएँ, दूसरी तरफ निजी जीवन में अमरीकी स्वतन्त्रता से वंचित! अस्पष्ट विचारों और अवरुद्ध मनःस्थिति वाली पीढ़ी। बाहर अमरीकी, घर में भारतीय!

ज्योति, एम्मा और डॉली की जवान पीढ़ी असमंजस में है। बड़ों से प्रश्न पूछती है, शिकायतें करती है और अपने ढंग से जीने का हक भी माँगती है, आखिर वे अमेरिकी हैं!

बच्चों से अलग, बूढ़ों की समस्याएँ भी कम विकट नहीं हैं। भारतीय अमेरिकी अपने बुजुर्गों को घर में छोड कर विदेश में बस गये, पर अपनों के मोह से बिंधे रहे। दूरियों की वजह से घरवालों के सुख-दुख में अक्सर शरीक नहीं हो पाते, होली-दीवाली, शादी, उत्सवों पर, भेंट-उपहार भेज कर अपने जुड़ाव को बनाये रखते हैं। बच्चों के लिए भारतीय साथी ढूँढ़कर उन्हें अपनी जड़ों से बाँधे रखने की कोशिश करते हैं, जो अक्सर कारगर नहीं होतीं। अमेरिकी आकर्षणों से प्रभावित होने के बावजूद वे यहाँ की मशीनी जिन्दगी के पुर्जे होकर रहने से खुद को बचाने की फिक्र में रहते हैं, शायद इसी वजह से भारतीय वहाँ एक-दूसरे के करीब भी हैं, पर बूढ़े होकर उन्हें दुहरा अकेलापन झेलना पड़ता है। बच्चे नौकरियों के लिए उनसे दूर चले जाते हैं तो एक भयावह अकेलापन उन्हें ग्रस्त लेता है। प्रदेश में दूसरा प्रदेश उग आता है।

शायद यह नियति होती है एक-दो पीढ़ियों की कि वे दो नावों पर पैर रख कर जीवन-यात्रा करने को अभिशप्त होते हैं, जबकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि देर-सवेर एक रास्ता चुनना ही होगा।

विदेशी भूमि पर न्यूयॉर्क, शिकागो, नॉर्थ कैरोलाइना, कैलिफोर्निया आदि जगहों पर मन्दिर, मस्जिदें और गुरुद्वारे देखे, जिनमें भारतीय-अमेरिकी भजन-पूजन, यज्ञ आदि के अलावा जनेऊ, मुंडन और शादी-ब्याह के संस्कार भी भारतीय विधि-विधान से करते हैं और अपनी संस्कृति एवं परम्परा को बचाये रखने की कोशिश करते हैं। एक-दो पीढ़ी तक तो यह निभ सकता है, पर आगे?

आगे तो उन्हें अमेरिकी जीवन-शैली अपना कर भारतीयता का मोह छोड़ना ही पड़ेगा। बकौल मिसेज अग्रवाल, वहाँ की मिट्टी में जज्ब होकर शायद अपनी पहचान खो कर नये समाज में जीना पड़ेगा, जहाँ न माँएँ बच्चों के लिए भारतीय वर-वधू ढूँढ़ेंगी और न फ्री सेक्स डेटिंग का विरोध कर, एड्स का डर दिखा, नैतिकता का पाठ पढ़ाएँगी। अभी संक्रमण काल ही है। विदेश की चकाचौंध में जीते भारतीय अमेरिका में जनमे बच्चों को तमाम सुख-सुविधाएँ मुहैया कर अपनी अधूरी इच्छाओं को उनमें पूर्ण होते देख कर सन्तुष्ट होते हैं। तनाव भी कई हैं। दीप के शब्दों में कहें तो, 'जो पहले महत्त्वपूर्ण लगता था, उम्र बढ़ने के साथ उतना जरूरी नहीं लगता।' यानी युवावस्था में आजाद दुनिया का आकर्षण कि विकसित देश में आकाश के तारे तोड़ लेंगे, सबकुछ सम्भव होगा वहाँ, यानी कि एक भरपूर जिन्दगी!

फिलहाल अपने इर्द-गिर्द तामझाम जुटाते, विकसित देश की सुविधाएँ भोगते और पीछे छूटे स्वजनों-बन्धुओं को याद करते, वे विदेश में खुद को खर्च करते जी रहे हैं, अपनी जमीन से जुड़े रहने के लिए पारम्परिक विश्वास अगली पीढ़ी को सौंपते हुए। जब तक सम्भव हो तब तक। अपनों से कटने का दर्द कितना पीड़ाजनक होता है, इसका अहसास तब हुआ जब विदा के समय माँ ने कहा, ''तुम लोगों की याद आती है तो उस टेकरी पर बैठ कर तुम्हें जोर से पुकारती हूँ। तुम मेरी आवाज सुनते हो न?''

हाऊस नम्बर-3020, सेक्टर-23,
गुरुग्राम-2020, हरियाणा
मो. 9810629950

पुनः पाठ

ऐ लड़की

आधुनिकता और पारम्परिकता का द्वन्द्व

शर्मिला बोहरा जालान

कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की' ऐसी विरल-सी लम्बी कहानी है, जिसके बहुतेरे सन्दर्भ और अर्थ खुलते हैं। बार-बार पढ़ते हुए दिलचस्प, आत्मीय और गहरे अनुभव मिलते हैं। यह कृति आज भी प्राणवान और प्रबल इसलिए है कि इसमें अम्मू का अपनी लड़की के साथ ममतामयी रिश्ता तो है ही, पर साथ ही साथ द्वन्द्वात्मक रिश्ता भी है। इसमें कई तरह की प्रतिध्वनियाँ हैं।

लड़की की प्रतीक्षा

इस कहानी में प्रेम की प्रतीक्षा की, उस आवाज की, जो लड़की को पुकारेगी, की प्रतिध्वनि है। ऐसा लगता है कि यहाँ लड़की को जीवन में किसी के आने की प्रतीक्षा है। किसकी? कोई ऐसा भाव, कोई ऐसा प्रेम, कोई ऐसा अनुराग, जो सच्चा हो, जो छल न हो जिस पर लड़की की आस्था हो। क्या सोबती जी के मन में अमूर्त रूप से ऐसा कोई भाव था? कोई ऐसा जीवन आये, किसी भी उम्र में आये, प्रौढावस्था में ही सही पर कोई आये, तभी लड़की शादी के घेरे में जाने का साहस करेगी। 'ऐ लड़की' की लड़की के मन में माँ का पारम्परिक संयुक्त परिवार का जीवन जीने और चुनने की, उस जीवन में प्रवेश करने की कोई इच्छा नहीं

है। तो उसके मन में क्या है? लड़की कहती है– ''मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज देगा, मैं उसे जवाब दूँगी। अम्मू, अब तो तसल्ली है?''

जो मुझे आवाज देगा। यह 'जो' कौन है? किसी का इन्तजार है शायद। लड़की के जीवन में जब कोई ऐसा क्षण आयेगा, जब कोई ऐसा गहरा एहसास होगा कि कोई उसे आवाज दे रहा है, तब शायद वह परिवार के बन्धन में बँधने की इच्छा रखेगी। यह कहानी अम्मू के गहरे जीवन-बोध और उनकी कलात्मक अन्तर्दृष्टि को जानने की कहानी है तो साथ ही साथ लड़की के आधुनिक जीवन को, उसके मूल्यबोध को, उसकी अन्तर्दृष्टि को जानने की कहानी भी है। यह वाक्य लड़की के मानवीय अस्तित्व के होने या न होने को भी अभिव्यक्त करता है। लड़की की शान्त, चुपचाप और गहरी भूमिका, इस कथा को नया आयाम देती है।

एक घर उल्टा, एक घर सीधा

'ऐ लड़की' का स्थापत्य, यहाँ आये संवादों का सिलसिला, एक तरफ पारम्परिक जीवन के सुख और सीमाओं को तो दूसरी तरफ आधुनिक जीवन के आकाश को अभिव्यक्त करता है। आधुनिक और पारम्परिक, दोनों प्रकार के जीवन के द्वन्द्व को पारदर्शी भाषा में भी दिखाता है। यहाँ किसी भी तरह का *मेलोड्रामा* और *सेन्टीमेंटल* एप्रोच नहीं है बल्कि कहानी कहने के ढंग की प्रगल्भता, प्रवीणता और गुणवत्ता है।

कहानी की बुनावट, ऊन के गोले और सलाइयों से बुने उस स्वेटर की तरह है जिसमें एक घर उल्टा और एक घर सीधा होता है। अम्मू के पल-पल बदलते मूड, मन में आते-जाते कई मौसम, उन मौसमों की प्रवृत्तियाँ, उन मौसमों के राग-रंग, सच्चे और प्रभावशाली ढंग से संवाद में आते हैं। अम्मू एक ऐसा संगीत रच रही है जिसमें एक पल अपने संयुक्त परिवार के वैभव का गीत गा रही है तो दूसरे ही पल लड़की को तंज कस रही है और तीसरे पल लड़की के जीवन के प्रति यह भाव भी आता है कि वह अपनी अस्मिता और अपनी आजादख्याली की सम्भावनाओं को छूने वाला जीवन है। इस तरह यहाँ माँ-बेटी का शाश्वत संवाद है। मन में उठने वाले द्वन्द्व, ऊहापोह, विश्वासों और दुविधाओं का।

अम्मू और लड़की की अपनी-अपनी निजी विशिष्टताएँ हैं। लड़की का माँ की बातों पर संयमित रहना और धीरज धारण करना, सम्बन्धों का एक सन्तुलित संसार बनाता है। एक ऐसा सुन्दर और सम्भव संसार जहाँ अपनी-अपनी स्पेस बनी हुई है, मिली-जुली पारस्परिक स्पेस।

'ऐ लड़की' का टेक्स्ट हमें पारम्परिक समाज से जोड़ता है, जहाँ पर हमारा अपना मन बहुत ज्यादा है। सोबती जी की कहानियों और उपन्यासों में परिवार में स्त्री आती है अपनी अस्मिता के साथ, अपने तेज के साथ। मन्नू भंडारी के यहाँ मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्रियाँ आती हैं जो दोहरी भूमिका निभाते हुए लहूलुहान होती हैं, जिसके जीवन के अपने संघर्ष और चुनौतियाँ हैं। सोबती जी के यहाँ जो स्त्री आती है, वह पारम्परिक जीवन जी रही है। उनके मन में वह जीवन बहुत ज्यादा है, अपने राग और रंग में। अपने सही और गलत, अच्छे और बुरे सन्दर्भ में।

आज की बहुतेरी नयी स्त्रियाँ वह जीवन नहीं जी रही हैं पर वे उसी जीवन से निकली हैं। इस उपन्यास में माँ का अपने जीवन से लगाव और अनुराग है और उसके प्रति अहंकार भी कि कितना कुछ मिला। और मिला भी, जैसा कि अम्मू बताती हैं– ''तुम्हारे पिता स्वभाव के बड़े शान्त। गम्भीर। मैं जरा कठोर। पर मुझमें सीखने की उमंग थी ...सीखा। उनसे बहुत कुछ सीखा।''

अम्मू के पति अच्छे थे। हाँ, अम्मू ने यह नहीं किया कि ''चाहती थी पहाड़ियों की चोटियों पर चढ़ूँ। शिखरों पर पहुँचूँ। पर यह बात घर की दिनचर्या में कहीं न जुड़ती थी।''

पर जो किया और कर पायी, उसके प्रति अम्मू के मन में अभिमान है। इस तरह 'ऐ लड़की' के टेक्स्ट की बुनावट में एक घर उल्टा, एक घर सीधा है। जो मिला, उसका बखान और जो नहीं मिला, उसको लेकर उदासी का भाव।

तनाव

कहानी में तनाव है। जब इस कहानी में माँ बार-बार कहती है कि 'ऐ लड़की तुम अपने आप में क्या हो?' लड़की के मन के तानों-बानों को समझें, उसके मानस में झाँकें तो महसूस कर सकेंगे कि लड़की के मन में माँ की बातें सुनकर तनाव उतरता होगा।

''इस चमत्कार का तुम्हें क्या पता! इसकी जानकारी किताबों में नहीं मिलती। दीवारों को देखते चले जाने से उन पर तस्वीरें नहीं खिंचतीं! ऐसा हो सकता तो जाने तुम क्या-क्या न आँक लेतीं। न लड़की, सेमल के पेड़ से भी कभी सेब उतरते होंगे।''

लड़की खीजकर उठ खड़ी हो जाती है– ''मैं तुम्हें चुभा थोड़े रही हूँ! सखी-सहेलियाँ भी ऐसी बातें कर लेती हैं।''

''मैं किसी से ऐसी बातें नहीं करती और न ही सुनती।''

''कैसे सुनोगी! सब सपाट है। यह बीहड़ मुझे तो कुछ दीखता नहीं है।''

''क्या तुम्हें दीखता है!''

''इतना तो बताओ मुझे, तुम खड़ी कहाँ हो! किस मोड़ पर हो! पंक्ति में है कोई? भाई-बहनों के दरवाजे के बाहर हो तुम।''

'तुम क्या हो?' यह ऐसी बात है जो पूरे अस्तित्व को हिला कर रख दे। इस बात से मन में क्रोध उत्पन्न होगा। यह बात अस्मिता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाती है। लेकिन पुत्री में धीरज है। लड़की ने

आईसेक्ट पब्लिकेशन

विज्ञान पर एकाग्र कहानियाँ

विज्ञान कथाकोश

(6 खंडों में)

प्रधान संपादक : **संतोष चौबे** संपादक : **शुकदेव प्रसाद**

'विश्वरंग' के प्रारम्भिक संकल्पों में से एक था हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन को प्रोत्साहन देना तथा अब तक हुए विज्ञान कथा लेखन, कथा अनुवादों को सुचिन्तित रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना। हमें बहुत प्रसन्नता है कि 'कथा देश', 'कथा मध्यप्रदेश' एवं 'कथा भोपाल' के बाद अब हम छह खंडों में इस 'विज्ञान कथा कोश' को हिन्दी में प्रस्तुत कर पा रहे हैं। वास्तव में तो यक एक वैश्विक विज्ञान कथा कोश है क्योंकि इसमें विश्व के लगीाग सभी बड़े विज्ञान कथा लेखकों की कहानियाँ सम्मिलित की गई हैं और भारतीय भाषाओं में हुए या हो रहे विज्ञान कथा लेखन को भी रेखांकित किया गया है। छह खंडों में लगभग 2000 पृष्ठों में छपी यह विज्ञान कथाएँ पाठक के लिए एक ऐसा अद्‌भुत संसार रचती हैं जिसमें वह अपना भूत और भविष्य दोनों देख सकता है, उसकी कल्पना का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है और विज्ञान कथा लेखन के कुछ सूत्र भी उसके हाथ लग सकते हैं। यह भारतीय भाषाओं में हो रहे विज्ञान कथा लेखन का एक सिंहावलोकन तो है ही, यह हिन्दी के क्षेत्र में विज्ञान कथा संग्रह प्रस्तुत करने का लगभग पहला प्रयास है।

– **संतोष चौबे**

मूल्य : 500 रु. (प्रत्येक खंड), सम्पूर्ण सेट के क्रय पर विशेष छूट देय

अन्तर्मन और बाहर के यथार्थ से एक रिश्ता बनाया है। नये समय के दबावों के कारण लड़की के जीवन में जटिल और अलग-सी अनुभूतियों का जन्म होता रहता होगा। वह अपनी नयी संवेदनाओं के नये आकारों और रूपों को माँ के सामने अभिव्यक्त नहीं करती। स्वाधीन जीवन का कौन-सा रूप फैशन और चलन में है, वह माँ से साझा नहीं करती है। वहाँ पर माँ दाम्पत्य जीवन की बात करती है, जीवन में पिता ने कैसा साथ निभाया की बात करती है पर लड़की मौन है। यहाँ एकालाप है, शुद्ध चर्चा, बहस की जमीन नहीं है। माँ के संवाद, उनकी सोच, अलग रंग लिये हुए हैं। उसकी अपनी कथा है और लड़की का संसार अमूर्त ही रह जाता है।

माँ की मुक्ति पारिवारिक जीवन में नहीं है तो लड़की की मुक्ति भी उस अकेले जीवन में, उस अकेली यात्रा में नहीं है। इस प्रसंग में, इस सन्दर्भ में, लड़की संयमित है, कम बोलती है। अगर वह बोलती, ज्यादा बोलती तो कथा टूट भी सकती थी, वि शृंखलित हो सकती थी। यह कथा परिवार रस में डुबोती है। इस तरह यह कहानी पाठक के मन में भी कोई कलह या तनाव या क्लेश या क्रोध पैदा नहीं करती बल्कि पाठक एक सन्तुलित दृष्टि से इस टेक्स्ट से बाहर निकलता है। तो यह उस कला की, कृष्णा सोबती की कलम की, भाषा की खूबसूरती है।

यह कथा परिवार रस में डुबोती है। इस तरह यह कहानी पाठक के मन में भी कोई कलह या तनाव या क्लेश या क्रोध पैदा नहीं करती बल्कि पाठक एक सन्तुलित दृष्टि से इस टेक्स्ट से बाहर निकलता है। तो यह उस कला की, कृष्णा सोबती की कलम की, भाषा की खूबसूरती है।

संवाद

माँ और पुत्री का संवाद में नया कुछ भी नहीं है। माँ अपनी बेटी को जानती है। बेटी भी माँ को जानती है। लेकिन उसके बाद भी दो लोगों के बीच में, दो पीढ़ियों के बीच में, संवाद है। यह थीम दिलचस्प, मार्मिक और शाश्वत है। इस लम्बी कहानी में चरित्र के नाम पर माँ, बेटी और सूसन है। वहाँ ऐसा कुछ नहीं हो रहा है जिसे कहा जा सके कि कोई घटना घटित हो रही है। अम्मू बीमार हैं और पट्टियाँ बदली जा रही हैं। उसी से कहानी आगे बढ़ती है। नाटक लिखने वाले जानते हैं कि संवाद लिखना कितना कठिन काम है। तीन पीढ़ियों का संवाद है। नानी को याद करती है। अम्मू स्वयं तो मौजूद है ही और बेटी है। लड़की कम बोलती है। थोड़ा बोलती है और यह भी लगता है कि बेटी और क्या बोलेगी! कितना बोलेगी! वह जीवन में जो कर रही है, जहाँ खड़ी है, उसे माँ से साझा नहीं कर रही है। या तो उसके पास ऐसा कुछ नहीं, जिसे माँ को कहा जा सके या तो माँ समझेगी नहीं। लड़की का रीतापन हमारे मन में भी उतरता है और अम्मू की टीस हमारे मन में भी टीस बन कर उभरती है। पर लड़की अपने आप में है। मन के अन्दर तरह-तरह की चीजें चलती हैं। वे तरह-तरह की चीजें इस कहानी में चल रही हैं जबकि 'ऐ लड़की' कहानी है, कोई नाटक नहीं है। यह कहानी की शक्ति है। सत्तर-अस्सी पन्ने की कहानी जिसमें माँ अपने विराट जीवन को साझा कर रही है और सूसन, माँ की देखभाल करते हुए कई तरह के काम करते हुए दिखाई दे रही है।

यहाँ बाहर का परिवेश मरीज का परिवेश है। डॉक्टर, ऑपरेशन, दवापट्टी, इंजेक्शन, ग्लूकोज, ऑक्सीजन, दवा, नींद की गोली आदि की बात हो रही है। पर अम्मू के भीतर की दुनिया में भरा-पूरा परिवार है। रोज काम आनेवाली छोटी-छोटी चीजों की चर्चा है– फर का कोट, मेवे का डिब्बा, बादाम, मुनक्के, इलायची, दालचीनी, गिरियाँ, लिपटन चाय, नींबू, सन्तरे, अचार, चूर्ण, आम पापड़ आदि।

टीस

यदि इस लम्बी कहानी को हम तीन भाग में बाँटें तो एक भाग बेटी के अकेलेपन की टीस से भरा हुआ है। अम्मू कहती है– ''आखिर तुम किसको पुकारोगी!''

''यह बताओ, तुम क्यों नीली चिड़िया बनी बैठी हो!''

बेटी का भविष्य क्या होगा उसको लेकर लगातार माँ के अन्दर टीस रहती है। लड़की अपनी खामोशी, प्रतीक्षा और आकांक्षाओं को किसके साथ बाँटेगी! अम्मू, लड़की के जीवन की निर्जनता और भय को महसूस कर रही है। अम्मू के पास यथार्थ का एक ठोस आधार है। सुलझा और सधा हुआ पुख्ता आधार। परिवार का आधार। पर एक तरह का अधूरापन, अकेलापन भी है।

लड़की के जीवन में अम्मू परिवार के विघटन, पतन और विनाश को देख रही है और उस पीड़ा से गुजर रही है। अम्मू को ऐसा लगता है कि लड़की एक तरह की निरन्तरता खो रही है। अम्मू को लड़की का जीवन अधूरा लगता है पर इस कहानी का परिवेश विषादमय नहीं है।

इस तरह हम यह देखते हैं कि' ऐ लड़की' कई तरह के सन्दर्भ, अर्थ और प्रतिध्वनियों से समृद्ध लम्बी कहानी है।

6 रिची रोड, कोलकाता-700019
मो. 9433855014

❑ कहानी

उसी देहरी पर

उषाकिरण खान

जिस दिन रुकमी, उचितलाल के पीछे-पीछे गौने पर पहली बार ससुराल आयी थी, तब भी यह जगह अनजान नहीं थी और अब तो बिल्कुल भी नहीं है। रुकमी की बड़ी चचेरी बहन सुकनी इस गाँव की बहू थी। सुकनी, रुकमी से कम से कम दस साल बड़ी थी। उन दिनों जब तक परिवार के मुखिया दादा-दादी जीवित रहते, परिवार शामिल रहते, सो इनका बड़ा परिवार था। मजदूर हलवाहे का परिवार और शामिल। शाम को मजूरी लाकर दादी के सामने रखते, धान-दलहन का ढेर लग जाता। बेरहट यानी शाम का नाश्ता, घर की बेटियाँ भड़भूजे के यहाँ से चबैना जो भूनकर ला चुकी होतीं– पिता, भाई, चचा को सीकी मूँज की डलिया में परोस देतीं। एक-एक मुट्ठी लेकर पानी पीते वे बाहर बथान पर जाते, जहाँ बैलों के नाद भरे हैं कि नहीं, देख लेते। अमूमन नाद भरे होते। किशोर होते बच्चे गाय चरा कर लौट चुके होते, नाद में पानी-सानी रहता। पुरुष दो-चार दालान के, एक जगह जुटते, गपशप और भजन-कीर्तन में जुट जाते। आँगन से खाने का बुलौआ आता तभी लोग उठते। यह सब तब गाँव के घर-घर में होता। मजदूरों के घरों में भी गायें होतीं। कम से कम एक जोड़ी या एक बैल होता। प्राय: बैल अपनी गाय के बछड़े ही बड़े होकर हो जाते। बड़े गृहस्थ से बटाईदारी पर लिये अपने खेत, दो लोग मिल एक-एक बैल का जोड़ा बनाकर खेती करते।

रुकमी अपनी बड़ी बहन सुकनी के यहाँ तब आयी थी जब फ्रॉक पहना करती थी। इस गाँव में जन्माष्टमी

का मेला लगता रहा है, जाने कब से अजब-सा मेला लगता। अक्सर बरसात का पानी देहरी छू रहा होता, पर मेला लगता। दुकानें खेतों की मेंड़ पर, मचान पर, दालान पर सजतीं। मेलों में तरह-तरह के खिलौने मिलते। काठ-बाँस के, कचकड़े प्लास्टिक के चमकीले खिलौने। लट्ठो, हवा मिठाई और बरफ के गोले। कभी-कभी गोल चक्कर वाला झूला भी आ जाता। कई बार झूले पर से लोगबाग कीचड़ में गिर भी जाते। स्त्रियाँ दूर-दूर से आतीं मेला घूमने। बिन्दी, सुरमा, रिबन, चुटिल्ला और नकली बाल खरीदतीं। यह मेला चार दिन रहता। खूब बिक्री होती।

सो रुकमी कई बार धनुआही गाँव आ चुकी थी। धनुष की शक्ल में बने तिलयुगा तटबन्ध पर बसे गाँव का नाम उचित ही धनुआही है। रुकमी के लिए सुकनी ने ही उचितलाल को चुन लिया था। उचितलाल बाजू वाले आँगन का कर्मठ लड़का था। सुकनी ने उसे कभी बैठे नहीं देखा। स्कूल भी जाता वह। स्कूल से आकर गाय-बैल की नाद देखता। शाम को घूरा लगाता। ऐसा करते, खेत जोतते-कोड़ते मिडिल पास कर गया। गाँव से बहुत दूर हाईस्कूल था। इस गाँव के अधिकांश बच्चे मिडिल स्कूल के बाद पढ़ाई जारी नहीं रख पाते। उचितलाल दो साल से चौमासा में बाप, चचा के साथ पूरब-पच्छिम कमाने जाने लगा था। पढ़ा-लिखा था सो हिसाब गड़बड़ करने वाले मुंशी की गलती पकड़ मालिक को कह देता। मालिक अक्सर इसे शाबाशी देते और मुंशी को लताड़। उचितलाल के काम को देखते हुए मालिक उसको हिसाब-किताब में लगा देते। बरसात में पाट की धुलाई के लिए ये लोग जाते। उचितलाल गाँव की गिनती, गोदाम के स्टॉक की गिनती– सब रजिस्टर पर नोट करता। इस तरह वह धीरे-धीरे सुकुमार हुआ जाता। गाँव लौटकर हल-कुदाल में बहुत मन न लगता, इसे धीरे-धीरे जूट के किसान-सह-व्यापारी अपनी ओर अधिक आकर्षित करने लगे थे। गौना होते-न-होते उचितलाल आसनसोल का हो चला था। दस साल की रुकमी थी, तभी उसकी लगन उचितलाल से कर दी गयी थी। उसके बाद से ही उसका मेला आना छूट गया। धनुआही गाँव भी छूट ही गया समझो। उस समय उचितलाल गाँव के स्कूल में पढ़ रहा था। बाद में जब सत्रह साल की रुकमी हुई और उचितलाल उन्नीस का, तब गौना हुआ। रुकमी काम-काज में मन लगाने वाली स्त्री थी, ससुराल की प्यारी बन गयी। सुकनी को इस पर बहुत लाड़ आता कि घर का नाम बढ़ा रही है। उचितलाल अधिकतर आसनसोल में ही रहता, पर जब आता, घर के लोगों के लिए कुछ न कुछ ले आता। रुकमी के लिए भी भाँति-भाँति के साज-शृंगार के सामान ले आता जिसे इस्तेमाल करना कठिन था। कैसे वह रात्रि मिलन के वक्त ही तैयार हो और ढिबरी की रोशनी में अपने प्रियतम को दिखाये, यह सोचती रह जाती। समय बीत जाता, उचितलाल चला जाता प्रेम की प्यास लिये। कुछ परिवार आसनसोल में घर बनाकर रच-बस गये थे। वे उचितलाल से दुल्हन ले आने की बात करते जरूर, परन्तु उचित साहस न कर पाया। दादा तथा दादी की मृत्यु के बाद इनका परिवार बँट गया। चार भाई थे, चारों का बँटवारा हो गया। सभी खूब अच्छे खेतिहर थे, जमीन मालिकों के पक्के बटाईदार थे, बाढ़-सूखे के बावजूद कभी अन्न की कमी महसूस न होती थी। उचितलाल अपने पिता का अकेला लड़का और चार बहनें थीं जो ब्याह कर अपनी ससुराल में रहतीं। इसकी जरूरत अब गाँव में अधिक महसूस की जाती रही। खेत पर पिता अकेले हो गये।

''उचितलाल बाबू, अब तू शहरी मोह छोड़ और गाँव लौट आ। वहाँ अकेले रह कर जो कच्चा-पक्का पकाता-खाता है, सो यहाँ चैन से रह, खेती में हाथ बँटा।'' एक दिन बँटवारे के बाद पिता ने कहा। ऐसी आशंका उचित को थी। घर, बच्चे तथा रुकमी का प्रबल मोह उसे था, परन्तु वह अब पूर्णकालिक किसान बनने की मंशा नहीं रखता था। उस समय उसने कोई उत्तर न दिया, लौट कर आसनसोल आ गया। आसनसोल में आकर चुपचाप सोचता पड़ा रहता। एक-दो अपनी तरफ के साथी-संगियों ने गौर किया और उदासी का कारण जानना चाहा।

''मेरे गाँव में बँटवारा हो गया है। मैं अपने पिता का अकेला लड़का हूँ। खेती-बारी में उनको दिक्कत होती है। मुझे नौकरी छोड़ गाँव आने को कह रहे हैं। पसोपेश में हूँ, क्या करूँ?'' कहा उचितलाल ने। समस्या गम्भीर थी। मित्रों के पास तो नहीं, कुछ बुजुर्गों के पास जरूर समाधान था। वह समाधान गाँव लौटने का नहीं था। उनका कहना था कि गाँव का काम साथी मजदूर किसान मिलकर कर सकते हैं। उचितलाल को चाहिए कि अपने बच्चों को यहाँ ले आये, ताकि स्कूली शिक्षा तो पूरी हो। आगे यदि बढ़ना हो तो बढ़ें। उचितलाल गाँव में रहकर मिडिल पास होकर मजदूर ही रहा। वह तो संयोग और बुद्धि के इस्तेमाल से आज मुंशी है जूट मिल का। यह बच्चे को तो न झेलना पड़ेगा। उचितलाल ने गाँव में यही अपने पिता से कहा। थोड़े सोच-विचार के बाद बच्चे आसनसोल आ गये। बच्चों की माँ और दादी कुछ दिनों के लिए घर बसाने आईं, फिर गाँव लौट गयीं। उचितलाल के तीन बेटे कॉलोनी के स्कूल में पढ़ने लगे। दो

बेटियाँ अम्मा के साथ गाँव में ही रहने लगीं– स्कूल भी जातीं, गाय, बकरी भी चरातीं, मूज-सीकी की डलिया बुनतीं, घरों की दीवार पर मिट्टी से ही चित्र उकेरतीं विवाह योग्य हो गयीं। समयानुसार उनके विवाह-गौने हुए। रुकमी आसनसोल कभी-कभी हो आती। उसके बेटे स्कूल पास कर कॉलेज में पढ़ने लगे थे। उचितलाल का आकर्षण रुकमी के प्रति बरकरार था। संयुक्त परिवार से जीवन शुरू कर एक-एक सन्तान आने की यात्रा ने भी इनका संकोच न तोड़ा था, सो अब भी प्रेम का नयापन बाकी था। जूट मिल के पीछे क्वार्टरों का सिलसिला था। दो कमरों, बरामदे और चौके वाले घरों के सामने एक सम्मिलित मैदान था जिसमें बच्चे खेलते थे। पीछे छोटा आँगन और स्नान, हाजत का स्थान था। क्वार्टर बड़े कायदे का बना था। बाहर मैदान में बच्चे खेलते होते, कभी कबड्डी, कभी क्रिकेट। लड़कियाँ भी तरह-तरह के खेल खेलतीं तथा स्त्रियाँ साथ बैठ बतियाती होतीं। बिहार, बंगाल, उड़ीसा की स्त्रियाँ, अनेक लोकभाषाएँ जानने वाली टूटी-फूटी हिन्दी सीखती- बोलती स्त्रियाँ, कुछ हुनर भी करती होतीं। अगली पीढ़ी स्कूल-कॉलेज जाने लगी थी। रुकमी कुछ ही दिन रहकर चली आयी। दो बेटे रह गये, बाकी बची दो बेटियाँ और बड़ा बेटा गाँव लौट आये। बड़े बेटे को दादा-बाबा से तो लगाव था ही, खेत-बधार, गाय-बैलों से भी था। लेकिन रुकमी का जाना-आना लगा रहा। बाबा-दादी के साथ बड़ा पोता खेत का काम देखता। पेड़-पौधे लगाता। रुकमी को अपने कर्तव्य का भान था। सास, ससुराल की सेवा करती सुखी थी। आखिर जीवन ऐसे ही तो काटा था। बड़े बेटे की शादी-गौना हो जाने के बाद अपने को अधिक मुक्त पाने लगी थी। बेटियों के ससुराल जाने के बाद आसनसोल गयी थी तब देखा वहाँ का सबकुछ बदला-सा है। जूट मिल में तालाबन्दी हो गयी थी। मालिक ने वे छोटे-छोटे घर कर्मचारियों के नाम रजिस्टर कर जमा सेवानिवृत्ति लाभ चुकाया था। प्रायः लोगबाग तीसरे के हाथ बेचकर चले गये अपने-अपने गाँव ठिकाने पर। उचितलाल अब बिना समय के रिटायर हो गये। कोई काम हाथ में नहीं रहा। घर-मात्र अपना था। बड़ा बेटा रेलवे की छोटी-मोटी नौकरी पा गया था। छोटा लगा पड़ा था। रुकमी ने देखा, उचितलाल बेहद उदास है। बेटे अपनी धुन में रहते। दोस्त-मित्र सब जा चुके थे।

''क्यों न हम गाँव चलें?'' रुकमी ने पति को समझाया। फिर बेटों को भी बताया कि यह अपना कर्तव्य नहीं भूल सकती, वृद्ध सास-ससुर को छोड़कर अधिक दिनों तक नहीं रह सकती और उचितलाल भी फैक्ट्री नहीं जाते हैं, घर में यूँ ही पड़े रहते हैं, क्यों न गाँव चले चलें? बेटों को कोई एतराज न था। उन्होंने खुशी-खुशी माता-पिता को विदा किया। रुकमी के लिए लौटना सामान्य घटना थी, क्योंकि वह तो आती-जाती ही रही थी, लेकिन उचितलाल अन्दर ही अन्दर आहत-सा था। उसे लगता कि गाँव को तो उसने त्याग दिया था, वह तो शहरी हो गया था, उसे काम बन्द कर आना पड़ा। धीरे-धीरे उसने बथान-मचान से दूरी बना ली थी। इसी के सहारे कई लोगों को आसनसोल की विभिन्न मिलों में नौकरी मिली थी। यही शहरी बाबू बनकर भीतर से खोखला हो गया था। इधर गाँव का स्कूल उत्क्रमित होकर हाई स्कूल हो गया। बड़े बेटे अजय के पुत्र-पुत्री उसमें पढ़ रहे थे। उचितलाल की उदासी और चुप्पी को पिता जब तक थे, लक्ष्य किया करते थे। उन्होंने समझाया था, ''हम मजदूर किसान थे, अपने परिश्रम से अन्न उपजाकर स्वस्थ रहते थे। तुम दू अच्छर पढ़कर मिल में नौकरी करने लगे। वहाँ से हर महीने कुछ रुपया भेजते रहे जो समाज में लगा। बँटवारे के बाद जो कुछ आया, उससे हमने पच्छिम तरफ जमीन का टुकड़ा खरीद दिया, जिसमें दलहन होता है। तुम देखो और मन लगाओ।'' उचितलाल समझाता था कि यह सब उसके लाभ का ही तो हिस्सा है, पर उसका मन नहीं रमता। अपने मन का क्या करे? बेटा अजय खेती-बारी में जुटा रहता, रुकमी और बहू ढोर-डंगरों की सार-सँभाल में। घास काटने से लेकर सानी-पानी तक वे सँभालतीं। बच्चे स्कूल जाते तथा छोटे-मोटे काम करते। उचितलाल घास काटना भूल गया था, भैंस की पीठ पर चढ़कर पहसर चराना भूल गया था। शाम को भाई-बन्दों के साथ बैठ कर सत्संग तथा भजन याद नहीं कर सकता था। वह अपने आप से असन्तुष्ट रहने लगा था। एक दिन अपनी छोटी पोती की जिद पर उसे साथ लेकर स्कूल गया। स्कूल के अहाते में बने प्रधान शिक्षक के आवास से बुलावा आया। मजदूरों के गाँव में सफेदपोश उचित के साथ बैठना प्रधानाचार्य को सम्मानजनक लगा। उचित का भी मन लग गया। अक्सर वह स्कूल पर या स्कूल के मास्टर साहब के दालान पर बैठने लगा। घर में सालों से अनुपस्थित उचित के किसी भी काम में हाथ न बँटाने को लेकर किसी प्रकार का असन्तोष किसी ने न दिखाया, बल्कि सब खुश थे कि बाऊजी अब खुश दिखने लगे। हेडमास्टर साहब भी कभी-कभी हिसाब-किताब का रजिस्टर थमा देते। घर के बाल-बुतरू को गणित पढ़ा दिया करते उचितलाल।

आसनसोल से खबर आई थी कि मँझले बेटे अभय ने ऑफिस की अपनी

सहकर्मी झुमकी दास गुप्ता से शादी कर लिया। दोनों ने रजिस्ट्री शादी की। अभय ने आशीर्वाद देने को माता-पिता को बुलाया। झुमकी मात्र दो बहन थीं। माता-पिता नहीं थे। अच्छा यह था कि वह साथ ही काम करती थी। छोटी बहन सोनिया एक स्कूल में विज्ञान पढ़ाती थी। सबसे छोटे साहबजादे विजय बैंक की क्लर्की की परीक्षा पास कर गये थे। अब झुमकी की नजर उस पर गड़ गयी थी। बेसहारा स्लम में जीवन काटने वाली दोनों लड़कियों के पास कुछ खोने तक के लिए भी न था। अभय और विनय के पास गुनाहे-बेलज्जत एक अपना घर तो था। झुमकी ने आते ही घर की मरम्मत और विस्तार देने का प्लान तय कर दिया। दो में से एक कोठरी, बरामदा और आँगन अभय का, बाकी विनय का रहेगा। बराबर का बँटवारा– अपने-अपने हिस्से में दोनों भाई घर बना लेंगे स्वतन्त्र। एक तरफ घर बन गया था। अभय तथा झुमकी दास गुप्ता चाह रहे थे कि माता-पिता आएँ और आशीष दें। उचितलाल और रुकमी बड़े सम्भ्रम लिये आए। जाने इतने वर्षों बाद कैसी होगी कॉलोनी? कौन-कौन बचे होंगे? अपने घर का हाल कैसा होगा? कबिराहा उचितलाल गले में तुलसी माला पहने दुद्धा वैष्णव हैं। दुद्धा वैष्णव माने माँ के गर्भ से ही वैष्णव। मैया भी कंठीधारी थीं। यही हाल रुकमी का था। सम्भ्रम था बहू को लेकर, बंगालिन बहू जरूर साँकठ होगी, मछलीखोर। अपने घर के दरवाजे को नहीं पहचान पाये उचितलाल। नया घर, ग्रिल वाला दरवाजा लगा था। दरवाजे पर नेम प्लेट से पहचान पाये उचितलाल। नेम प्लेट पर लिखा था– अभय लाल महतो झुमकी दास गुप्ता। बाजू में पुराना छोटा घर रंगापुता-सा खड़ा था। नया घर दो मंजिला था। उनके पैर पुराने घर की ओर बढ़े। संयोग से विनय घर पर ही था। उसने माता-पिता का हुलसकर स्वागत किया, चरण छुए, अन्दर ले आया। दूर के सफर से आए थे, सो थकान साफ दिख रही थी। विनय ने तुरन्त चाय-नाश्ते का इन्तजाम किया। फिर तो चौके की कमान रुकमी ने सँभाल ली। अभय को जाकर कह आया विनय कि माँ-पिता जी गाँव से आ गये हैं। अभय दौड़ा-दौड़ा आया लिवा ले जाने। पर उचितलाल नहीं गये। दूसरे दिन जरूर उस घर का मुआयना कर आये। सुन्दर आधुनिक घर उन्हें देखकर अच्छा लगा। यह जरूर बुरा लगा कि पिता के घर का अपने मन से बँटवारा कर लिया। एक बार पूछा तक नहीं। बहू ने भरसक वाणी में थोड़ी कोमलता घोलने की कोशिश की, पर कामयाब नहीं हुई। देखने से साफ लगता कि वह अपने आपको ऊँचा दर्जा देती, इन लोगों को गँवार समझती। शान्त और चुप रहने वाले पिता-माता के सामने अपनी बहन सोनिया का रिश्ता बड़ी ठसक के साथ पेश कर दिया।

रुकमी ने पति को समझाया। फिर बेटों को भी बताया कि यह अपना कर्तव्य नहीं भूल सकती, वृद्ध सास-ससुर को छोड़कर अधिक दिनों तक नहीं रह सकती और उचितलाल भी फैक्ट्री नहीं जाते हैं, घर में यूँ ही पड़े रहते हैं, क्यों न गाँव चले चलें? बेटों को कोई एतराज न था। उन्होंने खुशी-खुशी माता-पिता को विदा किया।

''विनय को पसन्द है तो हमें कोई आपत्ति नहीं।'' रुकमी ने कहा।

''ऐसी लड़की कहाँ मिलेगी अम्मा, पसन्द क्यों नहीं होगी?'' झुमकी ने कहा।

''क्यों विनय, क्या कहते हो?'' माँ ने पूछा।

''पसन्द-नापसन्द की बात नहीं है, पर मैं अभी शादी नहीं करूँगा। मेरी ट्रेनिंग चल रही है, मैं कहाँ जाऊँगा, तय नहीं है। शादी की हड़बड़ी नहीं है।'' विनय ने कहा। झुमकी मानो आकाश से गिरी। सोनिया, झुमकी के साथ ही रहती थी। इस तरह विनय के आगे-पीछे डोलती रहती। उसे पूरा विश्वास था कि अभय की तरह विनय भी सोनिया के आकर्षण में बँध चुका होगा। अपने तेज और अभिजात होने का गर्व तो था ही लेकिन

यहाँ तो पासा ही उल्टा पड़ गया। सोनिया पर गुस्सा आया, एक देहाती मानुष तक को नहीं पटा पायी।

''अभी कौन सिन्दूर लेकर खड़े हैं विनय, मैं प्रस्ताव रख रही हूँ। दोनों एक-दूसरे को देखते-सुनते रहे हो, जोड़ी जमेगी। जब भी शादी करोगे, कर लेना। अम्मा-बाऊजी आये हैं, बात तय हो जाये।'' प्रकटतः झुमकी ने कहा। विनय बिना कोई उत्तर दिये बाहर निकल गया। थोड़ी देर में बाजार से राशन-पानी लाकर अम्मा को थमाया और कहा कि एक माह की ट्रेनिंग पर वह कोलकाता जा रहा है। रविवार को आकर मिल जाया करेगा। झुमकी नाराज होकर अपने फ्लैट में चली गयी थी। अभय ने सुना, अनसुना कर दिया। झुमकी ने गुस्से में सोनिया को बुरा-भला कहा। सोनिया चुपचाप सब सुन रही थी। झुमकी विनय के साथ बहन का घर बसा देना चाहती थी, सो न हो सका। ऊँह, अगर बुड्ढा-बुड्ढी चाहते तो बात बन सकती थी, पर नहीं। बड़े गहरे पेट होते हैं इनके, देखने में ये गँवार होते हैं पर हैं बड़े तेज।

रुकमी ने बेटे के लिए थोड़े लड्डू बना दिये ताकि उसके पास कुछ तो खाने-पीने का रहे।

''यह कोलकाता जा रहा है, जंगल पहाड़ पर नहीं कि यह सब बाँध रही हो।'' उचितलाल ने उसे समझाया। पर माँ का दिल। जब समय मिलता अभय आकर माँ-बाऊजी के पास बैठता, झुमकी कभी अकेली न छोड़ती। सब्जी-दूध वगैरह खुद उचितलाल जाकर ले आते। कितना बदल गया है शहर, कहाँ गये वे लोग! हवा की सुगन्ध तक बदल गयी है। जूट मिल की दुर्निवार गन्ध अब कहीं नहीं है, पर तेजाबी वातावरण बन गया है। सुपरिचित स्थान अपरिचित होते हुए भी अपना-सा था। उचितलाल का मन तो लग रहा था पर शरीर गिरने लगा। पन्द्रहवें दिन विनय ने आते ही ध्यान दिया कि बाऊजी का स्वास्थ्य गिर रहा है। खाँसी बहुत हो रही है। उसने अभय से कहा- ''भैया, बाऊजी को रेलवे के अस्पताल में डॉक्टर को दिखा दो। खाँसी उखड़ गया है।'' अभय ने गौर किया और अपनी भूल स्वीकारी। विनय चला गया। अभय पिता को रेलवे के अस्पताल ले गया जहाँ हर तरह की जाँच हुई। दवा वगैरह अस्पताल से दी गयीं। पश्य के विषय में रुकमी को समझा दिया गया। अभय सुबह-शाम पिता के पास आकर बैठता। पिता स्वास्थ्य लाभ करने लगे। जूट मिल का मुंशी गाँठ गिनने बार-बार गोदाम में जाता था। वहाँ उड़ते जूट के रेशे कब फेफड़े में बैठ गये, जान न पाया। अब शरीर कमजोर होने, आयु प्राप्त होने पर टी.बी. की शक्ल में उजागर हुआ। यह राहत की बात रही कि अब टी.बी. लाइलाज नहीं है।

लेकिन लाइलाज है मनुष्य का अहम, लाइलाज है सामाजिक विभाजन, लाइलाज है मनुष्यता का क्षरण। झुमकी दास गुप्ता ने उचितलाल और उनकी पत्नी रुकमी से दूरी बना ली। अभय को भी आने नहीं दे रही थी। विनय की ट्रेनिंग खत्म हुई, उसने पिता के स्वास्थ्य का हवाला देकर अपनी पोस्टिंग यहीं करा ली। स्वास्थ्य सुधर रहा था उचितलाल का। वे जाना चाहते थे अपने गाँव, धनुष के आकार की सीमा छूना चाहते थे, हरे धान के खेतों की हवा से फेफड़ा भर लेना चाहते थे और रुकमी अपने उस चिरपरिचित गाँव की ओर लौटना चाहती थी जहाँ दस साल की उम्र से पैरों में पैंजनी पहनकर मेला देखने आया करती थी। वह जिन्दगी के तमाम मेलों से ऊब गयी है। डॉक्टर ने स्वस्थ होने की क्लीन चिट दे दी है। कुछ दवाएँ कुछ हिदायतें दी है, इन्हीं की पोटली बाँध चल पड़ना चाहती है उचितलाल के पीछे-पीछे। जैसे गौने पर आई थी वैसे ही उसी देहरी पर अविचल, अविच्छिन्न! ❑

मो. 9334391006

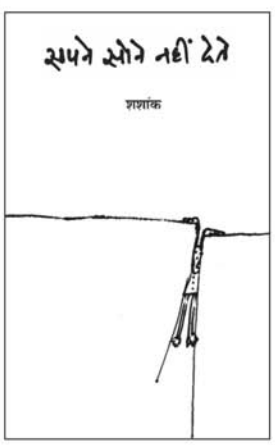

आईसेक्ट पब्लिकेशन

सपने सोने नहीं देते
शशांक
मूल्य 375 रु.

शशांक की चिंताओं में कहानी, कविता, नाटक, वैचारिक गद्य, राजनीति, पत्रकारिता, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम और सबसे बढ़कर- मानवीय संबंध- सभी शामिल हैं, लेकिन पुस्तक का अधिकांश हिस्सा कहानी और गद्य, उसमें बनने की प्रक्रिया, मूल्य और उनकी सार्वभौमिकता तथा स्वयं लेखक के बनने की प्रक्रिया पर केन्द्रित है। उसमें दोस्तों, सहयोगियों, सहकर्मियों और सह-रचनाकारों को साथ लिया गया है और जैसे उनसे टकराकर विचार की किरणें वापस लौटती हैं, नये अर्थों को उद्भासित करते हुए।

❑ कहानी

तलाश

जया जादवानी

कभी सोचा नहीं था कि दूसरी बार भी बनारस आऊँगी, पर सच है। आयी हूँ कृष्णमूर्ति सेंटर की गेस्ट बनकर। यह पूरी जगह, यह पूरा माहौल पहली बार में ही भा गया था, पर उस वक्त तुम्हारे साथ थी। जब हम दूसरे के साथ होते हैं, खुद को देखने का अवसर चूक जाते हैं। तब हम अकेले के नहीं रह पाते कि खुद को सुन-गुन सकें, तब हमें अपना ख्याल तक नहीं आता। आज हूँ इतनी अकेली कि अपने हृदय की धप-धप सुन सकती हूँ। पीछे मुड़कर देख सकती हूँ। कुदरत के साथ जुड़ सकती हूँ। कुदरत अपने भीतर कितने ही रहस्य छिपाये हुए है, यह देखने को एक शान्त हृदय और मन चाहिए। मेरे पास है, मिलान कुन्देरा की 'द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग'। मैं खुद को देखना, खुद को सोचना, खुद को जीना चाहती हूँ, पता नहीं कर पाऊँगी या नहीं?

रात सोने जाने से पहले और उठने के बाद मैं अपने कमरे से बाहर आ नीचे अपने सामने शान्त और हौले-हौले बहती गंगा को ऊपर से देखती हूँ और चुप उसकी आवाज सुनती हूँ। अँधेरे में बहते हुए पानी की आवाज सुनना, मानो अदृश्य की कोई प्रार्थना सुनना हो।

धनुषाकार गंगा, कहीं चौड़ी, कहीं पतली होती, अपने अपार विस्तार में नहीं बल्कि सीमित विस्तार में सिमटी बह रही है। आखिर मनुष्य ने नदियों को भी निगल लिया। जहाँ-जहाँ इसके पैर पड़े, कुदरत नष्ट हुई– पानी बहुत हल्का काँपता दिखता है। न कहीं आना है, न कहीं जाना है, जो है, यहीं है। शान्त बहती नदी तुम्हें भी शान्त कर देती है। कभी-कभी तो इतनी कि उस पर पड़ने वाली छायाओं की तरह हम अपने भीतर पड़ती परछाइयों की वास्तविक शक्ल भी देख लेते हैं पर मात्र परछाइयाँ पहचान लेना ही सबकुछ नहीं है।

परछाइयों के परे जो कुछ है, उसे हम किस तरह देख पाएँगे?

सुबह-सुबह कुछ मछुआरे अपने जाल बिछाते-लपेटते, कन्धों पर लादे दूर जाते दिखाई देते हैं। कुछ औरतें पेटीकोट पहनकर नहाते। कुछ सफेद पक्षी और कुत्ते, जो गर्मी से बचने के लिए आते होंगे। कुछ लोग जानवरों को भी नहलाने ले आते हैं। मछली पकड़ने वाले काफी दूर चले गये हैं। लगभग दस बजे तक वे मछली पकड़कर लौट आते हैं। मैं ऊपर से इन्हें जाल से मछलियाँ निकालते देखती हूँ। यह सम्भवत: इनका रोज का काम है। दूर एक मजबूत पुराना पुल दिख रहा है। नीचे ट्रेन धड़धड़ाती हुई गुजरती है, उसे देखकर मुझे दुष्यन्त कुमार की लाइनें याद आती हैं–

'तू किसी रेल-सी गुजरती है
मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ।'

न जाने कितने पंछियों की आवाजें दिन-भर सुनती हूँ। वे, जिनके नाम मैं नहीं जानती, जो मुझे नहीं जानते पर हम सबकी पुकारें एक-जैसी हैं। गिलहरियाँ पूरे कैम्पस में दौड़ रही हैं, अपने नुकीले मुँह से कुछ न कुछ चुगती, जो है, में से। चूँकि हमें बहुत कुछ चाहिए, हम मिले हुए से खुश और तृप्त नहीं हो पाते।

कल बरामदे में बैठी थी कि मोर सामने आ गया। उसके लम्बे और भारी पंखों के उजले रंग। मोर को काफी सँभल के चलना होता है। थोड़ी देर चुगने के बाद वह मौज में आ गया और पंखों को पूरा गोल फैला घूमने लगा। हम सब जड़ होकर उसे देखते रहे, फिर उसने अपने पंख समेटे और चला गया। वह खाली जगह उसके अस्तित्व से भरी हुई दिखाई देने लगी।

चिड़ियों और मोर की आवाज कमरे में भी सुनाई देती है और कभी-कभी अपनी भी, जब हम सोच से परे हो पाते हैं। बहुत गहराई से देखो तो अस्तित्व में से फूटती हर शै में एक साम्यता है। हमारी भूख-प्यास, पुकार-तलाश सब। जब तुम फितरत के करीब होकर जीते हो, एक अजब-सा सुकून मिलता है। मैं इस शान्ति में आहिस्ता-आहिस्ता डूब रही हूँ।

बहुत कुछ छोड़ कर आओ, तब भी कुछ न कुछ साथ आ ही जाता है। हर बार कदम उसी जमीन पर पड़ते नहीं, जो चुनी थी चलने को अपने लिए।

पिछली बार घाटों पर तुम्हारे साथ घूमना यहाँ आने के बाद खूब याद आ रहा है...

कृष्णमूर्ति सेंटर से निकल कर न जाने कितनी झुग्गी-झोपड़ियाँ और पुल पार करके हम घाटों वाली लाइन में आ गये थे। यहाँ से घाटों की शृंखला शुरू होती है रविदास घाट से, जहाँ लोगों के छोटे-छोटे घर, नावें, कपड़े, उनका सामान बिखरा पड़ा है। ढेरों लोग घाटों की सीढ़ियों पर शतरंज खेलते मिल जाएँगे। ऊँची-नीची सीढ़ियाँ, बड़े-छोटे, नये-पुराने न जाने कितने घाट... उनके बीच छोटे-मोटे गरीब लोगों की बस्तियाँ, बच्चे, कचरा, बँधी हुई नयी-पुरानी जर्जर नावें, दूसरी तरफ शान्त-स्निग्ध आहिस्ता-आहिस्ता बहती गंगा। हम घाटों को फलाँगते आगे जा रहे हैं। टट्टी-पेशाब-गोबर सब वहीं। वहीं कुछ लोग दंड पेल रहे हैं, कुछ नहा रहे हैं, कुछ कपड़े धो रहे हैं, कुछ अपनी नावों को। कुछ ग्राहकों के इन्तजार में गपिया रहे हैं। पान-सुपारी-तम्बाकू की वहीं फँसी-धँसी छोटी-मोटी ढेरों दुकानें।

शाम का वक्त। हम एक अपेक्षाकृत शान्त जगह पर बैठ गये और गंगा पर शाम उतरते देखते रहे। शाम के साये किनारों पर से उतर रहे थे। उनका रंग तुम्हारे बालों की तरह था, गहरा-भूरा। कनपटियों पर सफेदी। तैरती हुई शाम सलेटी चूनर की तरह आहिस्ता-आहिस्ता पूरी नदी पर फैल रही थी।

मुझे शाम अच्छी लगती है। शाम को आसमानों का रंग कुछ और ही होता है, उस पर फहरा रहे बादलों का रंग, घर लौट रहे इंसानों के चेहरों और अपने घोंसलों में लौट रहीं चिड़ियों का रंग। पानी में डूबे पत्थर और काई भी किसी और ही तरह से दिखने लगते हैं। आँखों में तैर रहीं मछलियों की गति तीव्र होने लगती है। शाम को घरों में कैद लोग बाहर की ओर भागते हैं और बाहर घूम रहे लोग अपने घरों की ओर। कारें और स्कूटर भी बदहवास हो जाते हैं। शाम तुम्हें वैसा नहीं रहने देती, जैसा तुम सारा दिन थे। दिन का हाथ छुड़ाकर आयी शाम को कहीं पहुँचने की जल्दी होती है, डूब जाने के भय और सन्देह से भरी हुई। शाम, किसी से मिलना, किसी से बिछड़ना तय कर देती है। शाम दिन के सख्त पंजों से तुम्हें आजाद कर देती है। तुम गुब्बारे-से हल्के हो अपने ही आसमानों की सैर कर सकते हो। हम चाहते हैं, शामें खूब लम्बी हों पर धीरे-धीरे नूर खोता जाता है, फिर रोशनी। वह बहुत जल्द रात के आगोश में गिर पड़ती है।

गंगा में दूर से पड़ती रोशनियाँ पानी में छलाँगें लेती एक-दूसरे को पकड़ रही हैं। कुछ घाट अपेक्षाकृत सूने हैं। बस वही आसपास के लोग हैं छोटे-छोटे जमघटों में। आगे के एक घाट पर दो लोग गेरूए कपड़ों में गंगा आरती कर रहे हैं। उनके पीछे आठ-दस लोग खड़े हैं। इस आरती का ग्लैमर अस्सी घाट पर बेहद बड़े रूप में देखा जा सकता है। वहाँ तो बाकायदा सात लोग धोतीनुमा गेरूए कपड़े पहन खूब देर आरती करते हैं, जिसे देखने हर रोज दूर-दराज के ढेरों लोग आते हैं। पूर्णिमा में तो पैर रखने की जगह नहीं

मिलती। पता नहीं कहाँ से लोगों के जत्थे आते हैं, जाते हैं।

लगभग हर घाट पर बेहद शोर। भजन पूरी भयानकता से बज रहे हैं। हमने अपने धर्म को जाने कैसे इतने शोर से जोड़ दिया है, जबकि हमारे ऋषि-मुनि तो बहुत शान्ति-प्रिय रहे हैं। जी करता है, नदी में पाँव डालकर थोड़ी देर बैठें, इस साँझ को नदी में उतरते, उसे नदी को अपने गले लगाते, पीठ थपथपाते देखें। लहरों पर झिलमिल रोशनी, आधे अँधेरे-आधे उजाले में दूर खड़ीं नावें और उन पर पसरी खामोशियों की सदा महसूस करें पर कोई तुम्हें अकेला नहीं छोड़ता। पाँच मिनट में तीन युवक बोट पर चलने की मिन्नतें करते आ गये। आखिर उठकर चल देना पड़ा।

अस्सी घाट पर जरूरत से ज्यादा शोर और भीड़। लाउडस्पीकर फुल वॉल्यूम में बज रहे। अस्सी घाट की आरती नाव में देखने के नाविक ने पाँच हजार माँगे। घाट पर खड़े होने की जगह नहीं थी, फिर भी किसी न किसी तरह अपने पाँव जमाये हुए थे। सात लड़के आरती कर रहे। सज-धजकर बड़े ही नाटकीय ढंग से। आसपास खड़ा लड़कियों का समूह बीच-बीच में कुछ संस्कृत के श्लोक गा देता। उनके पीछे दर्शक प्रार्थना में नत खड़े। भले ही कर्म-कांडों का बाजारीकरण हो गया है पर जो प्रार्थनाएँ यहाँ नत हर इंसान के हृदय से फूटती हैं, ऊपर उठती हुई सभी पर बरसती हैं। अदृश्य जो नेमतें तुमको देता है, नदी, वृक्ष, बारिश, आसमान, समूची कायनात, इस सबके साथ रहने-जीने का हक, उसे शुक्रगुजारी से कुबूल करते ही भीतर की कई शिकायतें भीतर की गंगा में बहती तुमसे दूर चली जाती हैं।

बनारस की बाबत बहुतों ने बहुत कुछ लिखा है। गौतम बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन यहाँ से लगभग बीस किलोमीटर दूर स्थित सारनाथ में दिया। बहुत कुछ जुड़ा है इस प्राचीन और जीवन्त शहर से। कहा जाता है, जो काशी में नहीं है, वह और कहीं भी नहीं है। जिसने यह तीर्थयात्रा कर ली, उसे कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। पानी में डुबकी लगाती हुई भीड़ भी थम-सी गयी है और सारे मोहाविष्ट-से आरती करते युवकों को देख रहे हैं। गीले कपड़ों में हाथ जोड़े, जिनमें अधिकतर बुजुर्ग स्त्रियाँ और पुरुष हैं। कुछ लोगों के हाथों में गंगा जल से भरे प्लास्टिक के डिब्बे हैं, घर शुद्धिकरण के लिए। क्या यहाँ आने वाले अपनी शुद्धि कर पाते होंगे या कि जितने मैले हम आते हैं, उतने ही लौट जाते हैं?

आरती खत्म होते ही भारी भीड़ का रेला एक साथ बाहर निकला। हम बचते-बचाते एक और घाट की ओर बढ़े। आसपास की हवा में एक अजीब-सी गन्ध... फूलों, अगरबत्तियों, जलते हुए माँस की। हमने अपनी साँसों में भारीपन महसूस किया। एक हैवी एनर्जी। यह मणिकर्णिका घाट है। कहते हैं, यहाँ हर पाँच मिनट में एक लाश आती है और दिन-भर में 70 से 80 लाशें। सिर्फ बनारस से ही नहीं, आसपास के गाँवों से भी। घाट के पीछे की तरफ हम चिता की लकड़ियों की ऊँची दीवारें पार करके बायीं ओर घुस गये, अन्तिम संस्कार से सम्बन्धित चीजों की ढेरों दुकानें, गाय-भैसें 'फ्री वे' की तरह घूम रहीं। उधर जाने वाले हर रास्ते पर भीड़। हम मैली चीकट सीढ़ियों पर चढ़कर थोड़ा ऊपर पहुँचे और हमारे ठीक सामने जलती हुईं चिताएँ। कुछ चिताएँ जल रही थीं, कुछ लोग साथ लाये शव को गंगा में एक डुबकी लगवाकर उन्हें चिता पर रख रहे थे। कन्धों पर लगातार आती हुईं लाशें, घंटों अपने जलाये जाने की प्रतीक्षा करतीं। वहीं राख और कचरे के ढेर, चिता में साथ आये कपड़े और बाँस ... गाय-गोबर, सूँघते हुए कुत्ते, जो घूम-फिर कर वहीं आ बैठते हैं। नुची-पिटी, परित्यक्त गेन्दे की मालाएँ, आधी-अधूरी पानी में तैरतीं अधजली लकड़ियाँ और टनों राख। सूखे चेहरे लिये घूमते परिजन, इसके पहले कि भीतर सब सूख जाए, वे लाश को जला देना चाहते।

यह सब मुसलसल जारी है... दिन-रात, रात-दिन। न जाने कितनों का रोजगार चलता है इससे! गंगा भी यहाँ थककर ठहर-सी गई है, सदियों से शवों का बोझ उठाये-उठाये। इस कचरे ने पानी को विषाक्त बना दिया है। मुक्ति की अवधारणा हमसे न जाने कितने पाप करवाती है! कबीर का काशी छोड़कर मगहर जाना भी इस धारणा को बदल न सका।

घाट तक पहुँचने की सँकरी गलियों में भी लोग रहते हैं। दिन में कई-कई बार वे लाशों को गुजरते देखते होंगे। मौत का सीधा साक्षात्कार!

यहाँ के हर घाट पर मैंने अलग-अलग एनर्जी महसूस की। अस्सी घाट पर प्रार्थना के स्वरों के बीच जो एक हल्कापन तारी हो गया था मन और देह पर, वह यहाँ आकर एक भारीपन में तब्दील हो गया। मुझे मृत्यु पर पढ़ी ढेरों किताबों में से कुछ बड़ी शिद्दत से याद आने लगीं, जिनमें एक 'THE TIBETAN BOOK OF THE DEAD' भी है। मृत्यु उपरान्त आत्मा को निर्देश दिये जाते हैं कि कहीं रुके बिना विभिन्न लोकों से आगे बढ़ती, पुनः जन्म लेने से खुद को बचाती सीधा परम सत्य तक पहुँचे। उनचास दिन की यह यात्रा वह लामा के प्रेम-पगे निर्देशों के साथ करती है। इस किताब ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मैं अनेक बार इसे पढ़ चुकी हूँ और सोचती हूँ, क्या कोई ऐसा तरीका भी हो सकता है कि खुद

अपनी आत्मा को अन्य लोकों से बचाते परम सत्य तक पहुँचाया जा सके? परम आध्यात्मिक होने का दावा करते हम भारतीय इन सब बातों को कितना कम जानते हैं!

बनारस ने मृत्यु को सहज स्वीकार कर लिया है। वहाँ काम कर रहे अनेक लड़कों की बनियान और हाफ पेंट में पसीने से तरबतर साँवली देहों को देखती हूँ, जो बड़ी फुर्ती से चिताओं के बीच घूमते हुए लकड़ियों को उलटते-पलटते हैं। सोते समय या प्रेम करते समय ये कौन-सा ख्वाब देखते होंगे? क्या जीवन की क्षणभंगुरता अस्थिर नहीं कर देती होगी? क्या इन्हें अपनी देह से मौत की महक नहीं आती होगी? कैसे इनके हृदय में इच्छा का कोई फूल खिलता होगा?

इस प्राचीन शहर में कुछ तो है ऐसा, जो तुम्हें सम्मोहित किये रहता है। तुम भाग जाना चाहते हो पर कोई तुम्हें कील देता है।

''मणिकर्णिका घाट और हरिश्चन्द्र घाट– ये दोनों मोक्ष के दरवाजे माने जाते हैं। डोमों के भी अलग-अलग परिवार होते हैं और घाट का अधिकार बारी-बारी सबको मिलता है। पीढ़ियों से वे यह काम कर रहे हैं। चिताओं की बची हुई लकड़ियों से उनके घरों का खाना बनता है, जिसे वे शुद्ध मानते हैं। हर वक्त चिताओं के बीच रहने से उनके जिस्म पर जलने के निशान बन जाते हैं। इस काम को करने के लिए जिस मेंटल स्ट्रेन्थ की जरूरत होती है, वह उन्हें मिलती है अपनी देवी माँ और अल्कोहल से, जो लगातार इस जोन में रहने में उनकी मदद करती है।'' तुमने आहिस्ता-आहिस्ता कहा था।

अपने-आपको जलता हुआ देखना, यह अद्‌भुत अनुभव तुम्हें सिर्फ मृत्यु दे सकती है, अगर तुम उतनी देर ठहर सको। थोड़ी देर के लिए मैं सब भूल गयी। एक नितान्त नया अनुभव। यहाँ सोचने और बोलने को कुछ नहीं है, बस देखो।

''यह मृत्यु न हो तो पृथ्वी जीने लायक न रहे।'' मैं धीमे स्वर में कहती हूँ।

''मृत्यु डराती है। यह हर चीज का अन्त है, कुछ भी नहीं बचता।'' तुमने उधर ही देखते बुदबुदाते हुए कहा था।

''मृत्यु नया प्रारम्भ है। अगर तुम जीते जी मर सको, जैसे कि तुम नहीं हो?''

''इज इट पॉसिबल?'' तुमने मेरी तरफ देखा। मैं कुछ कह नहीं पायी। इसी प्रश्न से ही तो हर यात्रा प्रारम्भ होती है।

हम वहीं खड़े बहुत देर उस कच्ची जगह को देखते रहे, जहाँ लाशें जल रही हैं। यहाँ कई चूल्हे हैं लाशों को जलाने के लिए। अब कुछ चूल्हे ऊँचाई पर भी बना दिये गये हैं। उनके ऊपर छत भी है,

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित

सपनों की दुनिया में ब्लैक होल

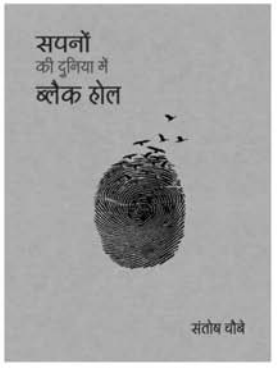

संतोष चौबे

मूल्य ₹ 200/-

तुम जिस दिन गये, उस रात मैंने एक सपना देखा। मैंने देखा कि एक विशालकाय मशीन है, जो धमन-भट्ठी की तरह है जिसमें एक ओर से बहुत से मनुष्य डाले जा रहे हैं, छोटे शहरों के, गाँवों के, हमारे केन्द्रों की तरह के युवा और दूसरी ओर से पूँजी निकल रही है– सतत प्रवाह के रूप में, जो पता नहीं किन अदृश्य हाथों में जाकर गुम हो जाती है। मेरे देखते ही देखते वह मशीन एक ऑटोमेटन में बदल गयी जिसमें पूरे देश के देश डाले जा रहे थे, उनकी पूँजी, उनका कच्चा माल, उनके आदमी और वे सब उस ऑटोमेटन में खींचे जाकर गुम होते जा रहे थे। इधर से हँसते-खेलते मनुष्य, हँसते-खेलते देश उस मशीन में डाले जाते और उधर से बंजर भूमि, सूखे, रसहीन मनुष्य और पूँजी का ढेर निकलता। एक ब्लैकहोल-जैसा कुछ था जो उन्हें सोख रहा था। अन्ततः वह विशालकाय मशीन एक ब्लैकहोल में ही परिवर्तित हो गयी और उसके दूसरी ओर क्या हो रहा है, ये दिखना बन्द हो गया...

दरवाजे के बाहर सामने की तरफ एक छोटी-सी तख्त जितनी जगह, तमाम तरह के चित्रों, मालाओं और अगड़म- बगड़म रंगीन चमकीले कपड़ों और चीजों से सजी... पीछे की दीवार पर खूब सारी तस्वीरें टँगी हैं, जिनमें से कुछ पर पुरानी मालाएँ टँगी हैं। बगल में एक बेहद धूल खायी मोटरसायकल खड़ी है, एक उतने ही मैले पुराने कपड़े से ढँकी... उस तंग जगह पर तख्त के नीचे मैली दरियों पर कुछ वैसे ही लोग बैठे हैं, जिनके पैरों में छाले हैं। जो चल-चल कर थक गये, चलने से या जीवन से, पता नहीं। पता नहीं यह सिर्फ वक्त काटी है या संसार काटी?

बारिश से बचने के लिए। वहाँ भी उतना ही कचरा है। हम हिन्दोस्तानी मुक्ति में तो भरोसा करते हैं पर सफाई में नहीं। हम अपने पवित्र स्थल सबसे ज्यादा अपवित्र कर देते हैं।

''कोई हिसाब है कितने जंगल कट गये? लाखों टन लकड़ियाँ हम जला देते हैं, मात्र एक स्वर्ग जाने के ख्याल पर। इस दुनिया को नर्क बना देने के बाद कौन-सा स्वर्ग? इलेक्ट्रिक बरियल की सुविधा के बारे में कोई सोचता नहीं है? कचरे की समुचित व्यवस्था की जा सकती है पर ये सालों से यूँ ही चल रहा है।'' मैंने नीचे उतरते हुए कहा।

''अगर ये न हो तो बनारस का आधा आकर्षण कम हो जाए। रोजगार के साथ मुक्ति की टिकट भी तो मिलती है। हरिश्चन्द्र घाट पर तो इलेक्ट्रिकल बरियल की सुविधा भी है पर लोग पसन्द नहीं करते। हालाँकि मुक्ति की जरूरत तो हमें अभी और यहीं है, अपनी घिसी-पिटी धारणाओं से, भीतर गहरे खुदी हुई लकीरों से।'' तुमने मुस्कराते हुए जवाब दिया था।

लाखों लोग न जाने क्या तलाशते इन घाटों पर आते और जाते रहते हैं पर बनारसी अपने में मस्त है। उसके लिए जीवन भी यहीं है, मृत्यु भी।

यूँ तो इन घाटों पर लाखों लोगों के कदमों के निशान हैं, जो भीतर कुछ बदल जाने के ख्याल से आये-गये पर कोई नहीं बदलता– न घाट, न मनुष्य, न उसकी पीड़ा और यातना। वे बार-बार जगहें बदलते हैं और वे जगहें थोड़े ही वक्त बाद वैसी ही प्रतीत होती हैं और वे खुद को एक बार फिर ऊबा हुआ, छला हुआ महसूस करते हैं– दूसरे के द्वारा नहीं, खुद के द्वारा।

कुछ विदेशी भी थे जो सम्मोहित-से अपनी मोबाइल से तस्वीरें ले रहे थे। क्या यह उनके लिए मात्र एक दुर्लभ दृश्य-भर है या कुछ और भी?

घाट के सामने बनी पुरानी इमारतें खाली पड़ी हैं। अब वहाँ अफीमचियों का अड्डा है। बाहर से वे जर्जर, भुतहा दिखाई देती हैं पर इसके अन्दर ढेरों लोग पड़े रहते हैं, नशे में, जो संसार से भागे फिरते हैं।

अब हम एक नये रास्ते पर थे, बनारस की प्रसिद्ध तंग गलियों में। ओफ्फ ओ... इतनी भीड़... इन सँकरी गलियों में। यह 'ठठरी बाजार' है। दोनों तरफ छोटी-छोटी दुकानें और टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ, यहाँ से मोटरसायकल सवार, गाएँ, भैसें, पैदल चलने वाले एक साथ गुजरते हैं। जहाँ एक साथ चार लोग भी न चल सकें, वहाँ मोटरसायकल धड़ल्ले से निकल रही थीं।

'ब्लू लस्सी सेंटर' में लस्सी पी। यह बड़ी मशहूर दुकान है। डिस्कवरी चैनल में आ चुकी है। वह आहिस्ता-आहिस्ता पीतल के बड़े बर्तन में लस्सी बनाता है और 'पुरवा' में देता है। ऊपर से रबड़ी, मलाई या पिघला हुआ खोवा रखकर। बेहद साधारण-सी दुकान। कोई बहुत सामान भी नहीं दिख रहा। लकड़ी की तीन बेंचें लगी हुई हैं। दीवार पर बहुत सारे लोगों के पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ, यहाँ लस्सी पीने आने वालों के। इस साधारण-सी दुकान पर यह हजारों ग्लास लस्सी बेच चुका होगा पर किसी भी परिवर्तन के प्रति बेहद उदासीन। बनारस में यह उदासीनता हर जगह दिखाई देती है। तो क्या साफ-सुथरे ढंग से रहना भी ये किसी बड़े परिवर्तन की तरह देखते हैं? ट्रैफिक का जो हाल है, मुझे बार-बार

आँखें बन्द करनी पड़ती कि वह तो गया, फिर थोड़ी देर में आँखें खोलकर उसे बचा हुआ जाते देखती। भीड़ देखकर हैरान होती। लोग आ रहे हैं, आ रहे हैं पर आ नहीं पाते पूरे। जा रहे हैं, जा रहे हैं पर गये नहीं हैं पूरे। अपनी यात्रा में स्वयं बाधा हैं। अपनी दीवार, जिसे आराम से फाँदा जा सकता है, वहाँ से वे बस उचक कर देख लेते हैं दूसरी तरफ, जहाँ वे होना चाहते हैं।

कई विदेशी भी यहाँ की लस्सी और रबड़ी-आइसक्रीम एन्जॉय करते देखे जा सकते हैं। एक जगह रुककर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बड़ा-सा भवन भी देखा। नीचे लगभग खाली पड़ा था। ऊपर शायद उनके घरवाले हों। इतनी जानलेवा भीड़ कि आधा वक्त खुद को बचाने में लग जाए। आप बेफिक्री से इधर-उधर देख भी नहीं सकते।

क्या-क्या लिखूँ? जिया हुआ बिल्कुल उसी तरह नहीं लिखा जा सकता। एक सुकून-भरा एहसास मेरे साथ चल रहा था। एक दोस्त का साथ। जब कितनी ही दूर जाया जा सकता है, बगैर वापसी की फिक्र किये। इस शाम का वह अनोखा एहसास हमेशा मेरे साथ रहा। वो कूदते हुए घाट की ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ पार करना, कभी टक लगाकर दूर तक गंगा का विस्तार देखना और कभी उसमें झिलमिलाती रोशनियों को पकड़ने की कोशिश करना। पानी को लगातार देखना कितनी अद्‌भुत शान्ति देता है। हरमन हेस्से का 'सिद्धार्थ' याद आ जाता है। अन्त में नदी ही उसे पनाह देती है। उसे देखना, उसे जानना, वही बन जाना। यह सारा जगत मात्र और मात्र आवागमन ही तो है! बस इतना ही जान लो।

कितनी छोटी-छोटी चीजें व्यक्तियों को साथ जोड़ती हैं। एक साथ बैठना, एक साथ चलना, चाय पीना, रबड़ी खाना और अपनी गलतियों पर हँसना। उन दिनों के ख्याली पुलाव बनाना, जो शायद कभी न आएँ और अगर आ भी जाएँ तो हो सकता है, तुम उन्हें पहचान ही न पाओ।

हम जहाँ थे, अनार के पेड़ की कई शाखाएँ एक साथ निकली थीं। एक शाखा में से फूटतीं अनेक शाखाएँ। एक चौकोर बरामदा, पानी कहीं से बहकर आ रहा था। बाजार का शोर यहाँ बेहद कम हो गया था। अनार के पेड़ के चारों ओर चौकोर चबूतरे पर हम बैठे थे।

''मैं यहाँ आया करता हूँ, जब बनारस में होता हूँ। यह जगह मुझे बेहद पसन्द है।'' सामने ग्रिल के उस ओर दूसरा कमरा है, जिसमें चार मजारें हैं, उन पर हरा कपड़ा डला हुआ है। बाहर की बनिस्बत यहाँ गर्मी कम है।

''क्यूँ आते हो? यहाँ ऐसा तो कुछ खास नहीं है।''

''अच्छा लगता है। मैं कुछ माँगने नहीं आता, सिर्फ चुपचाप बैठ जाता हूँ, आँखें बन्द करके। यह जगह मैंने उन दिनों खोजी थी, जब अपनी एनर्जी के बोझ से परेशान कभी दस-दस किलोमीटर दूर चला जाता था जंगलों में और कभी इन लाइन से बने घाटों की सीढ़ियाँ चढ़ता-उतरता रहता था, जहाँ लोग अपने पाप धोने आते हैं।'' वह मुस्करा दिया था।

दरवाजे के बाहर सामने की तरफ एक छोटी-सी तख्त जितनी जगह, तमाम तरह के चित्रों, मालाओं और अगड़म-बगड़म रंगीन चमकीले कपड़ों और चीजों से सजी... पीछे की दीवार पर खूब सारी तस्वीरें टँगी हैं, जिनमें से कुछ पर पुरानी मालाएँ टँगी हैं। बगल में एक बेहद धूल खायी मोटरसायकल खड़ी है, एक उतने ही मैले पुराने कपड़े से ढँकी... उस तंग जगह पर तख्त के नीचे मैली दरियों पर कुछ वैसे ही लोग बैठे हैं, जिनके पैरों में छाले हैं। जो चल-चल कर थक गये, चलने से या जीवन से, पता नहीं। पता नहीं यह सिर्फ वक्त काटा है या संसार काटा?

''स्वामी जी हैं?'' उसने घुसते ही पूछा था।

''अजमेर शरीफ गये हैं। बीस तारीख तक आएँगे।'' उनके शिष्य ने जवाब दिया।

तुम जिसका पता पूछ रहे हो, वह किसी और का पता ढूँढ़ने गया है। हम सब किसी न किसी की तलाश में ही तो हैं। उसकी, जिसमें गिरकर हम खुद को बिसरा सकें। इस तलाश में कभी हम चलते हुए अपने घर से दूर चले जाना चाहते हैं और कभी भटकते हुए अपने घर वापस पहुँच जाना चाहते हैं। हमारी तलाश भी तो उतनी ही है, जितने हम हैं।

हम अनार के पेड़ के साये में बैठ गये।

''यह मेरी एक नितान्त नयी जगह है। इस जगह के बारे में मैंने कभी किसी को नहीं बताया।''

''कुछ जगहें हमारे भीतर होती हैं, जहाँ तुम आँखें मूँदकर बैठना चाहो, ये जगह वही है, तुम्हीं में स्थित।'' मैंने कहा तो वह मुस्करा दिया।

''पर अब मैं यहाँ से चले जाना चाहता हूँ। सबसे परे। मैंने अपनी पत्नी को कह दिया है, तेईस साल बहुत होते हैं एक साथ, एक घर में रहने के लिए। अब मैं आजाद होना चाहता हूँ।''

''वह मान गयी?'' मैंने गलत सवाल पूछ लिया था। मानना तो पहले खुद पड़ता है।

''मानना पड़ेगा। शादी भी कॉन्ट्रैक्ट की तरह होनी चाहिए, साल निश्चित होने चाहिए, इसके बाद दोनों के रास्ते अलग। ज्यादा वक्त सिर्फ वे ही साथ रहें, जो बच्चे चाहते हों।'' कई बार कहे हुए

लफ्जों का अर्थ हमें खुद ही समझ में नहीं आता। एक चुनाव से दूसरे चुनाव की तरफ जाते वक्त जो हमें अपनी आजादी प्रतीत होती है, वही अक्सर हमारी रूह की बेड़ी भी बन जाती है।

मैंने बहुत जोर से उसे रोकना चाहा पर यह सोच कर रुक गयी कि कहीं वह इसे मेरा हस्तक्षेप न समझ ले। ले-दे के एक परिवार ही तो बचा है हमारे पास, उसे भी खो देंगे तो कहाँ जाएँगे? बने हुए रिश्तों से ऊबना, भागना, अकेलेपन से घबराना और फिर नये रिश्ते तलाश करना, जिन्दगी का कितना बड़ा हिस्सा बस इसी में गर्क हो जाता है! हमेशा किसी और की तलाश में हम अपना पता भूल जाते हैं।

''कहाँ जाना चाहते हो?''

''यहाँ से बहुत दूर। शायद यूरोप। अब ये जगह रहने लायक नहीं रही।''

उसने आँखें बन्द कर ली थीं। मैं उसका चेहरा देखे जा रही हूँ। क्या ढूँढ़ते हैं हम, हमसे हमारा बिछड़ा हुआ आधा-अधूरा वह टुकड़ा, जिसे हम भीड़ में खो आये हैं?

जब भीतर बहुत भगदड़ होती है, हम शान्ति की तलाश में भटकते हैं... शान्ति पा लेते हैं तो भगदड़ की तलाश में। हम सबसे ज्यादा अपने आपसे गाफिल हैं। एक तलाश हम सबकी नियति है, इस शख्स की भी, जो मेरे निकट बैठा है। इसके गुरु और तख्त के पास बैठे इन लोगों की भी और इस नदी की भी जो लोगों का कचरा ढोते-ढोते थक चुकी है।

हम बाहर आये और साथ बने घाट की ऊँची-नीची सीढ़ियों पर जरा देर को बैठ गये। भीतर जमी खामोशी यहाँ टूटने लगी है। जब तुम चाहते हो, तुम्हें कोई न खटखटाये, हर दो मिनट में कोई पूछने आ जाता है।

''नाव पर चलना है? उस पार ले जाएँगे। घुमा देंगे सस्ते में।'' इस 'सस्ते' लफ्ज को लोगों ने और सस्ता बना दिया है।

''यहाँ का यूथ काम नहीं करता क्या?'' मैं अपने आस-पास बुजुर्गों से ज्यादा नौजवानों को देख रही हूँ।

''आजकल ऑफ है। जब सीजन होता है, ये टूरिस्टों से रिलेटेड काम ही करते हैं। छह महीने काम करते हैं, छह महीने बैठकर खाते हैं।''

उसने कन्धे पर लटकते बैग में से पानी की बोटल निकाल कर मुझे दी। मुझे सचमुच प्यास लगी थी। बैग में बिस्किट और उसके हाथ की बनी इटैलियन कॉफी भी है। खूब गाढ़ी और महकती। हम एक ही गिलास से कॉफी पीते हैं। मुझे गर्म अच्छी लगती है, उसे ठंडी। पहले मैं पीती हूँ, बाद में वह।

उसके पास पुराने स्पर्श हैं, पुरानी यादें, पुराने दु:ख और उसे इस सबसे छुटकारा चाहिए।

अपने में डूबी पता नहीं कब चलती हुई मैं उसके घर के सामने खड़ी हो जाती हूँ और कॉल-बेल बजाती हूँ। अन्दर बज रही घंटी बाहर तक सुनाई देती है। पता नहीं, कोई है भी या नहीं। थोड़ी देर बाद जाने को मुड़ती ही हूँ कि भीतर से दरवाजा खुलने की आवाज आती है, ठहर जाती हूँ।

दरवाजा खुलता है और एक स्त्री का गोल-साँवला चेहरा बाहर झाँकता है।

''क्या मैं मि. ब्रजेश से मिल सकती हूँ?''

''वो अब यहाँ नहीं रहते।'' नींद से उठ कर आयी स्त्री ने मुझे ध्यान से देखा।

''आप?''

''मैं उनकी दोस्त हूँ।'' जल्दी में मेरे मुँह से निकल गया।

उसके चेहरे पर एक व्यंग-भरी मुस्कान आ गयी।

''फिर तो आपको जरूर पता होगा, वो कहाँ है?''

मेरे मुँह से आवाज नहीं निकली पर मेरे चेहरे ने कुछ कहा होगा।

''आय एम सॉरी। दरअसल वह अपने दोस्तों के ही सम्पर्क में ज्यादा रहता था, अपनी फैमिली के नहीं। कभी-कभी उसके दोस्त ही मुझे बता देते हैं कि आजकल वह कहाँ है?'' उसने मेरे चेहरे को पढ़ने की कोशिश की। मैं चुप खड़ी थी।

''शायद यूरोप में है। हम चार साल पहले अलग हो गये थे। वह अपनी किसी दोस्त के साथ रहना चाहता था, कॉन्ट्रैक्ट बेस पर और ऐसा फॉरेन में ही सम्भव है। पुराना कॉन्ट्रैक्ट रद्द, नया शुरू।''

हम दोनों थोड़ी देर चुप खड़े एक-दूसरे को देखते रहे। उनका चेहरा सपाट था। बहुत वक्त बीत गया है और अब उन्होंने खुद को साध लिया है। वह धीरे से द्वार से हटी और अन्दर आने का इशारा किया। मैं अन्दर नहीं गयी।

''चलती हूँ...'' हाथ जोड़कर कहते हुए मैं मुड़ी और उस घर से दूर चली गयी।

कुछ दोस्तियाँ, कुछ रिश्ते किसी अंजाम तक नहीं पहुँचते, वे मात्र कुछ लफ्ज बनकर रह जाते हैं। कुछ बोसीदा यादें।

मुझे मिलान कुन्देरा याद आये– ''ऊपर से समझ में आने वाला झूठ है, उसके नीचे समझ न आने वाला सच।''

मैं धीरे-धीरे वापस लौटती हूँ। घाटों की सीढ़ियों से वापस अपने कमरे की ओर। जाने ऐसे कितने सवाल हैं, जिनका हमारे पास कोई जवाब नहीं। भीतर के कितने अँधेरे कोने हैं, जिन तक हमारी कोई पहुँच नहीं। समझ में न आने वाले सच के साथ एक तलाश छाती में छिपाये हम चलते रहने को विवश हैं।

❑

मो. 9827947480

लड्डू बाबू मरने वाले हैं

अल्पना मिश्र

''**मेरे** प्यार की निशानी है ये...''

उस वक्त जब हवा जरा तेज चल रही थी और कुछ सूखे पत्ते अपनी करकराती आवाज से इधर-उधर जरा-जरा-सा चल-फिर रहे थे, उसने झुक कर जमीन पर ताजा गिरा एक सूखा पत्ता उठाया और उसकी हथेली पर रख दिया।

''तुम भी हद करते हो!'' लड़की हँसी।

लड़का उससे भी ज्यादा हँसा। फिर दोनों एक-दूसरे की तरफ झुके और पत्ता खुली हथेली से सरक कर वापस अपनी जगह पर चला गया, यानी जमीन पर, पेड़ पर नहीं।

कहीं-कहीं वापस जाने की सम्भावना बिल्कुल नहीं बची रहती।

लड़की ने अचानक लड़के को उसी हथेली से पीछे ढकेल दिया।

''अभी ये सब नहीं। अपने एडमीशन पर तुम्हारा ध्यान नहीं है।''

''है... पूरा है, लगा हुआ हूँ। कुछ न कुछ होगा इस बार।'' लड़के ने चावल में अनायास घुस आये कंकड़ की तरह बात को किनारे किया, ''लेकिन अभी जो पल है, कैसे आता? कभी सोचा? अगर मैं तुम्हें गाँव से यहाँ पढ़ने आने पर जोर न देता। यहाँ लेकर न आता तो तुम अभी गाँव के बगल वाले जिले में किसी फटफट-सेवा में बैठ कर बीए करने जा रही होतीं। है कि नहीं?''

''हाँ।'' लड़की ने आँख झुका कर स्वीकार किया।

''और यहाँ, इस बड़े शहर में किसने तुम्हारे रहने के लिए पीजी-हॉस्टल का इन्तजाम किया?''

''हाँ।'' लड़की ने फिर स्वीकार किया कि यही वो व्यक्ति था, जिसने उसके घर वालों को उसे यहाँ

पढ़ने भेजने के लिए मनाया और यहाँ हॉस्टल न मिलने की हालत में कॉलेज के पास ही पीजी-हॉस्टल का इन्तजाम करवाया। हलाँकि अब उसे लगता है कि ये सब इतनी बड़ी बात भी नहीं थी। एक बार इस बड़े शहर आने की देर थी, उसे बहुत कुछ खुद ही समझ में आ जाना था। पर अब, अब तो उस पर लड़के का अहसान था और उसे कृतज्ञ होना था। पर प्रेम? यहाँ कन्फ्यूजन था। समझ में नहीं आता था कि अहसान करने वाले लड़के ने प्रेम के कारण साथ दिया था या अब अहसान का बदला चाहता था! इसलिए उसने भी लड़के को टालते रहना चुना था, तब तक, जब तक कि उसके मन में कुछ साफ न हो जाए।

लड़का समझ गया था कि लड़की के मन में कोई चोर दरवाजा है, जहाँ से वो उसके अहसान के भार के नीचे से सरक कर निकल जाती है और किसी ऐसी जगह पर जा पहुँचती है, जो उसे अब तक नहीं पता।

''तुम्हें पता है न, मैं तुम्हारे बिना मर जाऊँगा।'' लड़के ने उठकर जाने को खड़ी लड़की का हाथ पकड़ कर रोका और अपनी पॉकेट से एक मुड़ा-तुड़ा कागज उसकी हथेली में खोंसा। उसी हथेली में, जहाँ कुछ देर पहले सूखा पत्ता रखा था।

लड़की ने कागज खोला तो कुछ पंक्तियाँ चमक उठीं– ''खुल जाएँगी फिर आँखें, मर जाएगा जब कोई... आते नहीं हो बाज मेरे इम्तिहान से तुम...''

लड़के ने ये पंक्तियाँ आज सुबह ही लड़कों के झुंड में शेरो-शायरी करते रहने वाले एक लड़के के मुँह से सुनी थीं। यह सुनना भी बेवजह ही था, पर ये पंक्तियाँ लड़के को काम की लगी थीं। उसने वहीं एक पेड़ के पास बिखरे दो-तीन कागज के टुकड़ों में से एक टुकड़ा उठाया और जल्दी से नोट कर लिया कि अच्छी लाइन है, क्या पता कहीं मारने के काम आ जाए। और यहाँ अभी उसका भरपूर उपयोग उसने कर डाला था।

लड़की मुस्करायी। एक पल लगा था कि वो अनन्त काल तक मुस्कराती रहेगी या शायद मुस्कराते हुए एक खास तरह की मुद्रा में फ्रीज हो जाएगी, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। अलबत्ता लड़की तुरन्त ही क्लास के लिए बेकरार हो उठी, ''लड्डू, तुम भी हमेशा मरने की बात! चलो तो, नहीं तो मेरी ये क्लास भी छूट जाएगी।''

''क्लास, क्लास! हर वक्त तुम्हें क्लास की पड़ी रहती है! क्यों शिफ्ट हुई तुम मेरे वाले पीजी से इस घटिया पीजी में? कितनी दूरी बढ़ गयी मेरे कमरे से तुम्हारे कमरे की!'' लड़के ने मजनूँ वाले गुस्से से लड़की को डाँटा।

''क्या बोलते रहते हो! चलो अब। तुम भी देख आओ कि पी-एच.डी. का कुछ इस बार हो पायेगा? जाकर एक-दो टीचर से ही मिल लो।''

लड़की ने उसके हाथ की पकड़ को अपने हाथ की पकड़ से आजाद किया और आगे बढ़ गयी। लड़के को चमक कर इस बात ने चौंकाया कि अब तक उसने अपने एडमीशन के लिए आखिर किसी टीचर को क्यों नहीं पकड़ा!

''कल तक मर गया तो फिर न कहना।'' जाती हुई लड़की से लड़के ने एक वादा चाहा। लड़की मुस्कराई-भर, बोली नहीं।

''चालाक होती जा रही है।'' लड़का मन ही मन बुदबुदाया और अपने विश्वविद्यालय की तरफ चल पड़ा। जाते हुए सोचता जाता कि कौन टीचर सूटेबल हो सकता है जिससे बात की जाए, कई टीचर के चेहरे सामने आते और मिट जाते।

वे मगन भाव से चले जा रहे थे कि रास्ते में एक पुराना सहपाठी मिल गया। सहपाठी सड़क के किनारे खड़ा अपनी मोटरसाइकिल का हाल देख रहा था। ऐन राह में उसकी मोटरसाइकिल धोखा दे गयी थी। उसने तरह-तरह से रुक-रुक कर मोटरसाइकिल को स्टार्ट किया पर मोटरसाइकिल अड़ियल घोड़े की तरह टस से मस न हुई।

लड्डू बाबू अचानक रुक गये। सहपाठी को कुछ देर देखते रहने के बाद वे उसके पास चले आये।

''पुराना घोड़ा टें बोल ही जाता है।'' लड्डू बाबू ने किसी घोड़े के एक्सपर्ट की तरह कहा। सहपाठी को ऐसी किसी राय-विचार की कोई दरकार नहीं थी। उसने बेवजह रास्ते में भेंटाये लड्डू को जरा हिकारत से देखा।

''तुम कहाँ तफरीह मार रहे हो?''

''बस यहीं...।'' लड्डू बाबू को यह अच्छा नहीं लगा।

''सुने कि इस बार भी पी-एच.डी. में तुम रह गये।'' सहपाठी ने अपनी परेशानी के भीतर से एक ढेला जोर से मारा। लड्डू बाबू चौकन्ने हो चुके थे। इस वार को उन्होंने खाली नहीं जाने दिया।

''इतनी तेज धूप में देख रहे हैं तुम अपनी घोड़ा-गाड़ी लिये हलकान हो। बताओ, कुछ मदद कर दूँ तुम्हारी?''

यह दाँव ठीक पड़ा। सहपाठी कुछ नम्र हो उठा। उसने परेशानी के लपेटे में ही कहा– ''क्या कहें, चाचा जी यहीं शिवानन्द अस्पताल में एडमिट हैं। पापा का आदेश था कि उन्हें फल दे आऊँ, मगर ये ससुरी अचानक फेल हो गयी। समझ नहीं आ रहा क्या फॉल्ट है?''

''जस्ट डायल पर फोन करके एक ठो मैकेनिक बुलाइये।'' लड्डू बाबू ने

सलाह दी।

''वही कर रहे। कब से कह रहा है 'आ रहा हूँ'। आया नहीं अभी तक।''

सेब से भरा झोला मोटरसाइकिल के हत्थे से लटक रहा था। सहपाठी मैकेनिक को बार-बार फोन कर रहा था।

''अरे यार, घबराओ न। मैकेनिक तुम्हारे फोन करने से नहीं टपक पड़ेगा। रास्ते में होगा, जितना टाइम रास्ता लेगा, उतना तो लगेगा ही। मैं उसी तरफ जा रहा हूँ, तुम कहो तो तब तक फल चाचा जी को दे आऊँ? तुम मैकेनिक के साथ अपनी फटफटिया सुधरवाओ। मैकेनिक के भरोसे न छोड़ना इसे। अभी दो-चार रोज पहले की ही बात है कि राकेशनाथ, तुम नहीं जानते उसे, उसने अपनी फटफटिया ऐसे ही मैकेनिक के भरोसे छोड़ी थी। सारे ओरिजनल पार्ट निकाल लिये, नकली लगा दिये। ये भी तब पता चला जब गाड़ी दूसरे ही रोज फिर बन्द हो गयी। चिन्ता न करो, काम करा लो, फिर आ जाना या कहो तो मैं ही यहाँ रुक जाऊँ?'' लड्डू बाबू का ओपन प्रस्ताव था।

सहपाठी हिचकिचाया।

''नहीं-नहीं, तुम क्यों रुकोगे!'' सहपाठी ने निराशा से कहा। मन ही मन उसने सोचा, लड्डू को काम सौंपना कितना ठीक होगा! और मोटरसाइकिल को भी छोड़ा नहीं जा सकता, इस लड्डू के भरोसे तो बिल्कुल नहीं।

''अरे सोचते क्या हो, लाओ। हम उसी तरफ से होते हुए विश्वविद्यालय निकल जाएँगे। इस बार पी-एच.डी. में मेरा पक्का समझो।'' आखिरी बात तक लड्डू बाबू आत्मविश्वास से लबरेज हो चुके थे। सहपाठी अपनी हिचकिचाहट में कुछ कहता कि लड्डू बाबू ने मोटरसाइकिल के हत्थे से झोला झपट कर निकाला और तत्काल एक रिक्शा रोक लिया।

''पता नहीं कितना वक्त लग जाये इसमें। ठीक है, जाओ...'' इतनी बात कहने का अवसर उन्होंने सहपाठी को लेने नहीं दिया।

''दोस्त ही काम आता है आड़े वक्त में।'' इतना कहते न कहते उन्होंने एक हौसले का हाथ सहपाठी के कन्धे पर रखा और तत्काल दूसरा पैर रिक्शे पर।

पर रिक्शा शिवानन्द अस्पताल नहीं पहुँचा। पहुँचा सीधा विश्वविद्यालय। वे हड़बड़ाते हुए कुछ हद तक कूदते हुए रिक्शे से उतरे और तेज कदमों से विभाग की तरफ बढ़े। अतिरिक्त उत्साह उनका जरा-जरा छलकता था। आसपास की घास भी उन्हें चमकती हुई दिखाई पड़ रही थी और उस पर बैठे लड़के-लड़कियों का झुंड किसी परीदेश के बागीचे में सैर करते यक्ष और यक्षिणियों जैसा लग रहा था, जबकि विभाग उस समय तक दिन के काम समेटने की तरफ बढ़ रहा था, जरा ऊँघता और अन्यमनस्क-सा। सुबह वाली भीड़भाड़ हलचल-वलचल कुछ कम हो चली थी। वे अभी विभाग के कॉरीडोर की तरफ पहुँचने ही वाले थे कि बातों में मशगूल एक झुंड उनकी ही तरफ आता दिखा। पहचाने हुए सब लोग थे तो लड्डू बाबू उन्हें न देख कर तेज निकल जाना चाहते थे। एक तो सेब का झोला छिपाना आसान नहीं था, सेब की खूशबू अलग हलकान किये थी। मिलने वाला झोले की तरफ देखे बिना रह न पाता था।

''अरे, भुवनेश्वर!'' झुंड से तेज स्वर उभरा।

लड़का, जिसका नाम लड्डू था और बहुत कम लोग जानते थे कि उसका नाम लड्डू था, असल में भुवनेश्वर नाम से जाना जाता था। वैसे तो उसे न लड्डू नाम पसन्द था, न भुवनेश्वर। पर दोनों को ही लड़का बदल नहीं सकता था। कभी-कभी अपने नाम से फेड-अप होकर सोचता जरूर था कि उठे और सीधा कचहरी के गलियारे में चला जाए। एक ठो एफिडेविट का सवाल-भर है, अपना नाम बदल कर क्या नहीं रख सकता! 'राहुल' नाम घोषित करवाने की कई बार उसने ठानी भी, लेकिन 'राज' नाम भी उसे पसन्द था। बचपन में एक दोस्त ने तो उसे बाकायदा 'राज' नाम से बुलाना भी शुरू कर दिया था। फिर 'राज' और 'राहुल' का कन्फ्यूजन बढ़ता जाता और एफिडेविट बनवाना टलता जाता। एक दिन पेड़ के नीचे बैठ कर लड़की ने उसे 'अरमान' नाम सुझाया। उसे पसन्द भी आया। कुछ देर तक वो अपने को 'अरमान' नाम के साथ एडजस्ट भी करता रहा, लेकिन उसी दिन ऐसा हो गया कि उसके आगे बढ़ते ही लड़कों के एक दल में उसे 'अरमान' नाम का एक मुस्लिम लड़का मिल गया। उसने न जाने किस अज्ञात अचेतन से तुरन्त उस नाम को अपने लिए खारिज कर दिया। अब धीरे-धीरे उसने खुद ही तय किया कि लड्डू से ऊपर 'भुवनेश्वर' को रखना ही फिलहाल ठीक है। जब कभी मौका लगेगा तो वो खुद ही शब्दकोश लेकर अपने नाम की तलाश में बैठेगा। तो वही लड़का जिसका नाम लड्डू उर्फ भुवनेश्वर था, रुक गया। उसके साथ उसकी आँखों की चमक रुकी, परी लोक का पूरा परिवेश रुका और सेब की खुशबू, वह नहीं रुक सकी।

''वही पिछले साल वाला रखोगे कि इस बार नया सोचे हो?'' लड़के पूछ रहे थे, भुवनेश्वर से भी और एक-दूसरे से भी। बात पी-एच.डी. के लिए विषय चुनने की थी।

''फार्म में भर दिये कि ब्लैंक छोड़े

हैं?''

''अभी तक तो पुराना वाला...''

''वो नहीं चलेगा अब।'' एक लड़का तपाक से बोला।

लड्डू बाबू टिकिर-टिकिर मुँह ताकने लगे।

''भक्तिकाल से कुछ उठाइए। रीतिकाल से ले लीजिए।'' किसी ने कहा।

''मैंने देव ले लिया इस बार।'' एक लड़का चहका।

''मैंने तो वृन्द पर बना लिया। बता दिया है कोई और मत बनाना।'' एक लड़की बोली, फिर लड़की ने कविवर वृन्द की तारीफ में चन्द शब्द कहे।

''देव! वृन्द!'' लड्डू परेशान हो गये। चारों तरफ बिखरी घास अचानक मैली और कुचली हुई दिखने लगी। कई जगह प्लास्टिक के रैपर पड़े दिखे। उस पर पहले के बैठे लोग गायब थे और नये बैठने के लिए जगह खोजते लोग निहायत साधारण। परी लोक अचानक छिन्न-भिन्न होकर बिला गया।

''बदल दें क्या?'' वे मन ही मन चिन्तित।

''इसमें क्या लेकर आये हो?'' तभी एक लड़का झोले पर झपटा। लड्डू बाबू झोला बचाते सावधान हो गये।

''सेब! सेब है क्या!''

''अरे-अरे, रुको-रुको, काम से ले जा रहे।'' वे चीखे।

अचानक उन्हें ध्यान आया कि वे अपने लक्ष्य से भटक रहे हैं। उन्हें एक टीचर पकड़ने जाना था और वे यहाँ फँस कर समय बर्बाद कर रहे!

''बुरा न मानो यार, एक मित्र के पिता जी एडमिट हैं, उसी ने अस्पताल पहुँचाने को कहा है। दूसरे की अमानत है, इसीलिए मैं जरा जल्दी में हूँ।''

लड़कों ने झोले पर होने वाले आक्रमण को स्थगित कर दिया।

लड्डू बाबू तेज कदमों से विभाग के कॉरीडोर में पहुँचे। संयोग से उसी समय विभाग से निकल कर एक शिक्षक कॉरीडोर से गुजर रहे थे। लड्डू बाबू ने आनन-फानन में तय किया कि इसी शिक्षक को पकड़ा जाए और जो मामला तय होता लगा तो इन्हीं को सेब का झोला समर्पित कर दिया जाए।

''सर... सर, आपसे एक बात कहनी थी।''

''बोलो।'' शिक्षक ने चलना नहीं बन्द किया।

लड्डू बाबू को दौड़ कर उनके बगल तक पहुँचना पड़ा।

''सर पी-एच.डी. के विषय में आपसे पूछना था।''

''अच्छा बताओ।''

''सर, तय नहीं कर पा रहा, किस पर करना ठीक होगा? पिछली बार वाला तो रिजेक्ट हो गया।''

''कोई एरिया ऑफ इंटरेस्ट होगा, उससे सोचो।''

एरिया ऑफ इंटरेस्ट? अब ये क्या मुसीबत है? ये टीचर भी! किसी न किसी ऐसी बात में अटका देते हैं कि आदमी निरुत्तर हो जाए! मन ही मन लड्डू बाबू बड़बड़ाये।

''सर, कुछ आप बता दीजिए।''

''रेडीमेड चाहिए। यही कमी है। कुछ पढ़ो पहले।''

''सर, देव!'' फिर उन्होंने वही दो पंक्तियाँ, जो देव की प्रशंसा में उस समूह में कही गयी थीं, सुना दीं।

''देव का कौन-सा एरिया? मतलब, क्या दिखाना, मतलब शोध क्या करना चाहते हो?''

''सर, क्या बताएँ, तबियत ने इतना दगा दिया कि कुछ पढ़ नहीं पाये। पिछले दिनों डेंगू हो गया था, प्लेटलेट्स 15 पर आ गया था। किसी तरह बच गया। अभी डॉक्टर ने कहा है कि किडनी किसी भी वक्त फेल... पिछली बार नहीं हुआ, इस बार नहीं हुआ तो क्या होगा सर? मन करता है कि आत्महत्या कर लूँ...'' लड्डू बाबू इतना कहते-कहते सचमुच जरा-सा रुआँसे हो आये।

टीचर ने पल-भर के लिए जरा चौंक कर उनकी तरफ देखा। पार्किंग में खड़ी अपनी गाड़ी तक वे पहुँच चुके थे, फिर भी रुके और दिलासा का एक हाथ कन्धे पर रख कर जरा-सा ही सही थपथपाये।

''अपनी सेहत सँभालो बरखुरदार। जवान आदमी हो, इतना क्यों निराश होते हो!''

वे अपनी गाड़ी में और लड्डू बाबू सेब समेत धरती पर।

फिर वे इधर से दौड़े, उधर से दौड़े, कोई शिक्षक दिख जाता तो दौड़ कर उसे यही सारा हाल सुना देते, पर सब बेनतीजा। ये साले टीचर जरा नहीं पिघलते। लड्डू बाबू ने मन-ही-मन तीन-चार अच्छी-अच्छी गालियाँ सोचीं, पर मुँह से उनके कुछ नहीं फूटा। उनका हाथ अनायास सेब के झोले पर गया। झोला कन्धे पर अब भारी लगने लगा था।

किसी भी चीज के लिए पात्रता सबसे मुश्किल शर्त है! लड्डू बाबू को आज यह बोधि ज्ञान प्राप्त हुआ था।

अब वे निराश हो रहे थे। किस कुघड़ी उन्हें यह बात सच लगी थी कि टीचर आसानी से फँस जाएगा! अजीब उधेड़बुन में घिरे से वे लौटने का मन बना ही रहे थे कि एक और पुराना सहपाठी जिसका नाम 'काजू' था, टकरा गया।

''का बे!'' उसने हर्षनिनाद किया।

''अरे काजू!'' लड्डू बाबू ने भरसक खुशी दिखाने की कोशिश की। एम.ए.

के दिनों में खूब दोस्ती थी दोनों की, लेकिन जब से काजू का एडमीशन पिछले साल पी-एच.डी. में हो गया तो राहें जुदा-जुदा हो चलीं।

''किधर?''

''अब तुमसे कुछ छिपा है क्या?'' लड्डू बाबू अचानक जेनुइन तरीके से भावुक हो उठे।

''इस साल एडमीशन न हुआ तो घर से खर्चा-पानी आना बन्द समझो। इस शहर में कैसे टिका जाए? ऐसा हाल हो गया है कि... ऐसा कि पूछो मत... मन करता है जाकर कहीं डूब मरें...।''

''ऐसा भी न कहो। हो जाएगा इस बार।'' काजू ने दिलासे के वाक्य फेंके।

''कैसे हो जाएगा? कोई उपाय नहीं रह गया। जितना खींचना था, खींचा, अब नहीं खिंच रहा।''

''किसी टीचर को क्यों नहीं पकड़ते?''

''रहने दो। ये आइडिया बेकार है।''

काजू कुछ समझे नहीं। अलबत्ता खींच कर लड्डू को टी-स्टॉल तक ले गये। फिर एक-एक कप चाय के साथ गहन विचार-विमर्श शुरू हुआ।

''यही कार्ड तुम किसी टीचर पर क्यों नहीं आजमाते?''

''अभी तो बताये तुम्हें कि बेकार है।''

''मेरा मतलब, किसी महिला टीचर।''

''वो क्यों सुनेंगी हमारी?''

''सुनेंगी, सुनेंगी। मातृस्वरूपा होती हैं। जब मैं आ रहा था, वीवी अपने चैम्बर में बैठी थीं। दौड़ के जाओ, क्या पता मिल जाएँ! उन्हीं के चरणों पर गिर पड़ो। बाहर निकल कर चाहे गरिया लेना।''

लड्डू ने हताशा और उम्मीद के सम्मिश्रण से बने किसी पहचाने-से भाव से काजू को देखा और शिक्षकों के चेम्बर जिस तरफ थे, उधर दौड़ गये।

चेम्बर के आगे वीवी का नेमप्लेट चमक रहा था। चेम्बर के भीतर बैठी वीवी कुछ कागजों में उलझी थीं। 'वीवी' उनका नाम विद्यार्थियों की देन था जो कभी-कभी 'बीबी' भी बना दिया जाता था। उनका असली नाम 'विश्वविवेका' था। लड्डू को उनका नेमप्लेट देख कर हमेशा ख्याल आता था कि उनके माँ-बाप को इतनी भी समझ नहीं कि नाम 'विश्वविजेता' होना चाहिए। जरूर अनपढ़ होंगे। लेकिन वे 'वीवी' का नाम नहीं बदल सकते थे जैसे अपना नाम नहीं बदल पा रहे थे। उन्होंने वीवी की तरफ देखा। पता नहीं क्या कागज थे, उसमें से बीच-बीच में कुछ नोट भी कर रही थीं। कहीं पढ़ाने के लिए अपना लेक्चर तो नहीं तैयार कर रहीं? क्या पता यहीं बैठे-बैठे कल की कक्षा की तैयारी करती हो! लगता है इसके घर में पढ़ने की जगह नहीं है। घर जाकर तो चूल्हा-चौका, बच्चा-कच्चा करना पड़ता होगा बेचारी को...।

इस वैचारिक आलोड़न में वे कब चैम्बर के अन्दर बिना इजाजत लिये आकर खड़े हो गये, उन्हें खुद ही पता न चला।

वीवी ने उनके आगमन की कोई नोटिस न ली। करीब पाँच मिनट बीत गये, तब वीवी ने सिर उठाया।

''क्या है?''

''मैम...'' लड्डू चरण स्पर्श के लिए सेब का झोला समेटे बढ़े, वीवी ने रोक दिया।

''मैम, पी-एच.डी. के विषय... मतलब आप बता देतीं...।''

वीवी फिर भी कुछ नहीं बोलीं तो उनकी हिम्मत बढ़ने की बजाय और डगमगाई। मन में काजू का चेहरा उभरा– 'मातृस्वरूपा'। वीवी ने तब तक कागजों से फिर नजर उठायी, पर इस बार भी अपनी ही उधेड़बुन और हकला पड़ने जैसी स्थिति में वे समझ ही न पाये कि क्या कहें!

''बताओ।'' वीवी की आवाज धीमी थी, लेकिन उन्हें लगा कि कोई बम फटा है।

''मैम वृन्द पर बनाया था...'' फिर जो कुछ कॉरीडोर के पास मिले झुंड में एक लड़की ने कहा था, वही दोहरा दिया।

''क्या पढ़े हो वृन्द का?''

''अभी पढ़ा नहीं हूँ, असल में मैम डिसाइड नहीं हुआ है, इसलिए... मैम मैं बड़ी मुश्किल में फँस गया हूँ। पता नहीं बचूँगा कि नहीं।'' फिर वे खुद ही सामने वाली कुर्सी खींच कर बैठ गये।

''मैम, अब जीना बेकार लगने लगा है... इस बार एडमीशन नहीं हुआ तो आत्महत्या कर लूँगा... मैम, आपसे बता रहा हूँ, किसी से बता भी नहीं सकता। आप समझ सकती हैं मैम, पिछले दिनों बीमार था बहुत, हॉर्निया का ऑपरेशन हुआ था...। मैम, उसके बाद कुछ

कॉम्पलीकेशन आ गये, साँस लेने में तकलीफ... मतलब फेंफड़े का इंफेक्शन।''

''इतने कष्ट में पढ़ोगे कैसे?'' वीवी की धीमी आवाज फिर बम की तरह फटी।

''मैम, पढ़ना तो जरूरी है... मैं सारे कष्ट सह लूँगा अगर एक बार मेरा एडमीशन हो जाए, आप जो कहें वो विषय ले लूँगा।''

''वक्रोक्ति को नये साहित्य में देखो।''

''मैम अभी कैसे? मैंने तो कुछ नया साहित्य पढ़ा ही नहीं है। फेसबुक वगैरह पर मैं नहीं हूँ।''

''फेसबुक से नहीं पढ़ना है।''

''मैम वृन्द में क्या बुराई है? आसान हैं, कम हैं, जल्दी पढ़ लूँगा और मेरी सेहत का भी तो...'' ये सब बातें भी झुंड में मिली उसी लड़की ने कही थीं।

''वृन्द पर बहुत काम हो चुका है, इसलिए।''

''मैम, मैं मर सकता हूँ... आत्महत्या।''

वीवी तब तक अपना कागज-पत्तर समेट कर उठ खड़ी हुई थीं। वे घबरा गये। एक आखिरी दाँव और चले– ''मैम, एक बात और, आपसे कह सकता हूँ, मुझे ये बात खाये जा रही है। मैं जिस लड़की से प्रेम करता था, गाँव से यहाँ पढ़ाने के लिए ले आया, सब किया उसके लिए... उसने मुझे धोखा दे दिया। अब कहती है कि जब तक मेरा एडमीशन नहीं होगा, मुझसे बात तक नहीं करेगी। मैम, प्लीज...।''

''आत्महत्या करना बेकार है। इससे अच्छा पढ़ लो।''

वीवी बाहर निकल आईं और भौंहों के बल से उन्होंने लड्डू को बाहर निकलने के लिए कहा। चैम्बर में ताला लगाया और चली गयीं।

लड्डू खड़े रह गये। सेब का झोला कन्धे पर लटका रह गया। मातृस्वरूपा! वे मन में चिढ़े। सोचा था दुखभरी कहानी के बाद झोला सहित सेब भी उसके चरणों में रख देंगे, पर वीवी इस योग्य नहीं। फिर एक बार कुपात्र के पास जाने से सेब बच गये।

पर अब? इतने प्रयत्नों के बेकार चले जाने से अब सचमुच की निराशा उन पर हावी होने लगी थी। वे सिर झुकाये वापस लौटने के लिए बढ़े कि पीछे से चले आ रहे प्रसन्नबदन ने उन्हें टोक दिया। वे रुक गये। प्रसन्नबदन कई वर्ष से किसी न किसी कोर्स में एडमीशन लेकर छात्र कहलाने का हक बनाये रखते हैं। अपने आप को किसी बाहुबली से न कम समझते हैं, न सामने वाले को समझने देते हैं। झक्क सफेद कुर्ता-पाजामा पर लाल गमछा डाले अपने तीन-चार साथियों के साथ आकर खड़े हो गये।

''क्या वीवी का इन्तजार कर रहे हो?''

''चली गयीं।''

''तो परेशान काहे हो? डाँट पड़ी है?''

''भैया जी, वीवी बड़ी बद्तमीज हैं।'' वे अपनी चोट छुपा नहीं पाये।

''समझ गये, एडमीशन का मसला है। इसमें इतना क्या हलकान होना! अपनी तरफ के हो तुम... कुछ करते हैं।'' भैया जी कुछ सोचने के लिए एक क्षण रुके।

''भैयाजी क्या कहें आपसे। अब खाली हाथ गाँव नहीं लौट सकते। क्या कहेंगे माँ-बाप? नाते-रिश्तेदार? कि गये थे पढ़ने। कोई जुगत लगाइये... सच कह रहे हैं, मजाक मत जानिए, अबकी बार एडमीशन न हुआ तो आत्महत्या कर लेंगे।'' लड्डू बेचैन थे।

''धैर्य, धैर्य रखो। सिर्फ तुम्हारे लिए कह रहे हैं। अभी चले जाओ हमारे चाचाजी के पास, शाम तक बाहर निकल जाएँगे। जानते ही हो, चाचाजी कितने रसूख वाले हैं! कुछ न कुछ कर देंगे। अपनी सब परेशानी बता दो। जाओ, दौड़ के पकड़ लो। कैब कर के निकल लो।'' भैयाजी आनन्द के अतिरेक में हँसे। उनके साथ उनके तीन-चार समर्थक भी हँसे। किस बात का आनन्द था, यह अज्ञात ही रहा!

भैयाजी के चाचा जी किसी राजनीतिक पार्टी के छुटभैया नेता थे। कभी-कभी जरूरत अनुसार पार्टी बदल भी लेते थे। जी-जान से कोशिशों के बावजूद आज तक वे किसी चुनाव का टिकट तो दूर, उसके पास तक नहीं फटक सके थे लेकिन बाहुबली होने का श्रेय उनसे कोई नहीं छीन सकता था। खुद चाहे उनका राजनीतिक कैरियर जैसा भी रहा हो, भैयाजी को वे भावी नेता के रूप में तैयार कर देना चाहते थे।

कैसे अब तक उन्हें प्रसन्नबदन भैया जी की याद न आई! लड्डू मन ही मन पछताये भी और खुश भी हुए कि चलो, देर आये दुरुस्त तो आये। कैब महँगी थी पर इस वक्त क्या महँगा-सस्ता देखना!

लड्डू दौड़े। साथ में कन्धे पर उलझता झोला भी दौड़ा।

नेता जी कहीं जाने की हड़बड़ी में अपने बाहरी बरामदे में ही मिल गये। उनके साथ दो आदमी और थे। दोनों छोटे बाहुबली की वेश-भूषा में थे। लड्डू को देखते ही नेता जी ने नोटिस लिया।

''अरे, आओ बबुआ। तुम्हारे लिए ही रुके थे नहीं तो कब के निकल जाते। यही प्रसन्नवा का फोन आ गया।''

लड्डू ने फौरन उन्हें चरण स्पर्श किया और सेब का झोला समर्पित कर दिया।

''हाँ तो क्या नाम है? बताया था प्रसन्न ने।''

''जी, भुवनेश्वर।''

''हाँ तो भुबनेश, हम तुम्हारी सब समस्या समझ गये हैं। आजकल टीचर लोग भी कम नहीं हैं।''

''सर, हम बहुत निराश होकर...''

''अच्छा, बताओ क्या काम जानते हो?''

''सर, हम तो स्टूडेंट हैं।''

''हाँ... हाँ, अब जरा कॉपी-किताब एक तरफ सरका के बताओ कि क्या काम कर सकते हो? मतलब कुछ भी! काम में मन लगाओगे तो निराशा छू-मन्तर हो जाएगी और जरा धैर्य रखो, एडमीशन का भी कुछ न कुछ किया जाएगा। ए रामसुमिर, कल ग्यारह बजे इसको लेकर फार्म पर जाओ। अदरक की खेती करवाएँ हैं इस बार। बन्दर अदरक नहीं खाता न। बड़े बन्दर आते थे फॉर्म पर। अब आएँगे तो क्या पाएँगे, बताओ?''

''जी अदरक।''

''नहीं रे। ठेंगा... ठेंगा पाएँगे। खेतिहर घर के हो तुम, है न! खेती तो जानते ही होगे, चले जाना।''

''सर, हम कभी खेती नहीं किये। खुर्पी तक नहीं छुए...''

''तुम्हें उखाड़ना थोड़े है, उखड़वाना है।'' तभी उनका ध्यान झोले पर पड़ा।

''ए रामसुमिर, ई झोला अपनी मोटरसाइकिल में टाँग लो। उधर से ही शिवानन्द अस्पताल भी होते चलेंगे।''

फिर लड्डू की तरफ मुड़े– ''हमारे एक मित्र एडमिट हैं, उन्हें देखते हुए निकल जाएँगे। तुम अब जाओ।''

लड्डू अवाक्! नेता जी झटके से रामसुमिर की मोटरसाइकिल के पीछे लद गये। सर्र-र... फट्-फट्-फट् सर्र...

लड्डू के कानों में बजता रहा।

देव! वृन्द! अदरक!

देव! वृन्द! अदरक!

❑

मो. 9911378341

❑ **कहानी**

अभी बस इतना ही

पंखुरी सिन्हा

''**किसी** और से प्यार करती हूँ, ये शादी जबर्दस्ती कर दी गयी है। ...देखिये, ये शादी मेरी मर्जी के खिलाफ हुई है। मैं कहती रही लेकिन उन्होंने आपके साथ बाँध दिया। मैं किसी और के प्रेम में हूँ और उसे नहीं भूल सकती।''

शादी की पहली रात को, इस तरह के डायलॉग बोलने-सुनने की घटनाएँ इधर कुछ ज्यादा ही घटने लगी हैं। दरअसल, लड़कियाँ अब पहली बार बोलने लगी हैं। जो बात वे अपने अभिभावकों को नहीं समझा पातीं, बड़ी आसानी से अपने अजनबी पति को बता देती हैं।

लेकिन, 'हम किसी और को चाहते हैं। हम नहीं चाहते, हमारी वजह से आपकी जिन्दगी खराब हो, बस आप मेरे घर वालों को मत बताईयेगा, वो मेरी जान ले लेंगे।' जैसा फिल्म मुगले-आजम, हीरोइन जहाँआरा टाइप डायलाग, पिछले तीन दिन की त्रासद, दर्दनाक नाटकीयता के बाद, मेरे सामने बैठी मेरी नवविवाहिता पत्नी मुझसे कहेगी, यह एक ऐसा एंटी क्लाइमेक्स था, जिसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता था।

जी हाँ, मेरी। नवविवाहिता पत्नी। यह जो सुकोमल, सुशील-सी दिखती, बेहद लजीली, अतिसुन्दर कन्या, गर्दन झुकाये मेरे सामने बैठी थी, अभी-अभी जलती हुई आग के सात फेरे लिवा कर, मुझसे ब्याही गयी थी। लगभग तीन घंटे पहले, मैंने ही अपने दाहिने हाथ के अँगूठे से, इसकी सुसज्जित माँग में वह लाल सिन्दूर डाला था,

जो पूरे कमरे में दमक रहा था।

जी हाँ, ठीक तीन दिन पहले, जब सूरज पटना जंक्शन की टीन की छत के पीछे डूबने की तैयारी कर रहा था, और चाय वाला घिरते झुटपुटे में बत्ती जलाने के लिए स्विच की ओर हाथ बढ़ा रहा था, मैं प्लेटफार्म नम्बर एक से सीधा बाहर निकलता हुआ, अचानक धर लिया गया, अर्थात् अगवा कर लिया गया।

दो जोड़ी मजबूत हथेलियों ने मेरे दोनों कन्धों को कसकर पकड़ा, मेरे सिर के ऊपर फौरन एक चादर डाली गयी, किसी की बाँह ने मेरी कमर को इस तरह जकड़ा, जैसे अक्सर लफंगे धुँधलके में राह चलती कमसिनों की कमर को मुट्ठी में भर, नौ दो ग्यारह हो जाते थे, लेकिन मुझसे एक सख्त आवाज ने कहा था, ''भागने की कोई कोशिश बेवकूफी होगी। शान्तिपूर्वक हमारे साथ चलो, हम तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ेंगे।'' गाड़ी अर्थात् कार बमुश्किल छह कदम की दूरी पर रही होगी। उसके चलते ही मेरे सिर पर से चादर हटा दी गयी थी। दुबारा रोशनी क्या, समूची दुनिया को देखना कुछ इस तरह था, जैसे एक झटके में मौत के द्वारा निगला और उगला गया होऊँ। स्टेशन के फाटक पर अदने-से दिखते दो सिपाही खड़े थे, लेकिन तब तक मेरे दोनों घुटनों के नीचे पिस्तौल की नली लगाई जा चुकी थी और कह दिया गया था कि मैं कोई शोरगुल न करूँ। हालाँकि दोनों की ही कोई जरूरत नहीं थी। मैं इतना भौचक था, और इस हद तक सहमा हुआ, कि मुझे लग रहा था कि मेरी आवाज हमेशा के लिए चली गयी है और अगर फिर कभी मैं बोल सका, तो यह कोई जादुई करामात होगी, या ईश्वरीय कृपा। जबकि, ईश्वर में मेरा विश्वास कम ही था, फिर भी उस वक्त मैं हर उस दैवी शक्ति को स्मरण कर रहा था, जिसमें मुझे मेरे इस संकट से उबारने की कोई भी क्षमता दिखती थी। आखिर, मेरे-जैसे चुप्पा, शरीफ और लगभग निरीह प्राणी के ऐसे ताकतवर दुश्मन कौन हो सकते थे? क्या इन लोगों ने मेरे द्वारा लिखे तमाम वो लेख पढ़ लिये थे जो बालू माफिया, गिट्टी माफिया, ईंट माफिया, मिट्टी माफिया, पानी माफिया और सड़क माफिया के खिलाफ मैंने ताबड़तोड़ लिखे थे और देश की चुनिन्दा मार्क्सवादी पत्रिकाओं ने जिन्हें हाथों-हाथ छापा था? क्या गुंडे भी बौद्धिक हो गये थे?

क्या उस वक्त इस फिकरेनुमा सवाल पर मेरे जेहन में मुस्कराहट का एक ख्याल रोशनी की एक लकीर की तरह गुजरा था?

हाईवे पर पहुँचते ही पिस्तौल दूर हो गयी थी। लेकिन, डर मेरी पूरी देह पर पसीने की ठंडी बूँदों में छलछला आया था। भय का ऐसा खौफनाक चेहरा मैं पहली बार देख रहा था। घबराहट एक कसैले स्वाद की शक्ल में मेरे मुँह में उभर आयी थी। मैं चाहने लगा था कि जो भी होना हो, जल्दी हो जाए। अगर किसी सुनसान जगह पर ले जाकर मुझे गोली ही मारी जानी हो, तो यह भी जल्दी हो जाए। बस खत्म हो जाये, यह यन्त्रणा-भरी यात्रा।

इसलिए, हरियाली से लदे-फँदे किनारों वाले हाईवे पर दो घंटे दौड़ने के बाद, गाड़ी जब हल्दी और कुमकुम के निशानों से सजे घर के आगे रुक कर खड़ी हो गयी, तो पहले तो घरेलूपन के एक एहसास ने मुझे सुकून दिया, लेकिन फिर फौरन इस दहशत ने भी जकड़ लिया कि हो न हो, यह किसी तान्त्रिक का आवास है और मेरी नर-बलि होने जा रही है। हमारे गाड़ी से उतरते ही, पहले से शान्त वातावरण अचानक तुरही या पिपही-जैसे किसी वाद्ययन्त्र से गूँज उठा। लगन या उस-जैसी ही कोई शुभ ध्वनि बज रही थी और मुझे उस बकरे की याद हो आई, जिसे बलि से पहले पूजा जाता है।

दो-चार कदम आगे बढ़ने पर, कुछ स्त्रियाँ, हाथों में पूजा अथवा आरती का थाल लिये आती दिखाई पड़ी।

निश्चित ही, यह कपाल कुंडला के किसी साधक का वधस्थल है। मुझे मोकामा के एक मशहूर अघोरी साधू की याद आई, जिसके अड्डे पर हर कार्तिक पूर्णिमा को आसाम से जटाधारी नागा साधुओं का मेला लगता था और वे मसान साधते थे। मैं वर्षों से 'नागा तान्त्रिकों की श्मशान अर्चना' पर एक निबन्ध लिखना चाहता था और आज मुझे लग रहा था कि शायद इस इच्छा की पूर्ति के बिना ही, मैं दुनिया से रुखसत कर दिया जाने वाला हूँ।

एक उम्रदराज महिला ने जब पान का एक गरम, अर्थात् गुनगुने तापमान का पत्ता, मेरे दाहिने गाल से सटाया, तो ठंडे, सख्त, बेजान पड़े मेरे शरीर में एक झुरझुरी-सी महसूस हुई, दिल में बहुत गहरे भीतर कहीं धुकधुकी कोई, और सुन्न-से पड़े दिमाग के पिछले हिस्से में कोई हरकत, सुगबुगाहट कोई। मुझे कुछ कुछ जानी-पहचानी-सी बात लगी, कुछ सुनी-सुनाई हुई और तभी लड़कियों की चुहल-भरी ठिठोली ने, सारा मामला साफ कर दिया।

''शादी होने जा रही है जीजा जी, जयमाल के लिए तैयार हो जाओ।'' कहती हुई वो लोटपोट होतीं, एक-दूसरे पर गिरती जाने कहाँ गुम हो गयीं। मेरे कान गर्म हो गये और सारा आवेग आँखों से बह निकलने को तैयार हो गया। पान का दूसरा पत्ता जब तक दूसरे गाल तक पहुँचा, मेरी आँखें छलछला आई थीं। मुझे माँ की याद आयी और उन सारे सपनों

की जो मैंने गाहे-बगाहे अपने जीवन में आने वाली औरत को लेकर देखे थे। मुझे वो सारी तारिकाएँ याद आईं और कुछ इधर-उधर की लड़कियाँ भी, जिनके साथ मैं अपने खयालों में हमबिस्तर हुआ करता था। 'फन्तासी के जॉनर में प्रेम का चित्रांकन', जैसे निबन्ध भी मैंने लिखे थे, जिन-पर कई प्रशस्ति-पत्रों की शक्ल में छिपे-छिपे प्रेम-पत्र भी मुझ तक पहुँचे थे और शहर के कॉफी हाउस में, इन चिट्ठियों की कुछ लेखिकाओं से मुलाकातें भी मैंने की थीं। 'तितलियों से घिरा भौंरा' नाहक मेरा नाम पड़ गया था लेकिन किसी के भी साथ संवाद बहुत दूर तक जा नहीं पाये थे। 'आप प्रेम को लेकर बहुत गम्भीरता से सोचते हैं, जबकि अधिकांश पुरुष इसे टेकन फॉर ग्रांटेड लेते हैं।' सरीखी तारीफें अनेक तरहों से मुझे मिली थीं। 'कितनी बड़ी बात है कि आपने स्त्री की फन्तासी को कुबूला है, उसकी अनुपस्थिति को जीते हुए उसकी इतनी सौम्य कल्पना की है।' किन्तु, वह स्त्री सुबोधिनी, स्त्री मनस्विनी कहाँ थी, जो फन्तासी के उस ब्लैंक में अपनी बातों का रंग भर सके?

प्रेम में कल्पना, प्रेम में वास्तविकता, प्रेम में अपेक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ, प्रेम में बराबरी, प्रेम में साझेदारी, प्रेम में जेंडर, प्रेम में प्रतिस्पर्धा, प्रेम में स्वीकार-अस्वीकार आदि विषयों पर लम्बी-चौड़ी बातें हुईं, लेकिन कुछ भी नया या अनोखा नहीं कहा गया। अन्त में, जब एक अति आतुर बालिका ने मुझसे पूछा कि 'आप प्रेम को केवल फन्तासी में ही जीना चाहते हैं, असलियत बनाना ही नहीं चाहते, है न?' तो मुझे पलट कर सवाल करना पड़ा कि 'अगर मैं इस जगमगाते शहर को छोड़कर, किसी पिछड़े गाँव के स्कूल में चला जाऊँ, तो क्या वह साथ चलेगी?' और बात यहीं खत्म हो गयी।

प्राध्यापकीय नौकरी की प्रतीक्षा में वर्षों खड़े रहने के बाद, अब जाकर एडहॉक में मेरा अपॉइंटमेंट हुआ था, बल्कि कहें कि एक छोटा-सा द्वार खुला था, जिसमें कोई स्थायित्व नहीं था। रोजगार से इतर भी, मैं मानता था कि प्रेम चाहे और जो कुछ भी हो, उसे सबसे पहले ईमानदार होना चाहिए। दिखावा नहीं, आडम्बर नहीं। सम्भव था, बौद्धिक विमर्श करते हुए प्रेम कर बैठना, लेकिन विमर्श उस स्तर पर पहुँचा ही नहीं था, जहाँ कोई मुझसे टक्कर ले पाता। मेरा बहुत योग्य वर होने का कोई दावा नहीं, फिर भी मैं जिन्दगी अपनी मर्जी से जीता था। आखिर, मेरे-जैसे शख्स को विवाह के लिए अगवा करने का तुक क्या हो सकता था?

मुझे याद आया कि यह जो पान के पत्ते से गाल सेंकने की रस्म अभी-अभी निभायी गयी थी, उसे चुमावोन कहते थे और अब सिलबट्टे के बट्टे, जिसे इस अंचल की भाषा में लोढी कहते थे, उसी लोढी से मुझे परीछने की तैयारी हो रही थी। अति उत्साह में लोढी लेकर आती, मुस्कराती हुई उस उम्रदराज महिला को देखकर पल-भर के लिए मेरे भी चेहरे पर तिरछी ही सही, एक स्मित रेखा, खिल गयी। और फिर अगले ही पल, इस सवाल ने मुझे जकड़ लिया कि यह लोढी उनके या मेरे सिर लग क्यों नहीं जाती, और यह कार्यक्रम स्थगित क्यों नहीं हो जाता? और उसके अगले पल, मैं राहत के इस एहसास से एक बार फिर ओत-प्रोत हो गया कि कितना अच्छा था कि लोढी हम दोनों में से किसी को नहीं लगने वाली थी और कोई खून-खराबा नहीं होना था।

उस वक्त मुझे बुद्ध याद आये या किसी और दार्शनिक के सिद्धान्त, मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता, लेकिन शान्ति-जैसा एक शब्द मेरे जेहन में जरूर गूँजा था। पूजा-अर्चना का माहौल बन रहा था, जिसमें मैं धीरे-धीरे खुद को सँभाल पा रहा था। जी हाँ, मेरे-जैसा मार्क्सवादी विचारधारा का व्यक्ति भी यदि पूजा के वातावरण में शान्ति लाभ कर लेता था तो इसका श्रेय माँ की लगभग नित्य सुबह की पूजा को जाता था, जिसके मन्त्रोच्चार अब भी कहीं दूर से आते हुए मेरे कानों में पड़ रहे थे।

दरवाजे पर की रस्म-अदायगी के बाद, एक बार फिर, मुझे पुरुषों को सौंप दिया जाना था, ऐसा कहते हुए लड़कियों के झुंड ने मुझे धर दबोचा था। और जब उनकी अनेक उँगलियों ने मुझे भर आँख काजल लगाया तो एक बार फिर, मेरी आँखें डबडबा गयी थीं। एक तो आँख पर इतनी उँगलियाँ, दूसरे कजरौटे का काजल, और तीसरे, यह कैसी ठेठ देहाती सज्जा हुई, पुरुष को स्त्रैण बनाने की, सोचता हुआ मैं यह भी सोचने लगा था कि अगर सामान्यतः मेरी शादी होती तो किस तरह से होती? इसके बाद, मैं ज्यादा सोच पाता, इससे पहले कुछ लड़के बड़े सम्मान के साथ भीतर लिवा ले गये थे और इसके बाद जो उन्होंने मेरे साथ किया, उसे भी मैं बिना प्रतिवाद, चुपचाप झेल गया।

हल्दी लगाने की रस्म की शुरुआत, लड़कियों ने ही मेरे हाथों और चेहरे से शुरू कर दी थी, लड़कों ने मेरी कमीज उतार कर, मेरी पीठ और छाती को हल्दीमय बनाया। इसके बाद, काजल लगी मेरी आँखों के नीचे से और हल्दी पुती मेरी देह पर से मेरे सारे कपड़े उतारे गये और निर्वस्त्र कर मुझे नहलाया गया। मुझे लगा कि यह प्रक्रिया मेरी मर्दानगी के परीक्षण का हिस्सा थी और इतनी जोड़ी आँखें मेरे जननांगों पर जमी थीं कि मैंने ही अपनी आँखे बन्द कर लीं और

सम्पूर्ण भावशून्यता में शरण ले ली।

इसके बाद, साफ-शफ्फाफ धोती में लपेट कर मुझे मंडप पर बिठा दिया गया।

जो कुछ भी हो रहा था, उसके बारे में ठीक तरह से सोच पाने की हालत में मैं नहीं था, इतना आप समझ सकते हैं। यह पूरा घटनाक्रम पिछले दो-तीन दिनों का है, जिसमें मेरी कलाई पर घड़ी नहीं थी, सेलफोन गाड़ी में ही ले लिया गया था और इसलिए मेरे पास घंटो का ठीक-ठीक हिसाब नहीं है। अगवा होने वाली रात मुझे काल-कोठरी में सुलाया गया। अगले पूरे दिन मैं उसी काल-कोठरी में बन्द रहा, उसी मार दिये जाने वाले अन्देशे के साथ और ये उस शाम को पता चला कि वह कोठरी इसी खुशनुमा, खुशहाल हवेली के पिछवाड़े में है।

मंडप पर बैठे भी कुछ घंटे बीत चुके थे। वैसे मेरे लिए हर लम्हा पत्थर की तरह भारी था। थकान की सीमा नहीं थी और आक्रोश कभी भी उबलने को तैयार।

लेकिन, एक बार फिर, पंडित के मन्त्रोच्चार, आग की लपटों, धूप की खुशबू और दुनिया की तमाम भलमनसाहत की मदद से, मैं खुद को थामे बैठा था। काफी देर बाद, एक गठरी को लाकर मेरे बगल में रखा गया। माफ कीजियेगा, गठरीनुमा एक लड़की को। अगर वह खुद से चल कर आयी, तो भी मैं देख नहीं पाया, क्योंकि मैं इतना थका था कि बीच-बीच में नींद के हिचकोले ले रहा था।

उसके आने पर कुछ रुनझुन की-सी आवाज हुई थी, शायद वह चल कर ही आयी थी और वह उसकी पायल की आवाज थी। वैसे उसके जरा भी हिलने पर किस्म-किस्म की झंकार-जैसी आवाजें आ रही थीं। उसने पीली साड़ी पहन रखी थी, जिसका गोटेदार किनारा मुझे छू रहा था। और लम्बा लहराता गोटे का ही बना लाल दुपट्टा मेरे घुटनों पर था। मुझे इस तरह की जय माता दी स्टाइल की चुनरी बिल्कुल पसन्द नहीं थी, लेकिन अब उसका एक सिरा मेरी धोती के सिरे से बाँधा जा रहा था और जाने कहाँ से, और जाने क्यों, तीन शब्द बार-बार मेरे गले पड़ रहे थे, या कहिये कि गले में अटक रहे थे– ''हमेशा के लिए''। हमेशा के लिए उसके दुपट्टे का सिरा, मेरी धोती के सिरे से बाँधा जा रहा था। मैं इस खयाल को झटक देना चाहता था, मैं इस चुनरी और धोती और मंडप और सब-कुछ को दूर झटक देना चाहता था। आप समझ सकते होंगे। मैं इस पूरी घटना को लेकर, कोई ठोस निर्णय नहीं ले पाने की स्थिति में था, इतना तो आप समझ सकते होंगे।

तभी पंडित ने हमसे हथेलियाँ आगे करने को कहा। मैंनें यन्त्रवत् अपनी हथेली आगे बढ़ा दी और देखा कि लाल-पीले की तहों के भीतर से लहठी-भरा, मेहँदी रचा उसका हाथ निकला और हथेली बनकर मेरी हथेली के समानान्तर हवा में टँग गया।

''हथेली इनकी हथेली पर रखिये।'' पंडित ने अपनी बात दोहराई। लड़कियों के झुंड से खिलखिलाती हुई एक लड़की आगे आयी और उसने कन्या अर्थात् उसका हाथ, वर अर्थात् मेरी हथेली पर रख दिया।

कई-कई अन्य रस्में हुईं, अग्नि के सात फेरे और अब लगभग सुबह होते होते, रजनीगन्धा की कुछ लड़ियों के नीचे, बेले से सजे बिस्तर पर हम आमने-सामने बैठे हैं। उसने गर्दन इस हद तक झुका रखी है कि चेहरा अब भी छिपा है, लेकिन दिखते हुए कुछ हिस्से से मैं जान गया हूँ कि लड़की बला की खूबसूरत है।

''और कौन है ये शख्स जिससे आप प्यार करती हैं?''

मुझे अपनी आवाज पर भरोसा नहीं हुआ। मुझे तो चाहिए था कि कूद पड़ूँ खिड़की से। लेकिन मैंने ये तक जानने की कोशिश नहीं की, कि खिड़की कितने माले पर है, मैं ठीक-ठीक कहाँ हूँ और अगर मैं कूदा तो मुझे कितनी चोट आ सकती है।

मैं पूरी तरह उसकी साड़ी के पीले रंग में खो रहा था। सरसों के पीले और कच्ची हल्दी के बीच का वह रंग, सस्ते रेशम में भी केसर-सा खिल रहा था। गोटे की किनारी ऐसे चमक रही थी कि मेरा मन हुआ उसे छू कर देखूँ। और मैंने घुटनों के बल सरक कर, दोनों हाथों से उसके सर के ऊपर लटक रहा घूँघट पीछे कर दिया। उसकी सुडौल आँखों से आँसू बह रहे थे। तीखी नाक के नथुने रुलाई की लय में बँधे, फड़क रहे थे। होठ काँप रहे थे। लड़की सचमुच बेहद खूबसूरत थी। मैं उसका चेहरा देखने को कितना भी उत्सुक होऊँ, इतना निष्ठुर नहीं था कि उसके रोने के बीच ही उसका चिबुक अपनी उँगलियों में थाम कर, उसका चेहरा ऊपर कर दूँ।

मैं चाहता था, उसकी रुलाई थम जाए। मैं चाहता था, वह मुस्करा दे। और मैं जाने क्या-क्या चाहता था? अव्वल तो मैं अपने ऊपर विश्वास करना चाहता था। खुद को अचम्भित करते हुए, मैंने फिर पूछा, ''बताइये न, आप किससे प्यार करती हैं?''

''किसी से नहीं।'' उसने तमक कर कहा और तैश में अपना चेहरा ऊपर उठा दिया।

घनी पलकों के नीचे, आँसुओं से डब-डब, मुझे घूरती, दो विशाल, गहरी काली आँखों के मोहपाश में मैं जीवन-भर के लिए बँध गया।

ओह! मैं होश में तो हूँ? क्या मैं ही

बचा हूँ, दुनिया में सारी क्रान्ति के लिए? सबके उद्धार के लिए? 'जानकी हाय! क्या कभी न प्रिया का उद्धार हो सकेगा?'

किन्तु, इस बरबस खींचती काया के प्रति उमड़ते अपने सहज अनुराग को, विराग में बदलने की कोशिश मैं क्यों करूँ? सिर्फ इसलिए कि यह शादी, बिना मेरी इजाजत, बिना मुझसे पूछे, बिना मेरी पसन्द के हुई? लेकिन फिर पसन्द का क्या? पसन्द की लड़की मिल जाए, जरूरी तो नहीं? बन्दूक की नोंक पर थोपी हुई कोई चीज स्वीकारी जा सकती है? क्या ये मुमकिन नहीं कि परिवार वालों की गलती, बदतमीजी और बेअदबी के लिए, इस लड़की को माफ कर दूँ, जो अपने भविष्य के सारे साल अपनी हथेली पर पसारे, मेरे सामने उम्मीद और खौफ के सागर में गोते लगाती, काँपती बैठी है। आत्मसम्मान काजल की एक हल्की-सी रेखा के साथ, गालों पर ढुलक गया है।

जो आकर्षण आत्मा की शान्ति से बँध रहा है, उसमें प्रयास कैसा? ''फिर कहा क्यों?'' मैं उसके बारे में सबकुछ जानना चाहता हूँ।

हम खोये-खोये, घबराये-से, अपने पाँवों के नीचे की जमीन तलाशते हुए-से, कुछ देर एक-दूसरे को गौर से देखते रहे।

दुनिया बदल गयी थी, या कि वही थी? या बदल रही थी, हर पल, अभी, ठीक इस वक्त आधी रात के?

''हम डर गये थे!'' घबराहट में लिपटा, एक वाक्य उसके अधरों से फूटा, जो लाल रँग दिये जाने के बाद, साकेत की उर्मिला के सुग्गे-जैसे लग रहे थे। इत्तफाकन, उसने नाक में मोती पहन रखा था। एक मुस्कराहट की आहट, मेरी आँखों में मुलायमियत की तरह पसरी, लेकिन होठों तक आते-आते रह गयी।

''यह भी है कि पहेलियाँ ही बुझा रही हैं?'' मैंने सोचा और एक अजीब-सा विनोद का भाव, मेरे होठों पर हरकत कर गया।

''किससे डर गयी थीं?'' मैंने लगभग वात्सल्य-भरी आवाज में पूछा। और मुझे लगा कि डरना तो स्वाभाविक ही था।

''सबकुछ से...'' उसने तपाक से उत्तर दिया, ''आपसे, इस शादी से, अपने घर वालों से, ससुराल वालों से...'' वह रौ में बोलती चली गयी और फिर से सर झुका लिया।

''हम सचमुच आप पर बोझ नहीं बनाना चाहते।'' चेहरा फिर उठा, नजरें फिर मुझ पर टिक गयीं।

''तुम्हें क्यों लगता है, तुम मुझ पर बोझ बनोगी?'' मेरे भीतर का सारा मनुष्य उसकी ओर लपका, शायद पुरुष भी, शायद पति भी।

''हमने बिल्कुल नहीं सोचा था, हमारी शादी ऐसे होगी। हमने अपनी सहेली की शादी में बारात को एक घंटे नाचते देखा।'' उसने आव देखा न ताव, अपना चेहरा अपनी हथेलियों से ढँका और सिसक-सिसक कर रोने लगी।

''सोचा तो मैंने भी नहीं था।'' क्या मैं भी रो पाने की बुलन्दी रखता था? मैंने उसकी दोनों कलाइयाँ कसकर पकड़ीं और हाथों को अपने हाथों में भर लिया।

मेरे स्पर्श से उसकी सिसकती हुई रुलाई तेज हो गयी और डर कर मैंने उसे गले लगा लिया। कुछ देर हम एक-दूसरे से लिपटे, सकपकाये, काँपते बैठे रहे फिर लेटकर सो गये। वह न जाने कितनी देर तक रोती रही। उसकी छुवन से मुझे यह एहसास हो रहा था कि मेरा पोर-पोर दुख रहा था। थकान, मेरे ऊपर, नींद क्या, नशे की शक्ल में तारी हो रही थी।

सुबहें पहले भी आयी होंगी। यह अच्छी सुबह थी या बुरी, खूबसूरत या नहीं, शुरुआत या अन्त, मैं चाहता था वह जागे और मुझे बता दे। मैं पहले उठा था। गाँव में चिड़ियों का चहचहाना, मुझे हमेशा बहुत लुभाता है। मेरे उठकर बैठने से उसकी नींद भी टूट गयी थी।

वह हड़बड़ा कर उठी, और आँखें फाड़कर, मुझे इस विस्मय से देखने लगी कि जैसे पूछ रही हो, 'आप कौन?' फिर अगले ही पल, उसके चेहरे का भाव ऐसा बदला कि जैसे मेरे कहने में उसकी जान अटकी हो।

मैं सचमुच मुस्करा दिया। उसके चेहरे पर एक तरावट फैल गयी। ''हम एकदम अभी निकल चलेंगे।'' मैंने कहा, फिर उसकी घबराहट देखते हुए फौरन जोड़ा, ''मतलब जितनी जल्दी सम्भव हो सके।''

मैं रिहा होना चाहता था।

क्या मैं अब भी उसके लिए अजनबी था? क्या वह मेरे लिए अजनबी नहीं थी? क्या वह डर रही थी, यहाँ से निकलते ही, मैं उसे काट कर गटर में तो न डाल दूँगा?

क्या मैं, क्या यह लड़की, क्या मुझे डरना नहीं तो सचेत न होना चाहिए कि यह लड़की कुछ भी कर सकती है? कितनी भी बड़ी साजिश में फँसा सकती है मुझे? क्या यह वह करने के काबिल नहीं हो सकती, जो इसके घर वालों ने किया?

लेकिन हम या तो विश्वास करते हैं या नहीं करते। आँखें या तो बन्द होती हैं या खुली। ये अलग बात है कि इस बालिका, बालिका वधू समान लड़की की गतिविधियाँ, मैं बन्द आँखों से देख-सुन पा रहा था। खतरनाक या आरामदेह? हम या तो निर्णय लेते हैं या नहीं लेते। ये अलग बात है कि कई बार निर्णय लेना ही नहीं होता।

दृश्य की अनुभूति में बह जाना, मेरी

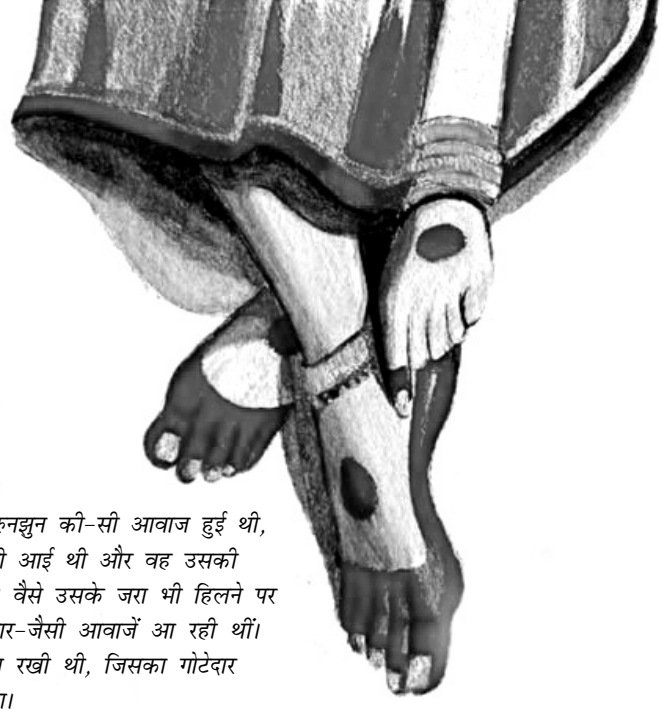

उसके आने पर कुछ रुनझुन की-सी आवाज हुई थी, शायद वह चल कर ही आई थी और वह उसकी पायल की आवाज थी। वैसे उसके जरा भी हिलने पर किस्म-किस्म की झंकार-जैसी आवाजें आ रही थीं। उसने पीली साड़ी पहन रखी थी, जिसका गोटेदार किनारा मुझे छू रहा था।

पुरानी आदत रही। मैंने उसे शह भी दी। कितना सुकून था किसी झरने का होकर रह जाने में। कितना सुकून था एक नन्हे-से मेमने को पत्ते खिलाने में। कितनी राहत, उसे शेर के मुँह से बचा लेने में। शेर हमेशा दिखता कहाँ है? बचाना तो शेर के आने से पहले ही होता है। ये जानते कि बचाते में हमारा भी शिकार हो सकता है।

काश! राहत-रूहअफजा शर्बत का एक ठंडा, कत्थई गिलास मिल जाता तो इस उबलती हुई गर्मी को कुछ चैन पड़ जाता।

दरवाजा बाहर से बन्द था। उस पर दस्तक हुई, वह अचानक खुला और खुल-जा-सिमसिम की ठिठोली करता साली समूह, एक-दूसरे पर गिरता-पड़ता, चाय ट्रे में थामे, उसे इस कदर हिलाता कमरे में दाखिल हुआ कि मैं डर गया, चाय मुझ तक पहुँचने से पहले, पूरी की पूरी ट्रे के हवाले न हो जाए।

सालियाँ इतनी थीं कि दरवाजा जाम था। बाहर की बालकनी में सिर ही सिर दिखाई दे रहे थे। मुझे लग रहा था कि गाँव के रिश्ते में वह हर लड़की जो साली लग सकती थी, फिलवक्त यहाँ मौजूद थी। सबसे अगली पंक्ति में खड़ी लड़की की उम्र पाँच बरस लगती थी। मारे उत्साह के लगता था, वह मेरी गोद में उछल आयेगी।

गाँव के लिए यह एक ऐतिहासिक पल लगता था। आखिर, उन्हें मेरे निर्णय की इत्तला कैसे हो सकती थी? अगर नहीं, तो फिर यह फुलझड़ी-सा उतावलापन क्या सिर्फ यह जानने के लिए था कि दुल्हन ठुकराई तो न गयी?

मैं दरवाजे के बाहर खुली हवा में, कुछ देर अकेला खड़ा होना चाहता था, जो शायद बिल्कुल असम्भव था। शर्बत नहीं तो कम से कम, वह पेय जो मेरे नाम पर लाया गया था, मुझे क्यों नहीं थमाया जा रहा था। मुझे कुछ भी पीने की बहुत जरूरत थी। मैंने निगाहें प्याली पर जमा दीं।

''ये लो जमाई बाबू, हम हुईं कनिया की भाभी।'' प्याली थमाती हुई औरत जाने किस खुशी में दोहरी हो रही थी। भाभी। भाभी होते तुम इतना बड़ा जुआ कैसे खेल सकती थीं? अपने पति को, अपने बहन की सारी जिन्दगी दाँव पर लगाने से रोक न सकीं?

''और बताइये जमाई जी, रात कैसी बीती?''

मेरे चाय थामते ही उन्होंने फूहड़ हँसी के साथ, सस्ता-सा एक सवाल दागा और चाय मेरे हलक में अटक कर सरकने को हुई कि मेरे होठों ने हरकत महसूसी और फौरन बोल पड़े।

''मैं जाना चाहता हूँ...'' मैंने खुद को बोलते सुना और फौरन कहा, ''हम जाना चाहते हैं।''

मैं से हम तक का ऐसा जोखिम-भरा सफर मैंने आज तक नहीं किया।

''कहाँ जाना चाहते हैं जीजाजी? ऐसी भी क्या जल्दी?'' सालियों का समूह मुझ पर टूट पड़ा। हँसी का फव्वारा गाने-बजाने में तब्दील हो गया।

विदाई समारोह, अतिशय लम्बा होता हुआ चलता ही चला जा रहा था। हर कोई बुक्का फाड़ कर रो रहा था। मुझे जिज्ञासा हुई कि ऐसी हृदयविदारक रुलाई अगर विदाई की घड़ी हो रही थी, तो अगर कन्या की विदाई न होती तो क्या होता? जाने क्यों मुझे लगा कि एक मुर्दनी छाती। रुआँसी-सी एक चुप्पी, जिसमें रुलाई भीतर घुटती है। मैंने अनुमान लगाया कि जो स्त्री सबसे अधिक दयनीय ढंग से बिलख कर रो रही थी, हो न हो मेरी पत्नी की माँ थी। मेरी पत्नी उससे अलग होने का नाम न ले रही थी। अपनी पत्नी के करुण विलाप से मुझे अमृता प्रीतम की एक कहानी याद आ रही थी, जहाँ क्रन्दनरत नायिका के भाव समझाती, वे कहती हैं, ''वह उन सुखों के लिए रो रही थी, जो उसे नहीं मिले।''

कन्या के पिता से, अगर मेरी भेंट हुई भी हो तो उन्हें चीन्हने का अवसर न था। मेरे निकट जितने भी पुरुष आये थे,

हट्टे-कट्टे जवान मुस्टंडे थे– गुंडे-सरीखे। बाद में पता चला, कन्या के पिता को कुछ समय पहले ही, लकवे का अटैक हुआ था और वे बिस्तर पर थे। शरीर का समूचा दाहिना हिस्सा लकवाग्रस्त हो गया था। जाने कैसी और कितनी, उनकी चिकित्सा हुई थी। सुना था उनकी आखिरी ख्वाहिश, अपनी इकलौती और लाड़ली बेटी की शादी देखने की थी।

उनकी गाड़ी से रिहा होकर, जब मैं– हम, राज्य परिवहन की जीर्ण-शीर्ण फटेहाल बस में बैठे, तो मुझे लगा, प्रलय अभी खत्म हुआ है, अभी शुरू हुई हैं सृष्टि दुबारा, भयानक घटाटोप के बाद फिर से हवा चली है, दुनिया दुबारा मिली है मुझे।

हवा के झोंकों को हाथ में थाम लेने की इच्छा हो रही थी। इच्छा हो रही थी, खेतों में एक लम्बी टहल के लिए निकल जाऊँ। कम से कम, खिड़की से सिर टिकाकर कुछ देर के लिए घूम आऊँ बाहर से। अनुपस्थित हो जाऊँ, इस चलते हुए वाहन से, जिनमें बस कंडक्टर ठूँसे चला जा रहा था सवारी पे सवारी। हर चौक क्या, हर पान दुकान पर चिल्लाता– ''ऐ जहानाबाद, पटना।''

किन्तु, मैंने लड़की को खिड़की वाली सीट दे दी थी। लड़की! मैं अपनी ही सोच की रेलगाड़ी पर, स्वयं द्वारा पत्नी के अनेक नामकरणों पर रीझ गया। मूँछों के नीचे मुस्कराहट फैल गयी। गाड़ी ने रफ्तार पकड़ी तो मैंने उससे पूछा, ''सुनो, तुम्हारा नाम क्या है?''

''मीरा'' रुआँसी आवाज में उसने कहा।

वह अब भी सुबक रही थी। अगर वह जार-जार भी रोती होती तो क्या मैं उसे दोष दे सकता था? अगर बगेरी-सा धड़क रहा होता उसका दिल, तो क्या मैं समझ न सकता था? लड़कियों का कलेजा यों भी शादी पर धड़कता होगा। लड़कों का भी। क्या मेरा भी धड़का था? धड़क रहा था?

अगर वह डर रही हो, कहीं मैं उसे किसी कोठे पर बेच तो न दूँगा, तो भी मैं समझ सकता था। कोठे पर बेच देने के ख्याल से मैं भीतर तक दहल गया, और उससे छोटी-मोटी बातें करने लगा।

''तुम पहले कभी पटना गयी हो?''

''नहीं, जहानाबाद टाउन गये थे।'' वह इतना ही कह सकी, और वह भी इतनी धीमी आवाज में कि मुझे मुड़कर, सिर घुमाकर उसे सुनना पड़ा।

सिन्दूर की लम्बी लाल रेखा नाक के कोण से शुरू होकर, माथे में कहाँ खत्म होती थी, पता न चलता था। मेरे हिसाब से उसे सिर धोने की बहुत आवश्यकता थी।

मैं हँसने ही वाला था, कि मैंने देखा, नाक की दूसरी तरफ, उसकी नथ भी सर के दूसरे हिस्से में जा मिलती थी। गले में कुछ एक छोटे-मोटे हार थे। हाथों में लाल लहठी के आगे, एक-एक सुनहले कंगन। अगर यह सबकुछ सोना था तो हमारा जहानाबाद शहर से गुजरना भी मुश्किल था।

खैर, हम घर पहुँच गये। शाम की चाय का वक्त था। मैं जैसे ही ऊपर का जीना चढ़, दरवाजे के सामने पहुँचा, कहीं जाते हुए पिता मिले और मुझे देख ठिठककर खड़े हो गये।

अगले ही पल उनकी ठिठकन, खुशी की लहर में बदल गयी। ''बेटा तू आ गया... आह, मैं जी गया। गरदनी बाग पुलिस स्टेशन जा रहा था।'' उनकी आँखें आँसुओं से भर आयीं, और फिर नवविवाहिता के चेहरे पर टिक गयीं।

पिता की आवाज सुनते ही, विक्षिप्त-सी मेरी माँ दौड़ी आयीं और मुँह फाड़े, कहें कि मुँह बाये, दृश्य को हतवाक् देखने लगीं। पल-भर के लिए खामोशी रही, या सम्पूर्ण सन्नाटा, और फिर मैंने देखा, रंग धीरे-धीरे दोनों के चेहरे पर लौटने लगे।

सस्ती गुलाबी बनारसी साड़ी और गोटे वाली उस लाल चादर में सिमटती जा रही, मेरे पार्श्व में खड़ी, किसी देहाती गुड़िया-सी स्त्री, मेरी पत्नी है, मैं चाहता था वे खुद समझ जाएँ।

''बेटा, तू किसी के प्रेम में था, शादी करना चाहता था, हमसे क्यों नहीं कहा?'' माँ बोलीं पहले। और फिर, लगा बोलती जाएँगी, ''हमीं ऐसे पराये हो गये, तेरी शादी में।'' किन्तु पिता ने कहा ''भीतर तो चलो।'' और हम सब अन्दर हो गए।

लेकिन, प्रेम के छुपाने, शादी में न बुलाने का मुकदमा, मुझ पर तत्क्षण ऐसा चला और मैं इस तरह थका था कि मैंने खुलासा कर दिया।

बाद में मुझे लगा, मैं कह सकता था– समय न मिला माँ, मीरा ने फोन किया, उसके घर वालों को पता चल

गया है और वे अभी के अभी, उसके हाथ पीले और मिट्टी पलीद कर रहे हैं, मुझे फौरन एक दोस्त की मदद से, उसे भगाना पड़ा। आनन-फानन में मन्दिर में शादी हुई, उसी दोस्त के घर में हम छिप गये, और दो दिन बाद कोर्ट में रजिस्ट्री होने पर बाहर निकले और सीधा यहीं आ रहे हैं।

वाह, क्या कहानी बना सकता हूँ मैं! और क्या न करने को तैयार हूँ, इस जाहिल-गँवार के प्यार में।

फिर माँ उसके लिबास के बारे में कहतीं, अजीबो-गरीब वेशभूषा के बारे में पूछतीं और मैं कहता– ''जल्दी में दोस्त ने जो इन्तजाम किया।'' फिर माँ जरूर पूछतीं, ''इससे आखिर भेंट कहाँ हुई? तुझे कोई मॉडर्न, पढ़ी-लिखी, अपने टाइप की लड़की नहीं मिली?'' और मैं कहता, ''माँ उसी दोस्त के घर एक रिश्तेदार की शादी में मैं जहानाबाद के एक गाँव गया था, वहीं। फिर मैं जहानाबाद पर, एक शोध करने लगा और एक-दो मुलाकातें और हुईं।''

कमाल, मुझे तो किस्सागो होना चाहिए। प्रोफेशनल स्टोरी राइटर।

मैं हँस दिया। प्यार क्या है? यूनिवर्सिटी के अड्डों की पुरानी बहस का कभी न बदलने वाला मुद्दा था, लेकिन फिलहाल, मैं किसी भी कीमत पर, ऐसी उठाईगिरी की शादियों का अन्त बदलना चाहता था। मैं हमेशा से परम्पराओं को तोड़ना चाहता था। और मैं किसी भी कीमत पर, इस लड़की को कुएँ में नहीं धकेल सकता था।

अब मैं उसके साथ जीना चाहता था। कोई सुनवाई नहीं।

लेकिन, घर में बात तूल पकड़ चुकी थी। माँ बड़े प्यार से समझा रही थी, लगभग फुसफुसाती हुई, ''बेटा, ऐसी शादियों के बाद की चीजों को कचरे का डिब्बा मानकर फेंक देना चाहिए। ये कोई शादी हुई, तू इसे घर कैसे ले आया? हम तेरी अच्छी-सी एक शादी करेंगे।''

पिता कह रहे थे, ''अगर तुम इन्हें स्वीकार लोगे, तो उन्हें सबक कैसे मिलेगा?''

मेरा कुछ-कुछ दिल टूट रहा था और मूड दिलों के जुड़ने का हो रहा था। मैंने उन दोनों से बस इतना ही कहा, ''कई बार हादसों को स्वीकारना होता है। वैसे, ये हादसा नहीं है, मैं इसे हादसा होने नहीं देना चाहता।'' और चल दिया।

आलोकधन्वा के कहे मुताबिक, ट्रेनें अब भी चलती थीं। टिकट तत्काल में मिलते थे। वैसे भी, मेरी छुट्टियाँ खत्म हो गयी थीं और अपनी नौकरी से लापता होना मेरे बूते से बाहर था।

दिल्ली स्थित मेरे वन बीएचके को, मेरी जिन्दगी और दिनचर्या को, जितनी खूबसूरती से, उस देहातन ने सँवारा, मेरी कल्पना से परे था। मेरे ठाठ के दिन थे। मेरे ब्रश करने-भर की देर थी कि चाय हाजिर। हर रोज नाश्ते में नये स्वाद का कोई व्यंजन, खाने का डब्बा वैसा ही लजीज, और रात की थाली का कहना ही क्या! जिसे मैंने ही जिद कर उसके साथ खाना शुरू किया।

मेरे कपड़े, धुले और प्रेस किये मिलते। जूते भी पॉलिश किये हुए, जिन्हें पहनते मुझे हमेशा गिल्टी फील होता। उसका बस चलता, तो खुद मुझे जूते पहनाती भी, उतारती भी। लेकिन ये मेरे लिए, नाकाबिले बर्दाश्त था।

हम साथ टेलीविजन देखते, खबरों पर चर्चा करते। हम। हम– इस शब्द के अभ्यस्त और तलबगार हो रहे थे। धीरे-धीरे, इन दो अक्षरों में एकाकार हो रहे थे।

एक दिन, जब शाम को मैं घर लौटा तो मीरा पड़ोस की एक सहेली से बात कर रही थी– ''अब मैं तो उस सब्जी वाले से कुछ भी खरीदना बन्द कर दी हूँ।'' हम से मैं का सफर, बड़ी खूबसूरती से उसने तय किया था। मैं उत्फुल्ल हो गया। दिल्ली में अनेक किस्मों के मैं बोलने वाले रहते हैं। बंगालियों की मैं, पंजाबियों की मैं से अलग है। दक्षिण वालों की कुछ और प्रकारों की। इतने किस्मों की मैं को समेटे, यह शहर एक अलग तरह के हम की ज्यामिति बनाता है– अनेक सम्भावनाओं से भरी हुई।

मीरा से मैं नियमित अखबार पढ़ने का आग्रह करता, पत्रिकाएँ और किताबें भी। मैंने ही उसे रोज, एक पन्ना नियमित लिखने की आदत डलवाई। और जब मैंने पूछा, क्या वह इंटर के आगे पढ़ना चाहेगी, तो वह खुशी से दोहरी हो गयी।

माँ की बुलाहटें, तेज हो गयी थीं। जब उनकी बहुत अनुनय-भरी चिट्ठियाँ आने लगीं तो एक दिन वाली एक छुट्टी में वीकेंड मिला कर, दो दिन का ट्रिप मैंने बना लिया।

माँ ने खूब स्वागत तो किया पर इस अन्दाज में जैसे बहू के साथ-साथ, मैं भी कोई अतिथि होऊँ। ऊपर से, रिश्ते के उस चचेरे भाई को देखकर मैं उखड़ गया, जो पूरे खानदान में अपनी शैतान-खुराफातियों के कारण फंटूस के नाम से मशहूर था। किसी के भी रखे हुए पर्स से रुपये गायब कर देना, उसके बाएँ हाथ का खेल था।

इस आदमी को हमारे साथ एक छत के नीचे रहने की इजाजत क्यों थी, मेरी समझ से बाहर था। अगर यह अचानक आ भी गया था, तो बड़ी आसानी से इसे चलता किया जा सकता था।

उसके बाद जो घटा, वह एक हादसा था। अगली शाम मैं चौक से टहल कर लौटा तो घर में कुहराम मचा था। लगभग आधा मोहल्ला वहाँ जमा था, और मेरी माँ और पत्नी लगभग गुत्थमगुत्था थीं। माँ

उसे भद्दी, निकृष्टम गालियाँ दे रहीं थीं, और वह यानी मीरा, बित्ते-भर की छोकरी, जिसने पहली ही रात मुझे मोह लिया था, पूरी ताकत लगाकर, टनकदार, जोरदार आवाज में माँ को जवाब दे रही थी, ''देखिये, हम कुछ नहीं किये हैं। फालतू हमारे चरित्तर को दोस मत दीजिये। आप हमको फँसाई हैं।'' मुझे देखकर, उसकी आँखों से जार-जार आँसू बहने लगे। फंटूस की ओर उँगली उठाये, वह चिल्लाने लगी, ''ई आदमी हमारे ऊपर कूदा था।'' फिर चेहरा ढँक बिस्तर पर बैठ असहाय रोने लगी। घबराहट में वह मैं से हम की ओर वापस लौट आयी थी और मुझे लगा ऐसा ही हमेशा होना चाहिए।

मेरे पीछे का घटनाक्रम चाहे जो भी रहा हो, मेरे सामने का घटनाचक्र कुछ इस प्रकार था, कि मैंने ही उसे फंटूस को लेकर सावधान किया था। उसने बाद में मुझे बताया कि सुबह ही छत पर कपड़े फैलाते में, उसने कंकड़, पत्थर, गिट्टी के साथ ईंट के टुकड़े बीन लिये थे और पोटली सिरहाने रख ली थी।

फंटूस पर उसने इनकी बरसात कर दी थी और दीवारों पर घूँसे चलाती, मदद की आवाज लगाने लगी थी। पड़ोसी दौड़ कर आये थे।

माँ के मुताबिक, यह घटनाक्रम कुछ और था, लेकिन मेरे पास उसे सुनने की शक्ति नहीं थी। मेरी आँखें भर आयी थीं, रोम-रोम सुबक रहा था। क्या माँ को हमारा अलग-थलग शान्तिपूर्वक, प्रेमपूर्वक रहना भी गवारा न हुआ? वो क्या चीज थी, जो नाकाबिले बर्दाश्त थी? बचा क्या था, कहने-सुनने को?

अगली ट्रेन से हम लौट तो आये, लेकिन, क्या इस इतनी बड़ी दुनिया में, इतने बड़े परिवारों के बावजूद, हम एकदम अकेले हो गये थे? ❑

मो. 9508936173

❑ **कहानी**

शब-ए-माहताब में

विभा रानी

इस कहानी का कोई दृश्य-विधान नहीं है। न कोई छन्द-बन्ध, न गीतात्मकता, न रागात्मकता। बस एकाध घटनाएँ हैं, घटनाओं के रूपक हैं। अब यह आपकी मर्जी पर है कि आप इस कहानी के हकीकी हालात पर यकीन करें या न करें। वैसे घटनाएँ जो हैं, अपने शीन-काफ के साथ-साथ पान-इलायची की खुशबू सहित ऊपर आईं और कुछ इस तरह से आईं। बहरहाल, आपका कीमती वक्त ज्यादा जाया न करते हुए घटनाओं की तफसील आपके पेशे नज़्र है, चचा गालिब के इस शेर के साथ कि– *गालिब छुटी शराब, पर अब भी कभी-कभी*
पीता हूँ रोज-ए-अब्र-ओ शब-ए-माहताब में।

घटना विधान-1

हिन्दुस्तान बहुत बड़ा देश है, जिसमें बहुत सारे शहर हैं और इन बहुत-से शहरों में बहुत-सी शैक्षणिक अकादमियाँ हैं, संस्थाएँ हैं, संगठन हैं। स्कूल, कॉलेज और

विश्वविद्यालय तो इतने कि उनका किस्सा ही छोड़ दीजिए। देश बड़ा है और जब देश बड़ा है तो देश का साहित्य भी बड़ा है और वहाँ के दृश्य विधान का ताना-बाना यानी कि वहाँ का सिनेमा और साहित्य भी खासा बड़ा है। यह बहस का दूसरा मुद्दा है कि फिल्म बड़ा या साहित्य। शब्दों के उपासक, शब्दों को ज्यादा बड़ा मानते हैं तो दृश्य-बन्ध के चितेरे, फिल्मों को। अपना काम यहाँ महाविद्यालयी लेख की तरह दोनों की तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन नहीं, बल्कि सिनेमा, साहित्य और समाज के आपसी सरोकार को सामने रखना है। तो साहबान, घटना का दृश्य-विधान यह है कि यहाँ, शिक्षा की इस अकादमी में फिल्म और साहित्य पर एक सेमिनार का आयोजन है, जिसमें फिल्म और साहित्य के बड़े-बड़े दिग्गज पधारे हुए हैं। सभी अपनी-अपनी राय दे रहे हैं। कुछ बानगी नीचे है। मशहूर फिल्मकार पूरण जी की बातें मुलाहिजा फरमाएँ–

''तो किस्सा कोताह यह कि सिनेमा का समाज और व्यक्ति से बहुत गहरा सम्बन्ध है। कहा जाता है कि समाज में जो घटता है, सिनेमा उसे अपना विषय बनाता है। हालाँकि लोगों के इस पर भी अलग-अलग मत हैं। कुछ का कहना है कि सिनेमा में हम जो दिखाते हैं, उसका असर समाज पर और खासकर उसकी बुराइयों पर पड़ता है। यह फिर से बहस का अलग मुद्दा है कि सिनेमा समाज का दर्पण है या समाज सिनेमा का। मगर यह तो है ही कि हर व्यक्ति अपने निजी स्तर पर सिनेमा से प्रभावित होता ही है, भले वह उसे सभी के सामने स्वीकारे या न स्वीकारे। सिनेमा को चाहे लाख बुरा कहा जाए, मगर हकीकत तो यह है कि इसके मायाजाल से कोई बच नहीं पाता। हर के जीवन का यह एक अविभाज्य पन्ना है। सिनेमा से हमें एक सोच मिलती है। इससे हम अपने जीवन में बहुत कुछ सीखते हैं।''

अफसर निगार साहब अदब के जानिब से बोले, ''साहित्य की जगह हमारी जिन्दगी में देह में रूह की तरह है। हमारे आस-पास जो घटता है, उसे हम कलाम की जुबान देते हैं। उसे पढ़कर पाठक को लगता है कि यह तो उसके अपने आस-पास की, उसके अपने ही जीवन की गाथा है। लोग कहते हैं कि हकीकत बताने के लिए हालातों को भोगना पड़ता है। तभी सही तस्वीर मुमकिन है। कुछ इसे सिरे से नकारते हुए कहते हैं कि इसके लिए संवेदना के लेवल से उसे ऐसे देखना होता है कि वह आपको अपनी ही आपबीती लगे।''

साही जी ने भी लगे हाथों कह डाला, ''भारत महान देश है। विविधताओं का देश। विविधता में एकता का देश। एक साथ सर्दी-गर्मी, ऊँच-नीच, पहाड़-खाई, हरियाली-सूखा, अमीर-गरीब सब दिख जाते हैं। भारत की गरीबी सभी को लुभाती है। सभी जानते हैं कि इस देश से न तो गरीब खत्म होने वाले हैं न गरीबी। इसलिए कभी सत्यजीत रे ने 'पथेर पांचाली' बनाई तो कभी बिमल रॉय ने 'दो बीघा जमीन'। महान कहानीकार प्रेमचन्द ने भी 'पूस की रात' और 'कफन' जैसी कहानियाँ लिखीं तो उत्तर-आधुनिक काल में मीरा नायर ने 'सलाम बॉम्बे' जैसी फिल्म बना दी और अभी तो सिनेमा में 'स्लमडॉग मिलेनियर' धूम मचा रहा है। 'थैंक यू माँ' भी आ गयी, आगे भी आती जाएगी, देखते रहिए और अब तो भाई साब, वेब सीरीज का जमाना है– 'द फेमिली मैन' का, 'महारानी' का, 'आर्या' का।''

तो साहेबान, इन सबके अलावा और भी बहुत कुछ कहा गया सेमिनार में। सभी को यहाँ उकेरना मुमकिन भी तो नहीं। फिलवक्त आप यह जान लें कि इस अकादमिक संस्था ने 'फिल्म और साहित्य का समाज पर असर' विषय पर दो दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया था। फिल्मों की ऐसी नामचीन हस्तियाँ बुलाई गयी थीं, जो सिनेमा में गम्भीर माने जाते थे और जो साहित्य में समादृत थे। वे आर्ट फिल्मों के भी थे और व्यावसायिक सिनेमा से भी सरोकार रखते थे, बल्कि अब वे सब आर्ट को कॉमर्स में मिलाकर एक नयी ही पेशकश दे रहे थे। फिल्म और टीवी से निकलकर अब वे वेब सीरीज में आ गये थे। चूँकि साहित्य पढ़ते थे, इसलिए सिनेमा में उसकी बारीकियाँ भी ले आते थे। नतीजन, उनकी फिल्में न तो आम फॉर्मूला फिल्में होती थीं और न ही तथाकथित कला-सिनेमा। इन आमन्त्रित मेहमानों में सभी केवल निर्माता-निर्देशक ही नहीं थे, कुछ गीतकार भी थे और लेखक भी थे। पत्रकार से फिल्म-लेखक और निर्देशक बने आज के युवा रंगरूट भी।

वैसे तो हिन्दुस्तान में आज भी सिनेमा को गम्भीरता से लेने का चलन नहीं है, फिर भी सिनेमा की दुनिया से ये लोग आ जाते हैं, क्योंकि इन्हें खुद को समाज का सरोकारी कहलाना, बुद्धिजीवी कहलाना अच्छा लगता है। उन लोगों का मानना था कि ''अच्छे-अच्छे भद्र और सज्जन कहे जाने वाले लोग अपने मन में सिनेमा के प्रति एक नॉस्टेल्जिया पाले रखते हैं, मगर सिनेमा के नाम पर ऐसे नाक-भौं सिकोड़ते हैं, जैसे किसी ने उनके माँ-बाप की मौजूदगी में पोर्नो-साहित्य उघाड़कर रख दिया हो। ऐसे लोग फिल्मों के नायक-नायिका के प्रति आकर्षित होते हैं, उन्हें करीब से देखना चाहते हैं, उनसे संवाद स्थापित भी करना चाहते हैं, मगर प्रकट में बिसूरते नजर आते हैं कि सिनेमा

तो भई बहुत खराब चीज है। छीह जी! उन्हें इनके तारों-तारिकाओं से कोई मतलब नहीं। वे तो इनमें से किसी को पहचानते भी नहीं हैं। इनकी कौन-कौन-सी फिल्में हैं, इन्हें यह भी नहीं पता। असल में सिनेमा के नाम पर ये सब समाज में जहर, गन्दगी, अश्लीलता फैलाने का काम करते हैं। ऐसे लोग रहें अपने घर, मेरी नजर में उनकी कोई कीमत और हैसियत नहीं।''

इसलिए ऐसे लोगों को शिक्षित करने, लोगों में फिल्मों के प्रति एक सकारात्मक जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से वे सब इन सभा-सेमिनारों में आ जाते।

कमर्शियल फिल्मों के लोग बुलाये जाने पर भी नहीं जाते। किसे पड़ी है समाज और लोगों को देखने की! उतनी देर में चार सीन शूट कर लिये जाएँगे, दो की डबिंग हो जाएगी, एक का गाना रिकॉर्ड हो जाएगा। इन उबाऊ सेमिनारों में जाकर क्या होगा, जहाँ लाइन में लगकर खाना लो, सस्ते होटल में टिको और मानधन के रूप में पाँच सौ-हजार का लिफाफा थाम लो। वहाँ तो ऐश्वर्य गुलाब जल की झड़ियों और दूध के फुहारों से नहाता रहता है। वहाँ पाँच और सात सितारा होटल होते हैं, कॉकटेल-डिनर होता है, इसके अलावा भी बहुत से लिखित-अलिखित, घोषित-अघोषित काम होते हैं, जिन्हें लिखा-पढ़ा नहीं, केवल समझा जाता है।

साहित्य से भी बड़े-बड़े नाम बुलाये गये थे। वे लोग, जिन्होंने अपने मूल गद्य-पद्य लेखन के साथ-साथ दृश्य-श्रव्य माध्यम में भी काम किये हैं, नाटक लिखे हैं, फिल्में लिखी हैं, सीरियल लिखे हैं, डॉक्यूमेंट्री लिखी हैं। फिल्म वालों के लिए यह मानक नहीं था कि उन्होंने कितना साहित्य लिखा है या पढ़ा है, लिखा भी है या नहीं।

अवन्तिका जी साहित्यकारों की इसी श्रेणी में से एक थीं। उनसे पहले दो साहित्यकार अपनी-अपनी बातें बोलकर बाहर निकल गये थे और बाहर लगे चाय-पान पर हाथ साफ कर रहे थे। वे अभी भी अपने कथन के मोह से नहीं छूटे थे और बार-बार चाय की घूँट और पान की पीक के साथ अपने कथन को किसी न किसी बहाने सामने ले आ रहे थे। अवन्तिका जी का नाम पुकारे जाने पर वे सभी उठकर बाहर आ गये थे। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं था कि उन्हीं का एक साथी मंच पर अपनी बात रख रहा है। नाम की घोषणा सुनकर वे मुस्काये और बाहर की ओर निकल लिये।

लेकिन अवन्तिका जी को इससे कोई मतलब नहीं था। वे यहाँ बोलने के लिए बुलायी गयी थीं, इसलिए उनके मुख्य टार्गेट यहाँ के लोग थे, ये लेखक नहीं, जो उनका नाम सुनकर मुस्कराते हुए चाय-पान पर निकल लिये थे। इन साहित्यकारों की हैसियत वे खूब-खूब जानती थीं, इसलिए उनके बाहर निकल जाने का मलाल उन्हें तनिक भी नहीं हुआ था। उन्हें यहाँ के लोगों के बीच अपने आपको सार्थक बनाना था। इसलिए वे इतने जोश में इस तरह बोल रही थीं कि फिल्म, साहित्य और शिक्षण सब एकमेक हो गये थे।

वह एक शैक्षणिक संस्थान था, जहाँ अब तक के दुत्कारे विषयों– फिल्म, टीवी, नाटक को भी सिलेबस का विषय बनाने का प्रस्ताव चल रहा था। फिल्म इनमें प्रमुख थीं। प्रस्ताव रखा जाना था, पारित होना था। मगर इसके पहले की कार्यशाला जरूरी थी– लोगों का मन टटोलने के लिए। जेबें खँगालने के लिए, सपनों को ओढ़ने-बिछाने के लिए। संस्थान भावी निर्माता, निर्देशकों, लेखकों, गीतकारों के निर्माण की योजनाओं से लबरेज युवाओं से भरा हुआ था। उनकी आँखों में कुछ कर पा लेने के कुँवारे सपने तैर रहे थे। वे सपने उनकी आँखों से उतर कर धीरे-धीरे उनके पूरे तन और मन में फैलते और समाते हुए एक सुरूर और जुनून पैदा कर रहे थे। सपनों से भरे इन तन और मन का उपयोग कहाँ और कैसे किया जाए, यह बात उन्हें भीतर से परेशान कर रही थीं। इन सपनों में फिल्मों के दृश्य विधान तो थे ही, वे उससे उत्तेजित भी थे और उस रास्ते जाना भी चाहते थे। ऐसे में अवन्तिका जी का साहित्यिक उछाह उन्हें कोई उत्साह नहीं प्रदान कर पा रहा था। फिर भी, संस्थान का दबाव और अपनी शालीनता के मारे वे सब अवन्तिका जी के जोश के बराबर के भागीदार बने हुए थे।

ऐसा नहीं था कि अवन्तिका जी को बोलना नहीं आता था। वे लगभग साठ वर्षीया स्थूलकाय महिला थीं। जरी बॉर्डर की सिल्क की साड़ियों के प्रति इस उम्र की महिलाओं की कोई खास सनक होती है। उसी कपड़े का जरीदार ब्लाउज पर्याप्त एसी और पंखे के बावजूद उनके बदन से बुरी तरह चिपक गया था। कसे ब्लाउज से माँस हर तरफ से बाहर निकल पड़ने को बदहवास था। साड़ी का पल्लू पिनअप न करना भी इस उम्र की महिलाओं की एक सनक होती है। इससे साड़ी बार-बार कन्धे से नीचे खिसक जा रही थी, जिसे वे लापरवाही से अपने कन्धे पर फेंक देतीं। इस लापरवाही से उनके बदन की स्थूलता और उजागर हो जाती।

सौन्दर्य के पान में उम्र और देहयष्टि का बहुत बड़ा हाथ रहता है। लिहाजा, इस उम्र के स्थूल सौन्दर्य को देखने का माद्दा किसी में भी न था। न मौसम गर्म था, न एसी बन्द, फिर भी पसीने से

लथपथ अवन्तिका जी की सिन्दूर से लगाई बिन्दी माथे पर फैल गयी थी। दिन की इस बुरी गर्मी में जाने क्या सोचकर उन्होंने लाल लिपिस्टक लगा रखी थी जो गर्मी, उमस और पसीने के मिले-जुले हमले से इधर-उधर फैल गयी थी। जूड़े से निकले बाल इधर-उधर बिखरकर उन्हें भी बड़ा बेतरतीब बना रहे थे। लम्बी और स्थूलकाय होने के कारण चलते वक्त वे किसी वेगवान पहाड़ की तरह लगतीं।

सेमिनार चल रहा था। वक्तागण अपनी-अपनी बारी से बुलाये जा रहे थे। तालियों और पुष्पगुच्छ से उनका स्वागत होता। पुष्पगुच्छ तो प्रबन्धन के हिस्से का था, इसलिए वे सभी एक से थे, मगर तालियाँ सबकी अपनी थीं, सो अपनी ध्वनि से वह वक्ताओं को उनकी औकात बता दे रही थीं। साहित्य के बाद बारी थी फिल्मी हस्तियों की। इसमें भी पुष्पगुच्छ और तालियों का अन्तर वैसा ही बना रहा। पुराने खिलाड़ियों को अपने होने और अपने बोलने की कला पर बड़ा नाज था। अपने लिए बजी तालियाँ उस समय तक उन्हें पुरसकून कर रही थीं। मगर जब तालियाँ फिल्म उद्योग के दो नये व युवा निर्देशकों प्रशान्त व मनन पर बजनी शुरू हुईं तो पुराने लोग भौचक हो अपने विषय और खुद को भूल गये। उनको देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे वे कह रहे हों– माटी कोड़ी हमने, निकौनी की हमने, बीज बोये हमने, खाद पटाये हमने और अब साहूकार की तरह खड़े-खड़े फसल ले जा रहे हैं ये नामुराद!

नये निर्देशक मनन ने कहा– ''मैं उतना ही करता हूँ, जितना अपने तईं जान-समझ पाता हूँ। फिल्म बनाना मेरा शौक भी है, पागलपन भी और रोटी-रोजी का जरिया भी। फिल्म मेकिंग एक तकनीक है और बदलते समय के साथ इस क्रिएटिव तकनीक में जैसा ठीक समझता हूँ, करता हूँ। हर बार एक नया मुहावरा गढ़ने की कोशिश करता हूँ। मैंने देश के महान साहित्यकार की एक अमर कृति के ऊपर फिल्म बनाई। पिछले पचास सालों में यह चौथी बार बनी है। तब से आज का समय बहुत बदला है। मैंने तो बल्कि कुछ किया ही नहीं। मैं तो बस अपनी माँ से पूछता था कि आज के समय में यह हीरोइन क्या करती? शराबी प्रेमी को पाना चाहती? शादी कहीं और हो जाने के बाद भी प्रेमी से सम्बन्ध बनाये रखना चाहती? माँ ने अपना समय भी देखा है, मेरा समय भी देखा है और आज का भी देख रही हैं। सो वह जैसा-जैसा कहती गयीं, मैं वैसे-वैसे फिल्माता गया। अब आपको कुछ पूछना है तो मेरी माँ से पूछिए। यह मेरी नहीं, मेरी माँ की फिल्म है– पुरानी पीढ़ी की नये चश्मे से देखे गये नजरिये की फिल्म।''

प्रशान्त ने कहा– ''मैंने शेक्सपियर को पहले कभी पढ़ा ही नहीं था। एक बार मुझे उनके नाटकों के सारांश मिले दो-ढाई पन्नों के। पहले मैंने उन्हें पढ़ा। इंटरेस्ट आया। फिर एक बार उनका नाटक पढ़ने के लिए लिया तो सबकुछ सर के ऊपर से गुजर गया। पहले तो उनकी भाषा ही समझ में नहीं आयी। फिर मुझे एक ऐसी किताब मिली, जिसमें एक ओर शेक्सपियर की जबान और दूसरी ओर आज की अँग्रेजी में उसका अनुवाद था। मैंने उन्हें पढ़ा और इस तरह से उनका साहित्य मेरे मानस पर छाया। लेकिन अपनी फिल्मों में मैंने उन्हें जस का तस नहीं लिया। उन्हें भारतीय रंग-ढंग में ढाला, पकाया– पात्र, चरित्र, नाम, वेश-भूषा, पृष्ठभूमि– सबकुछ। भारतीय दर्शकों को आप भारतीय मूल में ही रचा-बसाकर चीजें दिखायेंगे तो उसे अपने साथ एकाकार कर पायेंगे। ऐसा ना करने पर फिल्म बैठ जाएगी और जब एक प्रोजेक्ट बैठता है तो अन्य पर भी उसका असर आता है। फिर दर्शकों की तो छोड़ ही दीजिए, मैं खुद ही अपने-आप में सहज नहीं रह पाऊँगा तो मेरा काम कैसे सहज हो पायेगा?''

ऑडीटोरियम की छत उड़ने तक तालियाँ बजती रहीं। प्रशान्त ने बड़ी मासूमियत से कहा– ''मैं आपको बड़ा भोला-भाला दिखता हूँ न! मेरी शक्ल ही ऐसी है। क्या कीजियेगा? जब बच्चा था तो इस शक्ल के कारण मेरी बदमाशियाँ भी दूसरों के हिस्से चढ़ जाती थीं। अपनी भोली और मासूम शक्ल के कारण बचपन में मार भी कम खायी और कुछ काम भी मिल गये, कुछ गाने भी गाये। मगर आपको बताऊँ, भीतर से बड़ा हिंसक हूँ मैं। मार-धाड़, खून-खराबा देखना खूब अच्छा लगता है मुझे और वही पर्दे पर दिखाता भी हूँ, लेकिन तनिक संवेदनशीलता के साथ, ताकि आप खून बहता देखें तो जुगुप्सा से अपनी आँखें बन्द न कर लें, बल्कि उसके भावों को समझते हुए खून की धार देखने को विवश होते रहें।''

पुरानी पीढ़ी के पूरण जी, जलाल साहब, साही जी सभी अकबकाये बैठे रहे और प्रशान्त व मनन ने सभी का जी चुरा लिया। इनमें से किसी ने भी अपने व्याख्यान में अपनी मेकिंग नहीं सिखाई थी, अपना लेखन नहीं बताया था। बस, समाज के साथ अपने और अपनी फिल्मों के सरोकार बताते चले गये, बड़े व्यवहारिक तरीके से। अकादमिक सैद्धान्तिक बातों से कोई प्रभावित नहीं होता, यह इन दोनों को सुनने के बाद उन लोगों को महसूस हो रहा था। पूरण जी पोडियम पर से श्रोताओं की भंगिमाएँ देख चुके थे। जब कभी कोई उनसे साक्षात्कार करने जाता तो अपने साक्षात्कार

में वे बड़े ऐंठे रहते। उन्हें लगता कि सभी उनकी बौद्धिकता के नीचे के हैं। मन या मूड ना हो तो किसी के सवाल का जवाब भी नहीं देते या ऐसे देते कि पूछने वाला वहीं कटकर रह जाए। नया बन्दा हो तो आगे कुछ पूछने या उनके जवाब पर कन्फ्रंट करने की ताब ही न ला सके।

पुरानी पीढ़ी वालों ने साहित्य में भी अपनी पैठ बना रखी थी। पूरण जी कहानियाँ लिखते, जलाल साहब गीत और साही जी गद्य-पद्य दोनों। बोलते वक्त इन लोगों ने अपनी-अपनी रचनाएँ उद्धृत कीं और कहा, ''लोग अब पढ़ने से बचना चाहते हैं, लेकिन लोगों को हिन्दी और भारतीय भाषाएँ पढ़नी चाहिए। उनमें बहुत-सी बातें हैं। बेहद रस है, अनेकानेक तत्त्व हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनसे जुड़ना अपने-आपसे जुड़ने-जैसा है।''

यह दूसरी बात थी कि इनमें से खुद ही कोई भारतीय साहित्य नहीं पढ़ते थे। लिखना उनकी मजबूरी थी और अपने लिखे को जस्टीफाई करना दूसरी विवशता। जलाल साहब को तो हिन्दी आती ही नहीं थी, वे उर्दू या रोमन में लिखते। साही जी कभी-कभी अपनी मादरी जबान में लिखते। मगर पढ़ते सभी विदेशी साहित्य ही थे। फिल्में भी देखते तो विदेशी। उनके आदर्श अभिनेता-अभिनेत्री भी थे तो विदेशी। यह बात दूसरी थी कि जिक्र छिड़ने पर मोतीलाल से मधुबाला और अब माधुरी दीक्षित से लेकर दीपिका पादुकोण तक का नाम बड़े फख्र से आ जाता। मगर हकीकत में वे सब उनके आदर्श नहीं थे। वे सब फिल्में भी बनाते तो विदेशी फिल्मों की नकल करते या फिर विदेशी साहित्य से कथानक उठाते। यह उनके लिए आसान होता, क्योंकि ये साहित्य उन्हें अँग्रेजी में लिखे हुए मिल जाते। भारतीय भाषाओं को पढ़ने का वक्त उनके पास कहाँ था? वो सब उन्हें या तो उस जबान में पढ़ने पड़ते या हिन्दी में और इंडस्ट्री में हिन्दी का हाल किसी से छुपा हुआ नहीं था। यहाँ फिल्में तो हिन्दी में बनती थीं, मगर सारा कारोबार अँग्रेजी में होता था। पहले केवल कथानक, स्क्रीन-प्ले आदि अँग्रेजी में लिखे जाते थे, अब संवाद रोमन में लिखे जाने लगे थे, ताकि अँग्रेजी पढ़े-लिखे अभिनेताओं-अभिनेत्रियों को दिक्कत ना हो। हिन्दी पढ़ना कितना मुश्किल काम है, ओह, शिट!

अफसर निगार साहब 'साहित्य और उसके जन सरोकार' पर बोल कर हट गये। अब बारी अवन्तिका जी की थी। अपने वक्त की वे महिला लेखन का एक प्रमुख स्वर थीं। एक बार उन्होंने किसी सरकारी संस्थान में चल रहे स्त्री-शोषण पर एक कहानी लिख क्या दी, वह उनके लिए गले की हड्डी बन गयी। इतने पत्र उनके खिलाफ छपे और सभी इसी आशय के कि सरकारी संस्थानों में ये सब नहीं होता, जबकि अवन्तिका जी सहित कइयों का मानना था कि ऐसे शोषण और टॉर्चर कहाँ नहीं होते? इसमें सरकारी क्या और गैर सरकारी क्या! और यह कहानी तो सच्ची घटना पर आधारित थी। शुक्र था कि उन्होंने किसी सरकारी संस्थान का नाम नहीं दिया था, वरना वह संस्थान कुछेक करोड़ की मानहानि का दावा तो ठोक ही देता। पीड़ित या पीड़िता सामने तो आते नहीं और कुछ स्वीकारते भी नहीं। संकट में पड़ जातीं अवन्तिका जी।

एक तो पता नहीं क्यों, किसी भी महिला लेखक को महिला विषय ही पकड़ा दिया जाता है। अवन्तिका जी को यह कतई पसन्द नहीं था, मगर आयोजन की भव्यता और आने वाले फिल्मी लोगों के नाम ने उनसे मंजूरी दिलवा दी। लेखक बिरादरी को तो वे जानती-पहचानती ही थीं। फिल्म वालों और सभी नामचीन हस्तियों से उनकी बात-मुलाकात होगी, यह उन्हें भीतर ही भीतर खुश कर रहा था। अपनी समय-सीमा में वे बड़े गुरुतर अन्दाज में बोलीं, हालाँकि पसीने से सिन्दूर की बिन्दी लिभर गयी थी और स्लीवलेस ब्लाउज बदन से चिपक गया था। बिना पिन का पल्लू बार-बार सँभलने की बजाय नीचे गिर जा रहा था।

यह सितारों की महफिल थी जिसमें हर सितारा दूसरे के मुकाबले ज्यादा चमकना चाह रहा था। जलाल साब ने अपनी उर्दूनुमा हिन्दी से समा बाँध दिया। हालाँकि उनकी ऊँची क्लास वाली उर्दू कइयों की समझ में नहीं आई, मगर जहाँ-जहाँ वे जरा भारी-भरकम उर्दू बोलते, वहीं-वहीं जोरदार तालियाँ पड़ जातीं। पूरण जी ने चुटकी ली– 'मान गये मुगले आजम।' जलाल साब मुस्कराकर रह गये। मनन का बचपन छोटे से कस्बे में बीता था। उसे याद आया कि उसके कॉलेज के किसी कार्यक्रम में एक वक्ता अँग्रेजी में बोल रहे थे। हर दो-तीन मिनट के बाद तालियाँ बज जातीं। तब मनन की अँग्रेजी भी वैसी ही थी। वह भी सभी के साथ तालियाँ बजा देता। बाद में प्रिंसिपल और डीन ने छात्रों को वो झाड़ पिलाई कि बस! वक्ता महोदय का चेहरा ताली पर खिलने की बजाय सूख जाता। प्रिंसिपल साहब ने ताली का हर प्वायंट नोट कर रखा था और छात्रों को बताया था कि किन-किन संजीदा जगहों पर विद्यार्थियों ने तालियाँ बजायी थीं।

फिर भी भीड़ जुटी थी नये निर्देशकों प्रशान्त और मनन के संवादों पर। सेमीनार के बाद भीड़ दिखी तो उन्हीं दोनों के पीछे। नयी उम्र के निर्देशक, नयी धूप के बच्चे। कोई ऑटोग्राफ ले रहा था तो कोई

मिलने का समय माँग रहा था, कोई उनके साथ काम करने का इच्छुक था तो कोई कैरियर बनाने के लिए मुम्बई आने की बात कर रहा था।

घटना विधान-2

हिन्दुस्तान के मेले-ठेले, सभा-सेमीनारों में दिन और रात का बड़ा अन्तर होता है। यह केवल सूरज-चन्दा के उगने-ढलने से होनेवाला समय– परिवर्तन नहीं है। समय– परिवर्तन के साथ-साथ इसमें मन-मिजाज, दिल-दिमाग सभी का बदलाव होता है। दिन की सारी ऊर्जा रातों में बरसते शबनम से भीगती ओसों तक पहुँचकर लबों के सूखे और गीलेपन की दास्तान कहने लगती है। कहने– न कहने का भेद यहाँ खत्म हो जाता है। जो उद्‌गार दिन के उजाले के भय से मन में छुपे रह जाते हैं, वे सभी रात की सनीली रोशनी में पारे की तरह बह-बह कर निकलने लगते हैं।

प्रशान्त और मनन के सामने सभी फिल्मीदाँ और साहित्यकार चुके हुए लग रहे थे, मगर यह चुकना दिन के उतरने के साथ-साथ दिमाग से भी उतर गया और चढ़ती रात की तरह अपनी बीती हुई जवानियाँ अपने पूरे जोश-ओ-खरोश के साथ ऊपर तक बलबलाकर बह जाने को आतुर होने लगीं।

रात की पार्टी डीन की ओर से आयोजित थी। बेहद सीमित व खास-खास लोग आमन्त्रित थे। सभी अपने-अपने दिन के लिबास उतारकर नये लिबास में आ गये थे। सुबह से कम संजीदा, चेहरे पर आरामतलबी के भाव, एक-दूसरे को मन-ही-मन देखने-परखने के लिए आतुर निगाहें। प्रशान्त व मनन दिन की ही तरह चुप थे। दिन में भी माइक के अलावा वे बेहद कम बोले थे। दरअसल उम्र व अनुभव के लिहाज से इन सभी वरिष्ठों के बीच वे दोनों बेहद छोटे थे, तनिक मिसफिट भी। शायद इसलिए वे कुछ ज्यादा ही खामोश थे। वैसे तो दिन में पूरण जी, साही जी और जलाल साब भी अपने-अपने वक्तव्य के अलावा अधिक नहीं बोले थे। केवल अवन्तिका जी ही बेहद बोली थीं। मगर अभी सभी शैम्पेन की बोतल की तरह खुल गये थे। सभी के भीतर का सारा झाग एक उफान के साथ बाहर निकल पड़ा था। अवन्तिका जी दिन की तरह ही अभी भी खूब बोल रही थीं। शायद यहाँ मौजूद एकमात्र महिला बुद्धिजीवी की ठसक हो। बाकी लोग भी ग्लास के गरारे के साथ खुलते जा रहे थे। सर्किल अत्यन्त क्लोज्ड, छोटा, खास और सीमित था, लिहाजा ग्लास थामने में अवन्तिका जी को कोई परेशानी नहीं हुई।

मगर मुश्किलें उसके बाद शुरू हुईं। पता नहीं, उन्हें प्यास लगी थी या वे खुद को बेहद गुरुतर, विश्वस्त व आश्वस्त दिखाना चाह रही थीं कि एक ही साँस में पानी के ग्लास की तरह गट-गट करके पूरा ग्लास खाली कर गयीं। नतीजतन, वो हुआ जो नहीं होना चाहिए था। जितनी तेजी से ग्लास खत्म हुआ था, उतनी ही तेजी से उसने अपना काम शुरू भी कर दिया। अवन्तिका जी झटके से उठीं और अपनी तरंग में आकर अपने समय में डूब गयीं– ''यू नो, जब हमारी कहानी 'समय-संसार' में छपी थी, तो दो सौ अड़सठ चिट्ठियाँ आयी थीं।''

जलाल साब ने गम्भीर मुख और बन्द हास्य से पूछा– ''फिर? आपने सभी के जवाब दिये?''

''ऑफ कोर्स। इतने प्यार से पाठकों ने लिखे थे।''

''फिर तो आप उन्हीं पत्रों और अपने जवाबों को इकट्ठा करके छाप देतीं तो एक मुकम्मल रचना हो गयी होती।''

''यस, यू आर राइट। पर तब दिमाग नहीं चला।''

''तो अभी चला लीजिए। देर आये, दुरुस्त आये। वे खत तो जाहिराना तौर पर आपके पास होंगे ही।''

''बिल्कुल हैं। मैं सभी फैंस के पत्र बहुत सँभालकर रखती हूँ।''

''तो आप फिर से उन खतों की इबारत नये सिरे से पढ़ें, उनके जवाब लिखें और छपवा लें। वैसे भी, आपको दिक्कत नहीं होगी। एक तो आप खुद ही इतनी नामचीन राइटर हैं और दूसरे आपके शौहर साहब भी तो...''

''नाम मत लो हरामजादे का। अरे, जब प्रेमचन्द ने शिवरानी को राइटर नहीं बनने दिया तो आज का साला हरामी राइटर, एडिटर अपनी वाइफ को कैसे राइटर बनने देगा?''

''तो फिर आप कैसे बन गयीं? आपके शौहर तो माशा अल्लाह, राइटर, एडिटर दोनों हैं और खुदा के फजल से मशहूर भी खूब हैं।''

''अपने बलबूते पर। मैंने भी जिद खा ली कि बास्टर्ड की पैंट ना उतार दी तो मेरा नाम भी अवन्तिका शर्मा नहीं।''

''वैसे केवल नाम शर्मा है, शर्माती बिल्कुल नहीं हैं।'' अफसर निगार साहब ने जोड़ा।

जलाल साब कुछ और छेड़खानी के मूड में थे। यही वह वक्त होता है, किसी भी नामचीन के बारे में वह सबकुछ जानने का, जिसका पता आमतौर पर लोगों को नहीं होता। दिन और रात का फर्क, पानी और शराब के ग्लासों का अन्तर इन परतों को उधेड़ने में अहम भूमिका निभाता है। इंसान की वो खासियतें, जो उसकी जाहिराना खुसूसियतों के पीछे दबी होती हैं, मगर जिनकी परतें मुजरे की तरह लुभावनी और रसीली होती हैं। सबको अच्छा लगता है, जब वे वेश्या के

कपड़ों की तरह परत-दर-परत उतरती हैं। अवन्तिका जी के मुँह से ऐसी बातें सुनना पूरण जी को अच्छा नहीं लगा, लेकिन पता नहीं पूरण जी क्यों गम खा गये। अवन्तिका जी के शौहर की तथाकथित पैंट उतरने में शायद वे कुछ अपना भी नजारा कर चुके थे या क्या कि वे जलाल साब को दूर खींचकर ले गये। फुसफुसाते हुए बोले– ''यार, दूर रहो इस मोहतरमा से। देख नहीं रहे, किस बुरी तरह से चढ़ गयी है। पता नहीं ये खालाओं की खालाएँ पीने क्यों बैठ जाती हैं, जब खुद को सँभालना नहीं आता।''

अवन्तिका जी ने जाने कैसे उस फुसफुसाहट में भी खाला शब्द सुन लिया। वे वहीं से हाथ लहराती बमकीं– ''किसे खाला बोला रे? साले सब के सब।''

अब पूरण जी ताव खा गये। बेवजह वे क्यों गाली सुनें? हिन्दी के इन राइटरों की बिसात ही क्या? चवन्नी छाप सब कम्बख्त। दिन-रात एक स्क्रिप्ट हाथ में थामे तरसती नजरों से देखते रहेंगे कि कोई इनके लिखे के ऊपर फिल्म बना दे। खुदा ना खास्ता किसी ने फिल्म बना दी तो अपने-आपको अक्षर-ब्रह्म समझने लगते हैं। फिल्म बनने तक खुद में बल खाते रहेंगे और जरा-सी चर्चा हुई नहीं कि निर्देशकों को लाख लानतें-मलामतें सुनाना जारी कि कैसे हमारी स्क्रिप्ट के साथ छेड़छाड़ की गयी है, कि कैसे उनके नाम को भुनाया गया, कि कैसे कथानक के मूल स्वर को बदल दिया गया है और इन सबसे बचने के लिए जरा कुछ हरे पत्ते पकड़ा दें, सब के सब खामोश खरगोश! कभी भूले-भटके स्क्रिप्ट पकड़ ली तो पीछे से जिद कि संवाद तो वही लिखेंगे। अरे, जब इतना बड़ा उपन्यास लिख सकते हैं तो संवाद क्यों नहीं और उसमें भी फिल्मी संवाद। रखा ही क्या है इसमें... और यह औरत? हिन्दुस्तानी औरतें ऐसी ही होती हैं? ऐसी औरतें भारतीय नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं? लानत है! अब तक तो मैं इनके पति पर तरस खा रहा था, लेकिन यह साली खुद ही अपने कपड़े उतरवाने लायक काम कर रही है। दिन-भर तो पल्लू गिराती ही रही है। पता नहीं, किसको क्या दिखाना चाह रही थी। यार ऐसे बूढ़े, भद्दे, बेडौल जिस्म को कौन अहमक देखना चाहेगा? मगर इसे तो लगता है, यह अभी-अभी खुदा के दरबार से हुस्न की परी बनकर उतरी है। कहो तो कर दूँ इनके रहे-सहे चीर का भी हरण?

अब जलाल साब की बारी थी। वे पूरण जी को दूसरी ओर ले गये। साही साहब भी उन दोनों की ओर खिसक लिये। गुस्से में पूरण जी के मुँह से वो सब गालियाँ निकलती रहीं, जिन्हें यहाँ लिख दिया जाए तो बगैर कुछ सोचे-समझे इस अदना-से लेखक पर पाठकगण पिल पड़ें। इसलिए खुद ही अपने मन से ही इनको गुन-समझ लें। पूरण जी और जलाल साब के बीच में फँसे साही जी भी आखिरकार उलट ही गये... ''साली, कुतिया की औलाद...।''

अफसर निगार साहब अदब और अदीब की इज्जत और नफासत को समझते हुए अवन्तिका जी को समझाने लगे– ''आपकी तबीयत ठीक नहीं लग रही है। कहें तो आपको आपके कमरे में छोड़ आऊँ?''

''क्यों छोड़ोगे कमरे में? और छोड़ोगे थोड़े। वहीं चिपक जाओगे और प्रेम की भीख माँगने लगोगे। याद है, अलीगढ़ में कैसे पिटते-पिटते बचे थे?''

प्रशान्त और मनन अचानक ठठा पड़े। अफसर निगार साहब खिसियाकर रह गये। इतना ही बोले– ''होश में नहीं हैं बिलकुल।''

डीन साहब खामोश खड़े थे। उनके लिए यह पूरा माहौल नया था। फिल्म वाले तो ऐसे होते हैं, वैसे होते हैं, उन्होंने सुन रखा था। इन सुनी-सुनायी बातों के

आईसेक्ट पब्लिकेशन

मगर शेक्सपियर को याद रखना
कहानी-संग्रह
संतोष चौबे
मूल्य 250 रु.

संतोष चौबे समकालीन हिन्दी कथा-जगत के ऐसे विरले नागरिक हैं, जिनके पास विषय और शिल्प के वैविध्य के साथ, भाषा के अवचेतन में छुपे सत्य को कलात्मक दक्षता के साथ अपनी कहानी में उत्कीर्ण करने का प्रामाणिक कौशल है। सारे यथार्थ मानव-कल्पना से छोटे हैं और कल्पना के अधिकारों को संतोष चौबे का कथाकार छीनता नहीं, बल्कि उसे वित्गेंशटाइन की शब्दावलि में 'मौज में पूर्ण अवकाश और आकाश' भी देता है। 'कथा-लोक' की आकाशगंगा में, संतोष चौबे की उपस्थिति उस नये उपग्रह की-सी है, जो अभी और-और स्पेस की खाक छानता हुआ, नयी छवियों को निरन्तर भेजते रहने वाला है। यह कथा-संग्रह, उत्तर-आधुनिक नहीं, उत्तर-मानव के मन का एमआरआई है, जो लेखक की गहरी आत्म-सजग भाषा में, सच को निर्भीकता के साथ दिखाता है।

–प्रभु जोशी

आधार पर वे यह मानकर चलते थे कि उनकी तो दुनिया ही दूसरी होती है। मगर साहित्य तो जनता से, जनता के जीवन से जुड़ा होता है, इसलिए साहित्यकार भी उतने ही जमीन से जुड़े होंगे। साहित्यकारों के लिए उनके मन में बचपन से ही बड़ी प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठा के ये बीज उनके पिता ने बचपन से उनके भीतर बो दिये थे, जो साहित्य को समाज का आईना कहते थे और साहित्यकार को आईना दिखाने वाला। मगर अभी के हालात ने उन्हें जड़ कर दिया था। पार्टी देते समय उन्होंने सोचा था कि इन साहित्यकारों की संगत में आज की शाम अच्छी कटेगी, खूब अच्छी और सार्थक बातें होंगी, छात्रावस्था के बाद जो साहित्य उनसे छूट गया था, आज उसके साथ अपने को मिला देंगे। मगर...।

डीन साहब उठकर कमरे के दूसरे कोने में चले गये और प्रिंसिपल साहब से बात करने लगे। उन दोनों को वहाँ देख अफसर निगार साहब भी अपना ग्लास लेकर उधर को बढ़ चले। डीन साहब का मलिन मुख देखकर बोले– ''मायूस ना होवें, ये इंटलेक्चुअल फ्रस्ट्रेशन्स हैं। ये महिला अच्छी हैं, मेधावी हैं, मगर लेखक-सम्पादक पति ने अपने अहं में इन्हें उतना आगे नहीं बढ़ने दिया, जितनी कि वे हकदार हैं। एक डर और कुंठा से दबा रहा कि यह कहीं मुझसे आगे ना निकल जाए और निकल ही जातीं, अगर उसकी बीवी न होतीं। इसीलिए कभी-कभी लगता है कि समान प्रोफेशन वालों को एक-दूसरे से शादी नहीं करनी चाहिए, खासकर क्रिएटिव फील्ड वालों को। खैर छोड़िए, कल का क्या प्रोग्राम है?''

''कल कुछ छोटी-छोटी फिल्मों का प्रदर्शन है। हमारे कई टीचर्स और स्टूडेंटस ने मिलकर ये फिल्में बनायी हैं। इनकी स्क्रीनिंग के बाद आप सबको अपने-अपने इनपुट्स देने हैं।''

''इन्टरेस्टिंग। क्लासेस शुरू हुए नहीं, प्रैक्टिकल्स अभी से तैयार।''

''थ्योरी वाया प्रैक्टिकल्स।'' डीन साहब ने कहा और धीरे से मुस्करा पड़े। अफसर निगार साहब की बातें उन्हें तनिक हल्का कर रही थीं। मन का बोझ थोड़ा कम हो रहा था। उन्होंने प्रिंसिपल साहब की ओर देखा। प्रिंसिपल साहब उनकी तरफ बढ़ आये।

धीरे-धीरे अफसर निगार साहब, साही जी, प्रशान्त, मनन सभी डीन वाले कोने की तरफ सिमट आये। अवन्तिका जी अभी तक अपने ग्लास और पल्लू से जूझ रही थीं।

पार्टी समाप्त नहीं हुई थी। सभी डोलमडोल थे। इच्छा न वहाँ रहने की हो रही थी, न हटने की। दरअसल किसी को भी पार्टी में वह माकूल खुशी, उत्साह, रंग नहीं मिल पाया था। खूब बहसें, खूब ठहाके, खूब टाँग-खिंचाई, खूब दीन-दुनिया की बातें। यहाँ तो पार्टी परवान से पहले ही अवसान की ओर मुड़ चुकी थी। रात ज्यादा हो गयी थी। कल का भी कार्यक्रम था, इसलिए पार्टी को समाप्त करना जरूरी समझा गया। डीन साहब ने सभी मेहमानों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। ग्लास के साथ नमकीन, सलाद खाने से ही सबके पेट के चक्के जाम हो चुके थे, लेकिन डिनर का आयोजन था। आयोजन में पैसे लगे थे। लिहाजा, जिसे जितना टूँगना था, टूँग रहे थे। अवन्तिका जी का ध्यान भोजन की ओर नहीं था। वे वहीं बैठी अपने और अपने ग्लास के साथ-साथ अपने भूत और वर्तमान के साथ जूझ रही थीं। बाकियों के टूँगने-टाँगने के बाद की विदा-वेला में डीन साहब ने बड़ी विनम्रता से पूछा– ''अवन्तिका जी, चलें क्या? पार्टी खत्म हो गयी है। आपने तो कुछ खाया ही नहीं।''

बगैर किसी राजनीतिक व्यंग्य और साहित्य की गन्धवाली आवाज ने अवन्तिका जी को जरा चैतन्य किया। वे उठीं और एक कदम आगे बढ़ीं कि लड़खड़ाकर गिर पड़ीं। भारी देह कुछ और ही ज्यादा बिखर गयी। प्रशान्त और मनन मदद के लिए दौड़े, सँभालकर अवन्तिका जी को उठाया। अफसर निगार साहब तो जाने से रहे। छूते ही पता नहीं वे क्या बक देतीं! प्रशान्त या मनन के भीतर ऐसा कोई दवाब नहीं था। अवन्तिका जी ने दोनों को बड़े प्यार से देखा और बोलीं– ''थैंक्यू बेटे। अब मैं ठीक हूँ।''

अवन्तिका जी ने खुद को दोनों के सहारे से मुक्त कर लिया। अब वे चलीं तो ऐसा लगा, जैसे हवा में पैर रख रही हों। हवा में उठा पैर हवा पर ही पल-भर को टिका रहा और फिर धरती का सहारा लिये बगैर लहराकर गिर पड़ा। इस बार उनका जूड़ा भी खुल गया। बाल बिखर गये। चढ़ी आँखें, बिखरे बाल, लिथरी बिन्दी और फैली लिपिस्टिक, दूर पड़ा पल्लू, स्थूल बदन। लग रहा था, जैसे कई रंगों से रँगा कोई भारी उल्का पिंड वहाँ पड़ा हुआ है।

प्रशान्त और मनन फिर आगे बढ़े। बमुश्किल दोनों ने अवन्तिका जी को खड़ा किया। वे खड़ी तो हो गयीं, मगर उनका पल्लू जमीन ही सूँघता रहा। डीन साहब ने प्रिंसिपल साब को देखा, प्रिंसिपल साहब ने अपनी पत्नी को। डीन साहब की डॉक्टर पत्नी भी किसी सेमीनार में गयी हुई थीं। क्लोज सर्किल होने के कारण किसी महिला प्रोफेसर या छात्रा को नहीं कहा गया था। अवन्तिका जी को एक महिला कम्पनी भी मिले, यह सोचकर डीन साहब ने प्रिंसिपल साहब से सपत्नी आने का अनुरोध किया था।

अवन्तिका जी कभी भी इस तरह की संगत की मोहताज नहीं रहीं। इसलिए प्रिंसिपल साहब की पत्नी से उनका कोई सायुज्य लाभ नहीं हुआ। प्रिंसिपल साहब की पत्नी भी शुरू से ही अवन्तिका जी के रंग-ढंग से काफी खफा थीं और आँखों ही आँखों में अपनी नाराजगी कई बार पति पर जाहिर कर चुकी थीं– ''इस पियक्कड़ी के लिए मुझे बुलाकर लाये हो?'' उनके लिए किसी औरत का शराब पीना ही नाकाबिले बर्दाश्त था और शराब के बाद ऐसी लीला! प्रिंसिपल साहब पत्नी से नजरें चुराते बच रहे थे।

अफसर निगार साहब तनिक हास्य का लास्य भरते हुए बोले– ''लीजिए, मियाँ तो इधर कसमें खा रहे हैं कि तौबा-तौबा, जो छूट गयी सो छूट गयी और बेगम साहिबा इधर हैं कि उनके हिस्से का भी जनून-ए-जाम खुद ही थाम कर खड़ी हो गयी हैं। हाय, बिचारे मानव जी, अवन्तिका जी को लगता है, केवल अदब में ही कंट्रोल करते रहे जीवन-भर।''

प्रशान्त और मनन धर्मसंकट में फँसे हुए थे। अवन्तिका जी को पता ही नहीं चल पाया कि उनका पल्लू नीचे है। वो तो बस अभ्यासवश उनका हाथ उठा और पल्लू समेटकर कन्धे पर फेंकने की मुद्रा में लहराया और फिर नीचे ढलक गया। प्रशान्त व मनन दोनों ने उन्हें दोनों ओर से थामा हुआ था। वे इधर-उधर दोनों की तरफ घूमीं और कहा– ''तुम दोनों कितने अच्छे हो! काश कि मैं तुम लोगों की माँ होती!''

''ताकि इनका भी बेड़ा गर्क करती।'' साही साहब बुदबुदाये। प्रशान्त और मनन लड़खड़ाये। निगार साहब ने सुन लिया और हँस पड़े। उनकी हँसी ने अवन्तिका जी को फिर चौंकाया। झटके से प्रशान्त और मनन की पकड़ से खुद को छुड़ाया और गरजीं– ''कौन हँसा रे?'' दहकती हुई वे आगे बढ़ीं कि नीचे गिरे पल्लू में उनके पैर जा फँसे और वे फिर से लदफदाकर गिर पड़ीं।

दृश्य-विधान-3 यानी उपसंहार

हालाँकि इन दो दृश्यों के बाद उपसंहार लिखना कतई जरूरी नहीं। आप सभी इसे अपनी-अपनी तरह से व्याख्यायित कर लें। मगर किस्सा चूँकि आने वाले कल तक का था, जिसमें फिर से कार्यक्रम था। फिर से इन सभी को एक ही मंच पर मिलना था। एक ही मंच से बोलना भी था। साहित्य, सिनेमा और समाज की सोच और सरोकार का किस पर क्या असर हुआ, यह तो पता नहीं, मगर इस पार्टी में सभी नामचीनों ने अपने-अपने सरोकार एक-दूसरे से, एक-दूसरे पर खूब निकाले। सरोकारों के रंग एक-दूसरे से मिलते रहे और बदरंग होते दिखते रहे। एक अवसन्न-सी स्थिति थी, ग्लासों की खनक के बावजूद अवसाद का अदृश्य काला घेरा था। पति के दबाव में आकर प्रिंसिपल साहब की पत्नी किसी तरह अवन्तिका जी का पल्लू उनके कन्धे पर डाल आईं। डीन साहब चेहरे से ऐसे दीन लग रहे थे, गोया सारा स्यापा उन पर ही बरपा हो गया हो। प्रशान्त, मनन व अवन्तिका जी उम्र के उस मुहाने और दहाने पर थे, जहाँ समाज उन तीनों के बारे में कुछ न सोचता। बेटा तो अवन्तिका जी ने उन दोनों को वैसे भी बना ही लिया था। सो आखिर में उन दोनों ने ही अवन्तिका जी को गाड़ी में बिठाया, खुद भी बैठे और उन्हें उनके कमरे तक छोड़कर आ गये। डीन साहब ने इन दोनों का अतिरिक्त आभार माना।

अगली सुबह फिल्म स्क्रीनिंग के समय अवन्तिका जी फिर से अपनी पुरानी सुबह वाली मुद्रा में थीं। इस बार भी जरी बॉर्डरवाली साड़ी थी, मगर दूसरी। ब्लाउज भी पूरी बाँह वाली थी। वे खूब लहक-लहककर बोल रही थीं। अफसर निसार साहब मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। पूरण जी सम्पूर्ण गम्भीरता से फिल्में देख रहे थे। प्रशान्त व मनन स्क्रीनिंग से तनिक देर के लिए बाहर निकले कि छात्रों से घिर गये। सबकुछ बेहद औपचारिक था, बेहद संजीदा, बेहद पुरअसर। रात की कथा तो रात के संग गयी, रात तो काली होती है। काले में सब छुप जाता है। ऐसे ही किसी काले, लाल समय में उन्हें याद किया जाता है। घटनाएँ दिन की ऐसी यादगार होती हैं, जिन्हें सभी को सुनाया-बताया जा सकें और इन घटनाओं में फिर से थीं अवन्तिका जी बेहद गम्भीर। आँखें प्रशान्त और मनन को खोजती हुईं। हाथ पर्स में कुछ टटोलते-से। किसी को कुछ मालूम नहीं था कि पर्स में क्या था। बस केवल वे ही जानती थीं कि इसमें उनकी दो स्क्रिप्ट हैं– एक मनन के लिए और एक प्रशान्त के लिए। जाने कैसे पूरण जी इसे समझ जाते हैं। उनके चेहरे पर चौड़ी मुस्कान फैल जाती है। अवन्तिका जी अचानक उनकी ओर देखती हैं। वे तनिक गड़बड़ाते हैं। असहज अवन्तिका जी भी होती हैं। मगर यह रात नहीं थी। सो न तो आवाज ऊँची हुई, न गाली निकली, न पल्लू गिरा। बस वे हर फिल्म को देखने के बाद उस पर बोलती रहीं, बोलती रहीं, बोलती रहीं। आखिर वे आमन्त्रिता थीं और बोलना उनका धर्म था।

❑

मो. 9820619161

दस कविताएँ

बाबुषा कोहली

तट से नहीं... पानी से बँधती है नाव

पिता हँस कर पूछते कि कैसा वर खोजा जाये
मैं कहा करती वर स्वयं मुझे खोज लेगा
पिता निश्चिन्त रहे आये

महँगे उपहार नहीं चाहिए थे मुझे
न ही सुन्दरतम उपमाओं से सज्जित कविताएँ
न ही जीवन बीमा सरीखे लम्बे व जड़ वचन

मेरे साथ रहने की न्यूनतम अर्हता इतनी-सी थी
कि उसके शहर में एक नदी हो

जो पुरुष मेरे प्रेम में पड़े उनके शहरों में नदियाँ थीं
जो पुरुष मेरे द्वार की चौखट छू कर लौट गये
वे नदियों के प्रेम में पड़े

जो पुरुष नदी किनारे मेरे संग बैठे
वे जान गये

कि तट से नहीं–
पानी से बँधती है नाव।

मो. 9981197686

सपना भट्ट

हम हव्वा की बेटियाँ

हम हव्वा की बेटियाँ
आदम जात की तिलिस्मी चालों से नहीं
भाषा की राजनीति से छली गयी औरतें हैं।
ईश्वर के लिए
हमें हिरनी, कोयल, चिरैया नहीं
बल्कि एक इंसान समझिए।

आप हमें चौतरफा संघर्षों में धकेलकर
हमारी ही छाती पर कुंडली मारकर
कर तो रहे हैं;
स्त्री-विमर्श और नारी-चेतना पर खोखली बहसें,
फुला रहे हैं छाती, ठोक रहे हैं खुद की ही पीठ
मगर जान लीजिए;
आपकी स्त्री हँसती है
आपके तमाम तमगों और मान-पत्रों पर
आपकी पीठ पीछे।

हमें कमजोर कहने से पहले
अपनी क्षुद्र कामनाओं को धिक्कारिये जनाब
हम स्त्रियों ने ही डाल रखी हैं
आपकी सैद्धान्तिक मर्दानगी और वहशीपन पर
लाज और संकोच की चादर
हमसे ढँके रहते हैं आपके जुल्म
और घातक मूर्खताएँ पर्दे के भीतर।

हम बस देह-भर ही तो नहीं।
हमें सिर्फ कमनीय सूरत और लचकती कमर का
पर्याय मत समझिये, सम्भव हो तो
हमें एक बुद्धि, एक विचार

एक मस्तिष्क के निकष पर आँकिये
और स्वयं बताइये कि
हम आपसे किस लिहाज से कमतर हैं!

हम आपके अहंकारी और झूठे
मर्दवादी जहर से नीली पड़ी औरतें हैं
हमें अपना जहर आप चूस कर थूकने दीजिये
ये दुनिया सिर्फ आपकी नहीं है
हमें भी मन-भर अपने मन से जीने दीजिये!

मो. 8006559588

रक्षा दुबे

सहसा कुछ नहीं होता

सहसा कुछ नहीं होता,
बीतते समय के साथ
कविता खुद को रचती है धीरे-धीरे,
यह अखबारी प्रशंसाओं और आलोचनाओं का समय है,
अपनी कविता को दौड़ भाग कर
स्वयं रेखांकित और प्रतिष्ठित करने की
अन्धी प्रतिस्पर्धा, घबराहट और उतावलेपन का समय,
उधड़ते, रिसते घावों की तुरपाई से विमुख
शब्दों के चतुर विन्यास की
कीमियागिरी का समय
छद्म संवेदना, ठंडे और निष्प्राण ठहराव का समय,
अपना मुहावरा गढ़ना
सबसे बड़ी चुनौती है
इस समय की और
चुप्पी में नगाड़ों की तरह बजते शब्दों के
रंग, रूप, गन्ध, स्वाद और स्वरों के वैविध्य को पहचानना
सबसे कठिन परीक्षा,
पाखंड और दोगलेपन की आबोहवा में
उधार का तनाव, रूप रचाव और सौन्दर्यबोध लेकर
रची नहीं जा सकती
अपने समय की
कोई भी कविता,
ऐसी ठस कोशिशों से
टूट जाता है कविता का कोमल मन।

मो. 9479845151

पल्लवी त्रिवेदी

जब मैंने 'ना' कहा

मैंने पहली बार जब 'ना' कहा
तब मैं 8 बरस की थी
''अंकल नहीं... नहीं अंकल''
एक बड़ी चॉकलेट मेरे मुँह में भर दी अंकल ने
मेरे 'ना' को चॉकलेट कुतर-कुतर कर खा गयी
मैं लज्जा से सुबकती रही
बरसों अंकलों से सहमती रही,

फिर मैंने ना कहा रोज ट्यूशन तक पीछा करते
उस ढीठ लड़के को
'ना', मेरा हाथ न पकड़ो
ना, ना... मैंने कहा न – 'ना'
मैं नहीं जानती थी कि 'ना' एक लफ्ज नहीं,
एक तीर है जो सीधे जाकर गड़ता है मर्द के ईगो में,

कुछ पलों बाद मैं अपनी लूना सहित औंधी पड़ी थी
मेरा 'ना' भी मिट्टी में लिथड़ा दम तोड़ रहा था

तीसरी बार मैंने 'ना' कहा अपने उस प्रोफेसर को
जिसने थीसिस के बदले चाहा मेरा आधा घंटा
मैंने बहुत जोर से कहा था– 'ना'

''अच्छा...! मुझे ना कहती है''
और फिर बताया कि
जानते थे वो क्या-क्या करती हूँ मैं अपने बॉयफ्रेंड के साथ,
अपने निजी प्रेमिल लम्हों की अश्लील व्याख्या सुनते हुए
मैं खड़ी रही बुत बनी

सुलगने के वक्त बुत बन जाने की अपराधिनी मैं
थीसिस को डाल आयी कूड़ेदान में और
अपने 'ना' को सहेज लायी

वो जीवनसाथी हैं मेरे जिन्हें मैं कह देती हूँ कभी-कभार
''ना प्लीज, आज नहीं''
वे पढ़े-लिखे हैं, जिद नहीं करते
झटकते हैं मेरा हाथ और मुँह फेर लेते हैं नि:शब्द,
मेरे स्नेहिल स्पर्श को ठुकराकर वे लेते हैं 'ना' का क्रूर बदला,

आखिर मैं एक बार आँखें बन्द कर झटके से खोलती हूँ

अपने 'ना' को तकिये के नीचे सरकाती हूँ
और
उनका चेहरा पलटाकर अपने सीने पर रख लेती हूँ
मैं और मेरा 'ना' कसमसाते रहते हैं रात-भर

'ना' क्या है?
केवल एक लफ्ज ही तो जो बताता है मेरी मर्जी
खोलता है मेरे मन का ताला
कि मैं नहीं छुआ जाना चाहती तुमसे
कमसकम इस वक्त

तुम नहीं सुनते
तुम 'ना' को मसल देते हो पंखुरी की तरह
कभी बल से, कभी छल से
और जिस पल तुम मेरी देह छू रहे होते हो
मेरी आत्मा कट-कट कर गिर रही होती है

कितने तो पुरुष मिले
कितने ही देवता
एक ऐसा इंसान न मिला जो
मुझे प्रेम करता मेरे 'ना' के साथ।

मो. 9425077766

अर्चना लार्क

गार्गी

गार्गी इन दिनों क्या कर रही हो
कितने सवाल और बचे हैं गह्वर में
तुम इतनी चुप क्यों रहने लगी हो
जब बोलती थी तो विद्वानों के कान में
मधुमक्खी का डेरा जम जाया करता था
उनका अधैर्य असीम

क्या अभी भी कुछ सवाल उन्हें बार-बार जन्म
लेने को प्रेरित करते हैं
उनकी आँखें सवालों के रक्तिम दृश्य से
लथ-पथ शव-सरीखी अंकित हैं
इनमें देखो! न जाने कितनी गार्गी की नीली देह तैर जायेंगी

गार्गी! तुम्हारे सवालात पर चरमराया आसमाँ
धरती पर अंगारे फेंकता है

आकाशवाणी होती है– अब सब नष्ट हो जायेगा
तुम्हारा दिमाग विक्षत हो जायेगा गार्गी।

इस आवाज से तुम कितना चौंकी थी
'ब्रह्म क्या है' पूछते ही स्त्री को पागल हो जाना था?

तप त्याग वैराग्य धारण करती तुम दर्शन की गहराई को नापती
अन्तिम सवाल पर चुप हो जाना श्रेष्ठ समझती रही गार्गी!

उस स्त्री के बारे में तुम कितना जानती हो जो
सुरक्षा कवच को सीने में दफनाये
दो आँखें पीठ में गुदवाये भूखे-प्यासे भाग रही है अपनों से?

क्या तुम मानती हो गलतियों के बदले कोई श्राप होता है
अच्छाई के बदले कोई वरदान?

गार्गी तुम्हारी नाक नहीं कटी
तुम बच गयी कई अपमान से
पर क्या सच में प्रश्न पूछने की अनुमति देता समाज
उतना ही सरल-सुन्दर होता है
जैसे कि पहले प्रश्न की अकुंठ तान लेती स्त्री?

गार्गी वर्चस्व की खिचड़ी को अब तुम कैसे समझती हो
नगाड़ों के बीच विसर्जित स्त्री को तुम
कितनी बार याद करती हो?

क्या तुम छींक सकती हो इन व्यवस्थाओं पर
या छींटों की चिन्ता से रूमाल से ढँक लोगी चेहरा?

बोलो गार्गी तुम्हारी वाक्पटुता कब माफ होगी?
तमाचा जड़ देने-भर से या बलात्कार कर टुकड़े में बाँट देने से
शायद तेजाब फेंक कर अन्तर्मन झुलसा देने से माफी मिल जाये
या सरेआम नंगा घुमा देने से

किसी रोज रोजगार के दरवाजे से ही
निकासी मिल जाये तुम्हें!

गार्गी तुम सदियों से सवालों से संघर्ष कर रही हो
कितना साहस जुटाती होगी उन क्षणों में
प्रेम पर लात पड़ने से जब गर्भ गल-गलकर बह जाता होगा
उसकी चीख कितनों के कानों में आँसू छोड़ जाती होगी?

कुल कलंकिनी कही जाती तो कितनी बार
खुद से लिपट पूछती न्याय-दर्शन-आध्यात्म के बारे में?

गार्गी तुम्हारी ऊर्जा से उनकी त्वचा क्यों कुम्हलाने लगी
संसार सन्निपात बन उजड़ने क्यों लगा?

तुम सुअर को देखती हो तो क्या महसूस करती हो
गर्दभ तान का व्यंग्य तुम्हें कितना रसीला लगता है?

सौन्दर्यबोध की तुच्छ परीक्षा से गुजरती हुई
तुम रोकर आँखें बन्द कर लेती हो
या अपने जीवन को याद करती अड़ जाती हो
हर परिभाषा के आगे

गार्गी ये तुम्हारे चुप रहने का समय नहीं है
उठो और पूछो
भक्ति और ज्ञान के बीच रेहड़ पर
जीते जीव के पेट की गुड़गुड़ाहट
पूछो उनसे उनके किरदार के बारे में
कितने और बचेंगे उनकी स्वर्ण नगरी में

ब्रह्ममुहूर्त कब निकलेगा!
कितने और आका जन्म लेंगे उनके दरबार में।
पूछो गार्गी
पूछो!

मो. 9811837135

जमुना बीनी

बचे रहने की उम्मीद

जब नदी
तुम्हें लीलने के लिए आगे बढ़ी
तुम ऊँचे पहाड़ों में भाग गये
घने जंगलों के
लम्बे और चौड़े
पेड़ों पर चढ़ गये
स्वयं को बचाने
और
अपनी नस्ल को
विलुप्ति से।

तुम्हारे
आदिवासी-बोध ने बतलाया
तुम्हें पहाड़ों
और
जंगलों की ओर भागना चाहिए
वहाँ ऊपर
दुश्मनों से महफूज रहते आये
अनगिनत काल से

तुम भागते जाते हो
जब तक
तुम्हारी साँसें नहीं रुकतीं
पैर जवाब नहीं देते
फिर तुम आश्वस्त होते हो
कि
तुम्हारे लोग
तुम्हारे बाद भी जीयेंगे
तुमसे अधिक जीयेंगे
संसार को बतलाने
तुम्हारी अद्‌भुत-अनोखी संस्कृति
आदिवासी संस्कृति के बारे में।

मो. 9436044327

श्रुति कुशवाहा

चुटकुला

औरतों का बोलना हमेशा से चुटकुला रहा है
'दो औरतें खामोश बैठी थीं' इस पर ठठाकर हँस पड़ते हैं आदमी
ये वही आदमी हैं जिनके घरों में औरतें चूँ तक नहीं करतीं
वो इसे बड़े फख्र से बताते हैं

बुखार-हरारत में औरत ने कभी नहीं कहा तबियत खराब है
हाथ जल जाने पर भी उसने परोसीं गर्म रोटियाँ
कटे-छिले हाथों से धोये घर-भर के कपड़े
नींद उसने मरने तक मुल्तवी कर दी
बचपन से ही मिली थी नसीहत
लड़कियाँ चपर-चपर नहीं करतीं
औरतों की जबान बोलने और स्वाद लेने के लिए नहीं होती
औरतों की जबान हामी भरने तक महदूद रही
कभी जो उसने कोशिश की बोलने की
तो जबान खींच लेने की धमकी मिली
इस तरह औरतों ने सिल ली अपनी जबान

औरतों को चुटकुलों में बेतरह बोलते-हँसते बताया गया
वो करती रहीं ढेर शॉपिंग, उनकी आँखें नहीं नल थे
वार्डरोब भरा होने पर भी उनके पास पहनने को कपड़े नहीं होते
सारे पति अपने घर में भीगी बिल्ली बने रहते हैं
खाने में क्या बनेगा, ये औरतों की वैश्विक समस्या है
चुटकुलों में औरतें पतियों को बेलन दिखाती हैं
चुटकुलों में आदमी चुपचाप खा लेता है टिंडे की सब्जी

आदमी के लिए औरतों की हँसी और आँसू सनातन चुटकुले हैं
आदमी इन पर पेट पकड़ हँस रहा है
औरतें रो रही हैं चुटकुलों पर...।

मो. 9893401727

विशाखा मुलमुले

रंगत

जब एक तितली तुम्हारी आँखों में ठहरती है
तो तुम्हारी दृष्टि की कोमलता
मन को छू जाती है
वह तितली जब काँधे पर बैठती है
तो बन जाती है भरोसे का रूपक

उड़कर वही तितली
जब तुम्हारी हथेली पर रंग बिखेरती है
तो रचती है
शिशिर में फाल्गुन का रोमांच
जब तुम्हारे अधरों पर
तितली-सी मिश्किल मुस्कान तिरती है
तो मेरी नाभि के इर्द-गिर्द
मचलती हैं असंख्य तितलियाँ

सुनो वसन्त,
पतझड़ की असंगत ऋतु में भी
पीठ पर तितली का अस्तित्व बनाये रखना
कि, एक तितली की फड़-फड़
बदल सकती है ऋतुएँ भी!

मो. 9511908855

हर्षा श्री

खिड़कियाँ

पेड़ों के झुरमुट-तले
जड़ों के बिस्तर पर
यूँ ही बेपरवाह पड़े हुए निहार रही हूँ
हरे पत्तों के झरोखों से झाँकते
नीले आसमान को

पत्तों की छलनी से छनकर
आता सूरज
मुझ-संग अठखेलियाँ कर रहा है

हरियल हवा हौले-हौले
पत्तों को छूकर मुझे सहला रही है

डालियों पर रखे घोंसले में
गृहस्थी सजी हुई है
जीवन चहक रहा है

यहाँ पेड़ के तले से
आसमान को देखो
तो महसूस करोगे
ये पत्ते नहीं
डालियों के फ्रेम में जड़ी
धरती की खिड़कियाँ हैं
जिन्हें पेड़ों ने
अपने कन्धों पर सँभाल रखा है।

तुम ही कहो
पेड़ों को बचाये रखने के लिए
क्या ये वजह काफी नहीं
कि बिना खिड़कियों वाले घर में
रहना पड़े तो
रहने वालों का दम घुट जाता है।

मो. 9873883330

निवेदिता दिनकर

दादू के नये बने घर में तालाब था...

दादू के नये बने घर में तालाब था
तलब भी जागी कि तैरना सीख लूँगी
कोशिश की कई बार
पर तैरना नहीं सीख पायी...
मुझे किनारे बैठकर तालाब में जाल डालकर
मछली पकड़ते हुए देखना बहुत अच्छा लगता
जैसे
अकेले बैठकर पेड़-पौधों से बातें करना...
बकरी के बच्चे, श्वान के बच्चे को देखते ही
झट गोदी में उठा लेना
कान्हाई की दुकान से खट्टे-मीठे लेमनचूस वाली गोली खाना
फल वाले दादू की दुकान में सजाये जार में
हाथ घुसाकर बिस्कुट...

छह फीट कद-काठी, गठीला बदन ऑतुल मामा
तालाब में डुबकी लगाते और किनारे गडढों से
कभी केकड़ा तो कभी चिंगड़ी पकड़ लाते
हम किनारे बैठ खुशी से चिल्लाते–
अबकी बार बड़ी मछली पकड़ो न ऑतुल मामा...

ऑतुल मामा से अपना रिश्ता आज तक समझ नहीं आया
वह माँ के भाई न थे
क्योंकि माँ, मौसी सब ऑतुल मामा ही बुलाते
दीदीमाँ को ऑतुल मामा दीदी कहकर सम्बोधित करते
पर वह दीदीमाँ के भी भाई न थे

शाम होते ही ऑतुल मामा आखिरी वाले कमरे से लगा
सदोर में बैठकर बाँसुरी बजाते
या फिर कैसे एक बार एक बाघ को मारा था
जब वह गाँव में घुस आया था वाली कहानी सुनाते
टाँड़ के ऊपर रखा बल्लम गवाह के रूप में
अभी तक रखा हुआ था...

ऑतुल मामा दिन में एक स्कूल में
चौकीदार थे
और रात को दादू को डिस्पैंसरी से लौटते वक्त
बड़ा-सा एवेरेडी वाला टॉर्च रास्ते-भर
दिखाते हुए लाते...

ऑतुल मामा की पीठ पर चढ़कर कितने मेले देखे
और तैरना सीखने के लिए कितने हाथ-पैर मारे
पर
ऑतुल मामा, तुमसे रिश्ते की पेचीदगी
आज तक नहीं सुलझ पायी!

मो. 9837081099

❑ कहानी

विनीता चौबे
की दो कहानियाँ

सुई

उसे अच्छा नहीं लगता था कि उसकी धीरे-धीरे बड़ी होती बिटिया का, जो कि दिखने में जल्दी बड़ी हो रही थी, कोई कपड़ा उधड़ा या फटा हो या कि बटन ही टूटा हो। वह कपड़े तह करते समय ही बेटू के कपड़े अलग रख लेती थी। जब तक कि वह ठीक से सिल न जाएँ, वह उन कपड़ों को अलमारी में जमाती नहीं थी।

दिन-भर की भागदौड़ में बच्चों के साथ फुर्सत से बात करने का समय बहुत मुश्किल से ही सही, पर वह निकाल अवश्य लेती थी क्योंकि उससे, बच्चों के मन में क्या चल रहा है, ये पता चल जाता है। वे घर-परिवार, स्कूल, दोस्त, शिक्षक के विषय में क्या सोच रहे हैं, यह मालूम पड़ता है और इससे स्वयं को भी बहुत राहत महसूस होती है। पूरी बातचीत में बच्चों की समस्याएँ भी निकल आती हैं, जिससे उबरने के रास्ते भी वह साथ-साथ बच्चों को बताती चलती है। ये उसका अपना तरीका है बच्चों के साथ-साथ खेल-खेल में ही बच्चों के मनोविज्ञान को समझने का, जिससे बच्चे अपनी-अपनी बातें भी शेयर कर पाते हैं।

रात में फुर्सत से सारे काम निपटा कर उसने बेटू को आवाज दी, मरम्मत करने वाले कपड़ों को उठाया और बैठक में बैठ गयी। ''बेटू बताओ तो आजकल क्या हाल हैं, तुम्हारे स्कूल में क्या चल रहा है, कैसा चल रहा है?'' और वह सुई में दोहराकर धागा पिरोने लगी। बेटू भी चिहुँक कर सुनाने लगी, ''देखा ना माँ! हर बार मेरे साथ ही ऐसा होता है, इस बार भी आपने जो असेम्बली का कंडक्शन तैयार करवाया था, वह फिर तान्या को मिल गया।''

नीति ने दोनों धागे होठों के बीच में दबाकर हल्के गीले किये, अँगूठे व पहली उँगली के पोरों से सूँत कर उसे सीधा किया और फिर सुई में धागा डालना शुरू किया।

''बेटू! वो तो अच्छा तैयार हुआ था, भाषा भी अच्छी थी, फिर क्या हुआ इस बार?'' धागा सुई के आर-पार नहीं जा रहा था इस बार। वह जरा सीधे तन कर बैठी। बेटू से कहा, ''बेटू अच्छी रोशनी कमरे में नहीं है। खिड़की का पर्दा जरा हटाओ जिससे बाहर की रोशनी अन्दर आ सके।''

बेटू ने खिड़की से पर्दा सरका दिया। लाइट कुछ बढ़ी। वह फिर धागों को होठों के बीच गीला कर सीधे डालने लगी। मन में सोचती जा रही थी कि कॉलेज में तो सुई-धागे की दौड़ में वह हमेशा अव्वल आती थी। ऐसा नहीं था कि वह दौड़ती तेज थी। उसका धागा बहुत जल्दी सुई के आर-पार डल जाता था। पिछले दो-तीन बार से धागा-सुई में पिरोने में कुछ समय ज्यादा लग जाता है। उसकी घबराहट कुछ बढ़ी पर वह बेटू से इस बीच लगातार बात कर रही थी।

''माँ मैंने लिखा तो अच्छा था, टीचर ने भी कहा कि इसे मुझे दे दो, अच्छा बना है, पर इस बार तान्या असेम्बली कंडक्ट करेगी। माँ हर बार टीचर मुझसे लिखवा तो लेती है पर बोलती तान्या ही है।'' बेटू सुबकने लगी थी।

इस बार भी धागा सुई में गया नहीं। क्या हो गया, फिर उसने सोचा शायद सुई के छेद में कुछ कचरा कहीं थोड़ा-बहुत जमा हो, जिससे रुकावट आ रही हो। उसने यह सोचकर धागा इकहरा कर लिया। अब वह आश्वस्त थी कि अब तो धागा चला ही जायेगा। वह फिर कोशिश करने लगी। उसे झुँझलाहट होने लगी और उसकी झुँझलाहट बढ़ने लगी। ''अच्छा बेटू तुम, रोओ नहीं।'' उसे पता था कि बेटू के साथ अक्सर ऐसा लगातार पिछली कक्षा से होता आ रहा है, पर वह समझाने लगी, ''नहीं बेटा ऐसा नहीं है, अपने आपको बार-बार प्रूव करना पड़ता है। तान्या हमेशा प्रथम-द्वितीय स्थान पर आती है। टीचर को भी फादर के सामने अच्छा प्रोग्राम करके दिखाना पड़ता है, इसलिए वह भी कैसे बार-बार नये बच्चों को ट्राई करें, उन्हें जाँचे-परखें। इसलिए वह उन्हीं बच्चों को ले लेती हैं। तुम थोड़ी-सी मेहनत और करो और अच्छे नम्बर लाओ। अपने आप टीचर की नजर में आओगी। पहले तुम असेम्बली कंडक्ट करती ही थी।'' यह कहकर उसने बेटू की पीठ पर हाथ फेरा। ''मैं भी जाकर तुम्हारी टीचर से बात करूँगी, चिन्ता मत करो।'' बेटू फिर मुस्कराने लगी।

उँगली के पोर में एक-दो जगह सुई के चुभने से खून की बूँदें उभर आयीं। वह घबरायी। अचानक सोचा कि आँखों ने क्या साथ देना छोड़ दिया है? या धुँधलाना शुरू कर दिया है? यह ख्याल आते ही वह घबरा गयी। पर इधर धागा सुई में नहीं गया। इस बार उसके हाथ भी काँपने लगे। उसने बेटू से बात करना बन्द कर दिया और अचानक उठ कर खड़ी हुई। दौड़कर अपने पति की बनायी गयी छोटी-सी लाइब्रेरी में गयी जहाँ अनेक साहित्यकारों के उपन्यास करीने से लगे हुए थे। भारतीय समाज और संघर्ष को लेकर अनेक किताबें थीं जो उसे अभी पढ़नी थीं। कभी उसके पति कहते, ''भाई तुम भविष्य के लिए सोच लो कि बच्चों के बड़े होने पर अपना समय कैसे गुजारोगी! महिलाओं को बाद में अपना समय गुजारने में बड़ी परेशानी होती है।'' वह तपाक से कह देती, ''मेरी चिन्ता मत करो, तुम अपना सोचो। ये जो हमने ढेर सारी किताबें विभिन्न पुस्तक मेलों में अपनी जमा-पूँजी में से खरीदी हैं, मैं यह सब पढ़ूँगी। दीमक की तरह चाट डालूँगी। अभी पूरा दिन बच्चे-स्कूल, बाजार, हाट, तीज-त्यौहार, व्रत-उपवास, चाचा, भाई-बहन, भाँजे-भाँजी, ऑफिस, दोस्त, बिजली का बिल, टेलीफोन बिल, फ्लैट का किराया, आना-जाना, शादी-ब्याह, सब में रुचि ना होते हुए भी थोड़ा-थोड़ा सब करते-करते पूरा समय निकल जाता है। बाद में बहुत समय मिलेगा।''

नीति की आँखें डबडबा गयीं। वह किताबों पर उँगली के पोरों से हाथ फिराने लगी। जल्दी-जल्दी दो-चार किताबें बाहर कीं। फिर दूसरे शेल्फ से दो-चार किताबें और खींची, फिर जमीन पर धप से बैठ गयी।

पीछे बेटू खड़ी-खड़ी सब देख रही थी। उसने पूछा, ''माँ क्या हुआ?'' वह बेटू से लिपटकर फफककर रो पड़ी। ''माँ सुई में धागा नहीं गया, इसलिए तुम इतना रो रही हो? लाओ मैं डाल देती हूँ।''

पर उसके मन में तूफान था। जीवन के 45-50 वर्ष कब निकल गये, पता ही नहीं चला। अब वह आगे बचे समय को पकड़ने की कोशिश में छटपटा रही थी। वह बेटू से क्या कहती? उसने उसे और कस के गले लगा लिया।

❑

निर्माता

तीन पुरुष आपस में बातें कर रहे थे।

पहला पुरुष– उम्र लगभग 60 वर्ष।

''शादी हुई तब मेरी पत्नी मात्र 15 वर्ष की थी, मैंने अपनी पत्नी को ऐसा ढाला कि मजाल क्या कि वह मेरे सामने अपनी बात रख सके और अपना मत जाहिर भी कर सके।''

दूसरा पुरुष– उम्र लगभग 55 वर्ष।

''मेरी जब शादी हुई, मेरी पत्नी की उम्र 17 वर्ष की रही होगी। मैंने अपनी पत्नी को ऐसा बनाया, घर में ऐसा माहौल बनाया कि वह अपना मत व्यक्त कर सकती है, हम लोगों में बातचीत भी अच्छी होती है। हाँ, यह अलग बात है कि निर्णय सिर्फ मेरा ही मान्य होता है।''

तीसरा पुरुष– उम्र 40 वर्ष के लगभग।

वह सुलझा हुआ एवं समझदार लग रहा था। कह रहा था, ''मेरी जब शादी हुई तब पत्नी 20 वर्ष की थी। मैंने अपने घर का वातावरण ऐसा बनाया है, पत्नी को इतनी फ्रीडम दे रखी है कि वह अपने स्वतन्त्र विचार भी रख सके। वह तरह-तरह के प्रश्न पूछने को भी स्वतन्त्र है।''

स्त्रियाँ अपने अपने पुरुषों का, उन्हें गढ़ने का दावा, मन ही मन मुस्कराते सुनती रहीं। वे जानती थीं कि बाद के बरसों में उन्होंने भी तो इन पुरुषों को गढ़ा था। अब वे ठीक वैसे ही थे जैसा वे चाहती थीं।

मो. 9977922506

❑ कहानी

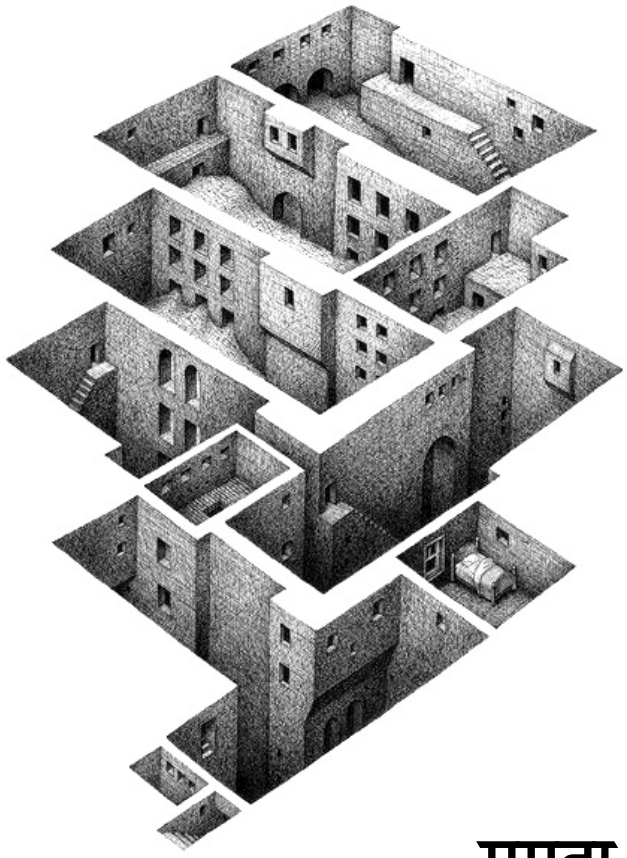

बंकर

ममता सिंह

प्राची की माँ विनीता टीवी की खबरें देखती हैं या अखबार पढ़ने बैठती हैं कि बस... उनकी आँखों के झरने का बहाव तेज होने लगता है। हफ्ते-भर से ज्यादा हो गये। प्राची की कोई खबर नहीं है। उनकी चिन्ता ऐसी कि दुनिया की सारी माँओं की नींद गायब हो जाए। रविराज त्यागी भी दु:ख के इस सैलाब में डूबने लगे हैं। विनीता की रुलाई का सुर ऊँचा होता जा रहा है और खिड़की से कूदकर सामने वाली बिल्डिंग तक पहुँच रहा है। सामने के फ्लैट के लोग अपने घरों में बैठे अटकलें लगा रहे हैं कि कहीं कुछ अनिष्ट तो नहीं हो गया!

विनीता की आँखों की नदी में प्राची का चेहरा तैर रहा है– न जाने किस हाल में होगी बेचारी? विनीता प्राची की अलमारी के पास जाकर उसकी किताबें उलटती-पलटती हैं। किताबों के बीच बहुत सारे ग्रीटिंग कार्ड रखे हैं, कुछ पन्नों पर मुरझाये हुए फूलों की पंखुड़ियाँ चिपकी हुई हैं। अलमारी के दरवाजे पर वर्ल्ड-मैप लगा हुआ है। दूसरी ओर दीवार के कोने पर बछेन्द्री पाल की श्वेत-श्याम तस्वीर चिपकी हुई है। शायद अखबार की कटिंग है। प्राची की किताबों को छू-छू कर वे उसके सपनों को छू रही हैं जिनसे वे अब तक अनजान थीं। कॉलेज से आते ही प्राची विनीता की गोद में नन्हीं बच्ची-सी चिपक जाती, उनके दुपट्टे से अपनी आँखें ढँक कर सपनों के पहाड़ पर चढ़ने लगती। विनीता माँ की ममता उड़ेलतीं, लेकिन उसके सपनों के विराट पहाड़ की खबर उन्हें नहीं लगी।

''किस तरह की सुरक्षा मुहैया की गयी है? वापस तो लौट आयेगी न? सुना है, विमान से भारतीय छात्रों को जैसे-तैसे बचा कर अपने देश लौटाया जा रहा है। प्रधानमन्त्री के नाम पत्र लिखिए, उसे वापस अपने देश लौटा लें।'' ये बोलते हुए विनीता के रोने का सुर मन्द्र सप्तक तक आया, लेकिन उनकी आँखों की नदी में बाढ़ कम नहीं हुई।

''हाँ! जैसे प्रधानमन्त्री हमारे पत्र का इन्तजार कर रहे कि हमारा पत्र मिलेगा और वे स्पेशल विमान से प्राची

को इंडिया ले आएँगे। दस हजार से भी ज्यादा छात्र फँसे हैं वहाँ... समझीं?'' मिस्टर त्यागी की आवाज में दर्द और खीझ थी।

दरअसल इस नये दौर में हर युवा के अपने सपनों के सब्जबाग हैं। वे अपने सपनों की डोर पकड़ उड़ जाते हैं ऊँचे आकाश में। माँ-पिता के लिए छोड़ जाते हैं गहरी खलिश।

उस रोज कार्डियोलॉजी में कार्डियोवैस्कुलर सिस्टम और श्वसन प्रणाली की विशिष्ट समस्याओं पर प्रोफेसर बोर्लोग शाइन लेक्चर दे रहे थे। प्राची ने पल्मनोलॉजी पर गूगल सर्च के लिए जैसे ही की-बोर्ड पर उँगली रखी कि स्क्रीन ब्लैक हो गयी।

यूनिवर्सिटी का सायरन बेतहाशा बजने लगा। अचानक कानफोड़ू आवाजों से धरती काँपने लगी। ऐसा लगने लगा जैसे बारिश की तेज आवाज वाली बिजली गड़गड़ा कर सिर पर गिर जाएगी। डर और अफरा-तफरी एक साथ। हवा में जैसे कोई कैमिकल मिल गया हो, घुटन-सी होने लगी। बारूद और जहरीली गन्ध चारों ओर फैल गयी। अचानक कुछ छात्र उठ कर भागने लगे।

''चलो चलो, भागो यहाँ से... भागो।'' बहुत जल्दी और हड़बड़ी में एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर गिरते-पड़ते लोग। भागते हुए किसी के चेहरे स्पष्ट नहीं नजर आ रहे थे, बस इंसान हैं इतना ही पता चल रहा था। कुछ ही देर में पता चला कि ये आवाजें बमबारी की हैं। इस आपदा का अन्दाजा तो था लोगों को, लेकिन आनन-फानन में ये घटित होगा और धरती दीवार हिला देने वाली आवाजों के साये में साँस लेगी, इसके बारे में कहाँ सोचा था!

सारे छात्रों को अंडरग्राउंड हॉल में ले जाया गया, जहाँ कभी-कभी विशेष लेक्चर के लिए बुलाया जाता या कोई फंक्शन होता था। वहाँ दीवारों पर लगे लैम्प की मद्धम रोशनी झिलमिला रही थी। किसी ने मोबाइल एप्लीकेशन पर रेडियो लगाया। ''रूस ने यूक्रेन पर भयानक हमले किये हैं। रूसी सेना ने दक्षिण के खेरसान शहर को कब्जे में लेने का दावा किया है। जितोमिर में मैटरनिटी हॉस्पिटल और सेना के ब्रिगेड मुख्यालय पर बम फोड़ा गया। खारकीव के पुलिस हेड क्वार्टर को निशाना बना कर छोड़ी गयी रूसी मिसाइल ने कर्जिन नेशनल यूनिवर्सिटी को तबाह कर दिया है।'' अन्तिम वाक्य पूरा होने से पहले ही नेट कनेक्शन टूट गया। खामोशी पसर गयी। अब सिर्फ जिनमें कहर की लहर थी, रूह कँपा देने वाली वो आवाजें बन्द होने का नाम ही नहीं ले रही थीं।

अचानक चेर्नोबिल न्यूक्लियर पावर प्लांट की बिजली गुल हो गयी। सब लोगों की आँखों में सिर्फ खौफ की रोशनी बची थी। कई देशों से आये छात्र अपने-अपने इष्ट को याद कर प्रार्थना करने लगे। प्राची की आँखों में मम्मी का चिन्तित चेहरा स्थायी भाव बन गया। उसने फौरन मोबाइल में मम्मी-पापा के नम्बर पर ऑडियो सन्देश रिकॉर्ड कर दिया, इस उम्मीद में कि जब भी फोन सर्विस शुरू होगी, सन्देश उन तक पहुँच जाएगा। दूसरे कई देशों के छात्र समय रहते ही दूतावास के हवाले कर दिये गये थे। बाद में अपने-अपने घर सुरक्षित पहुँचा दिये गये थे।

अब क्या होगा, हम कहाँ जाएँगे? क्या हम सब बच पाएँगे? कई आवाजें एक साथ गूँजीं, जिसका जवाब वहाँ उपस्थित प्रोफेसर या यूनिवर्सिटी में मौजूद डीन या वाइस चांसलर के पास भी नहीं था। एक पल की मौत के सामने पूरे जीवन-भर का इकट्ठा दु:ख छोटा लगता है।

मिसाइल और रॉकेट के हमलों से रात-भर खौफ की बारिश होती रही। धमाकों की सरसराहट ऐसी हृदय-विदारक हो रही थी कि लगता अगली आवाज दिल की धड़कन बन्द कर देगी। इन्हीं खौफनाक लम्हों में कुछ छात्र हॉल से लगे गलियारे में जाकर झिरी से देख कर टोह ले रहे थे। प्राची भी इन्हीं के साथ एक मुक्की में अपनी एक आँख हाथ से दबा कर दूसरी आँख से देखने की कोशिश करने लगी। बहुत दूर तक अँधेरा, उसके पार आसमान में जलती रोशनियों का समुद्र लहरा रहा था। काली अँधेरी रात में भी प्राची अपने दिल में उम्मीद का दिया जलाये हुए थी कि शायद कल सुबह तक या अगली सुबह तक सब ठीक हो जाए और उसके सपनों को खाद-पानी मिलता रहे, जबकि ये मनहूस रोशनियाँ उम्मीद के दिये को ध्वस्त करने का काम कर रही थीं। एक देश की दूसरे देश के प्रति नफरत की ज्वाला थीं ये रोशनियाँ। कुछ लोग बैठे-बैठे ऊँघने लगे, कुछ जमीन पर अधलेटे, कुछ उकड़ू-मुकड़ू बैठे, हर शोर और आवाज पर चिहुँक जा रहे थे। आँखों में नींद भरी थी पर वे सो नहीं पा रहे थे।

अगली सुबह सूरज का प्रकाश कुहासा लेकर आया, फिजाएँ छिन्न-भिन्न हुई थीं। बहुत सारे रूसियों के रिश्तेदार यूक्रेन में रहते हैं। यूक्रेन के निवासियों के रिश्तेदार रूस में बसे हैं। किसी को किसी की खबर नहीं मिल रही। महाभारत के युद्ध की तरह सब अपनों को ही नष्ट कर रहे हैं।

''खबर मिली है कि रूसी पैराट्रूपर लैंड कर गये हैं। खारकीव पर कब्जा कर लेने की मुहिम चल रही है।'' भारतीय दूतावास ने एडवाइजरी जारी की है, ''लोग किसी भी हालत में फौरन खारकीव छोड़ दें।''

कहते हुए प्रोफेसर एरिना रुकती हैं, उनके भीतर का दर्द उनकी आवाज में आकर अटक गया था। उनके चश्मे के भीतर से सफेद मोती झिलमिला रहा था, उनके काँपते हाथ और थरथराते पैर उनके भीतर का दर्द बयाँ कर रहे थे।

लेकिन... कैसे? कहाँ जाएँ? पैदल...? किस रास्ते से हम हवाई-अड्डे तक पहुँचेंगे? हर रास्ते में धुएँ का गुबार है। प्राची, एलीना और कई छात्रों के समवेत स्वर की ये अनुगूँज दीवारों से टकरा कर ईको के रूप में फिजाओं में विलीन हो गयी। प्राची को बचपन में पढ़ी रूसी लोक-कथाएँ याद आने लगीं। उन कहानियों में कहीं ऐसा युद्ध नहीं होता था। काश, उन कहानियों के अन्त की तरह यहाँ भी सब खुशगवार हो जाए!

पहले ही कोई व्यवस्था हो जाती तो कुन्दन अभिषेकी और उसकी टीम की जान बच जाती, और भी बहुत सारे न जाने कितने छात्र यूक्रेन के इन शहरों में इंजीनियर और डॉक्टर बनने का रेशमी ख्वाब लेकर आते हैं। आर्थिक तंगी की आँच पर कितने कष्ट से उनके सपने पकते हैं।

क्या हम सब जिन्दा बचेंगे? व्यवस्था का नाद चारों ओर गूँज रहा था, कठिनाई से निजात दिलाने के लिए लोगों के घरों में दिये जलाये जा रहे थे, पर उससे क्या लोगों की जानें बच रही थीं? जब रोम जल रहा था तब नीरो भी बाँसुरी बजा रहा था।

प्रोफेसर फाल्कोवस्की छात्रों से एक घटना बताते हुए चिन्ता व्यक्त कर रहे थे। पंजाब, इंडिया का एक छात्र घर से निकल कर पास की दुकान से ब्रेड-बटर लाने गया था और मौत का निवाला बन गया।

तमाम देशों ने रूसी सेना से अपील है कि सीजफायर का पालन किया जाए, फिर भी रूसी टैंकों का लम्बा काफिला राजधानी कीव की ओर बढ़ रहा है। बुरे हालात देखते हुए भारतीय दूतावास ने फिर एक एडवाइजरी जारी की है कि 'भारतीय जैसे भी हो, कीव और खारकीव से निकलें...। उन्हें अपने वतन वापस लौटाने के लिए विशेष विमानों की व्यवस्था की गयी है...।'

इर्पिन, बुचा, गोस्तोमेल से लोगों को सुरक्षित निकालने की कोशिश कामयाब हुई, जिनमें बहुत सारे भारतीय हैं, लेकिन लोग मरने से बचते तब हैं जब बचाव की मुहिम कामयाब हो। ये व्यवस्था कागज पर ही सार्थक हो रही थी, हकीकत काफी उलट थी।

सबकी सूनी आँखें एक-दूसरे से कुछ कहती हुईं खारकीव से निकल कर विमान तक पहुँचने का रास्ता खोजने लगीं। आखिरकार दो रोज के यातना-भरे इन्तजार के बाद यूनिवर्सिटी का वो जत्था भागने और अपनी जान बचाने के लिए चल पड़ा। सुरक्षा के मद्देनजर छात्रों के समूह ने कच्चा और गुमनाम रास्ता पकड़ा। तीन घंटे तक पैदल चलने के बाद ही भूख-प्यास ने हौसले पस्त करने शुरू कर दिये। सबने आपस में जूस और पानी बाँटे। आगे न कोई दुकान, न कोई सीधा रास्ता जिस पर चल कर पोलैंड या हंगरी के किसी शहर के एयरपोर्ट पर पहुँच कर अपने देश वापस लौटा जा सके। इस जत्थे के साथ किनारे-किनारे फैले हरे पेड़ों का रंग सिलेटी हो चुका था, वे बर्बादी का शोक मना रहे थे। मिट्टी का रंग काला पड़ गया था। आसमान से कहर बरस रहा था। काफी दूर चलने के बाद पेड़ों के झुरमुटों में पूरा झुंड बैठ कर सुस्ताने लगा। कुछ छतनार पेड़ भी थे जिनकी पत्तियाँ खूब बड़ी-बड़ी थीं। ऐसी पत्तियों पर पुराने जमाने में सन्देश लिख कर भेजे जाते थे। प्राची पेड़ से गिरा हुआ एक बड़ा-सा साबुत पत्ता उठाकर उस पर उँगली से लिखने लगी– ''मम्मी, मैं यहाँ ठीक हूँ, चिन्ता न करना।'' आँखों में उतरे जज्बात वो अपनी पलकों से ढँकने लगी।

''हम्म... जैसे तुम्हारा ये पैगाम मम्मी तक पहुँच ही जाएगा।'' एलीना ने उसके हाथ से पत्ता अपने हाथ में लेते हुए कहा।

''काश ये जादुई पत्ता बन जाए और मम्मी-पापा तक पहुँच कर बता दे कि उनकी प्राची फिलहाल एकदम ठीक है।''

अभिषेक ने उन दोनों से पत्ता अपने हाथ में लिया और फूँक मार कर उड़ा दिया, जैसे कुछ पल के लिए वो अपने वतन उड़ गया। इस काल्पनिक उड़ान से दिल को सुकून भी न मिल पाया कि बादलों में जोरदार गड़गड़ाहट होने लगी। देखते-देखते नीला नभ काले भयावह रंग में तब्दील हो गया। दूर कहीं चिंगारियाँ उठ रही थीं, मशीन गन की आवाजें तेज होने लगी थीं। प्राची की आँखों के सामने अँधेरा गहराने लगा और उसके कदम लड़खड़ाने लगे। अगर चिंगारियाँ उठनी बन्द नहीं हुईं तो पूरा जत्था रूसी आग की चपेट में आ जाएगा। फौरन रास्ता बदल कर बंकर की तलाश होने लगी।

प्राची की आँख खुली तो उसने देखा अँधेरा-सा छाया हुआ है, दिन है या रात ये समझना मुश्किल हो रहा था। बाहर का अँधेरा उसके मन पर काबिज हो रहा था। पथरीली जमीन, न कोई खिड़की, न कोई दरवाजा दिख रहा है। एक कोने में बिछी चटाई पर एक लड़की सिर में दुपट्टा लपेटे अपनी दोनों हथेलियों को जोड़ कर इबादत कर रही है। वीरान और पथराई आँखों से प्राची इधर-उधर देख रही है, उसे भी नहीं पता वो क्या देख रही है।

''वो लड़की नमाज पढ़ रही है।'' एलीना ने प्राची के चेहरे को पढ़ते हुए

कहा।

''अपने इस झुंड में से बहुत कम लोग दिख रहे हैं, बाकी लोग कहाँ गये?''

''तुमसे जो बातें कर रहा था... अर्नव, तेज धूप और लू बर्दाश्त नहीं कर पाया। उसे रास्ते में बुखार, फिर न्यूमोनिया हो गया था, न पानी मिला, न कोई डॉक्टर उपलब्ध हो पाया, डीहाइड्रेशन हो गया, दो दिन तक तड़पता रहा और फिर वो अगली सुबह उठ नहीं पाया। वो शायद बेंगलुरु से आया था। एक हैदराबादी जिसकी उल्टियाँ नहीं रुक रही थीं, वो रोते हुए कह रहा था कि उसकी माँ ने अपने गहने गिरवी रख कर उसे डॉक्टर बनाने का सपना देखा था। मेरी माँ मेरे न होने का सदमा बर्दाश्त नहीं कर पाएगी, उसका कोई और नहीं। टूटे-फूटे शब्दों में उसका ये आखिरी वाक्य उसके हलक में ही अटक गया था।'' बताते हुए एलीना अपने पैरों को अपने हाथों से दबाती हुई तलवों में पड़े छालों को सहला रही थी।

एलीना प्राची की हथेलियाँ अपने हाथ में लेती हुई आगे बोलने लगी, ''कच्ची पगडंडियों पर चलते हुए एक तालाब से हम सबने पानी पिया था, बिना ये विचार किये कि पानी गन्दा है या पीने लायक। रास्ते में एक जगह एक औरत आड़ू और अनार लिये जा रही थी, सबने वहीं खाकर भूख मिटाई। वो आसमान से आयी फरिश्ते-सी थी।''

''मुझे तो कुछ भी याद नहीं आ रहा, मैं यहाँ कैसे पहुँची?''

''मैंने तुम्हें नींद की दवा दे दी थी जब तुम्हारे पेट में दर्द हो रहा था। अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई का ये पहला प्रयोग था। बुरा लगा ये प्रयोग करके, लेकिन क्या करते, मजबूरी थी। वायुमंडल में धुएँ का जहर घुल गया था। सबके पेट में दर्द, चक्कर और मितली-सी आ रही थी। हम

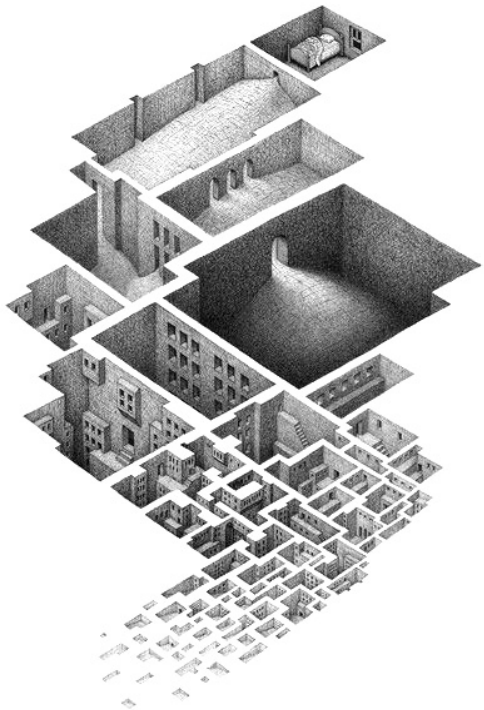

लोग बदहवास जाने कितनी दूर तक और देर तक चलते रहे। आगे एक लॉरी को रोका जिसमें गैस-सिलेंडर, बर्तन, गेहूँ, चावल की बोरियाँ, पानी के कैन और भी तमाम चीजें ठुँसी हुई थीं। उसी के एक कोने में सिर पर गीला चादर लपेट कर तुम्हें बिठा दिया गया था।'' एलीना बोल रही थी और प्राची अपनी वीरान आँखों से बंकर की उधड़ी दीवार को देख रही थी। अचानक पथराई हुई-सी, प्राची के मुँह से अजीब-सी आवाज निकलने लगी। ऊँ...ऊँ...आँ...आँ... की आवाज ऊँची होने लगी। उसके मुँह से निकलती विचित्र-सी आवाजें विलाप में बदल कर बंकर की गोलाकार दीवारों से टकरा कर ईको पैदा करने लगीं। उसकी आँखों की पुतलियों में वो दिन तैरने लगा– 'एक रोज जब वो स्कूल में खेलती-खेलती मैदान से कच्चे बीहड़ मैदान में चली गयी थी और पैर में काँच का टुकड़ा चुभ गया था और खून की धारा देख कर वो बहुत रोई-चिल्लाई थी। मम्मी-पापा को स्कूल आना पड़ा था। मम्मी की गोद पाते ही दर्द आधा हो गया था।' पुतलियों से दृश्य गायब हुआ तो वो अपने पैर में पड़े छाले को दबा कर उसमें चुभी फाँस निकालने लगी।

''मम्मी-मम्मी...।'' काँपती आवाज में कहते हुए उसने अपनी जबान से सूख गये तालू को तर किया।

फिर औचक एकदम चुप... निर्विकार, जैसे उसके शरीर में अब प्राण ही न बचे हों। प्राची का विलाप वहाँ मौजूद छात्रों की आँखों में सुनामी बन गालों से बह रहा था। कितनी-कितनी मुश्किलों को धकेल कर ये छात्र डॉक्टर और इंजीनियर बनने का सपना लेकर आये थे। अब सपनों की टूट-फूट के साथ उनके दिल के भी टुकड़े हो रहे थे।

बंकर में आने के बाद इन छात्रों की जिन्दगी तो काफी हद तक सुरक्षित हो गयी, लेकिन मन और ज्यादा असुरक्षित हो गया। मन में एक अलग तरह का युद्ध चल रहा था– अब हमारे सपनों का क्या होगा? वापस अपने देश पहुँच भी गये तो क्या इंजीनियरिंग और डॉक्टरी की पढ़ाई जारी रह पाएगी? यूक्रेन-रिटर्न छात्र को कौन इंस्टीट्यूशन एडमिशन देगा और

कौन कम्पनी नौकरी देगी? माँ-पिता ने इन बड़े-बड़े सपनों में पैसे इन्वेस्ट किये हैं, क्या वो रकम वापस मिलेगी? सन्तान का घर छोड़ कर परदेस जाने पर उनके दिल का खालीपन लौटाया जा सकेगा? क्या उन्हें लौटाये जा सकेंगे कतरा-कतरा इन्तजार के लम्हे?

इंसान को जब ये पता चल जाए कि वो मरने वाला है और उसे बचाने वाला कोई नहीं तो फिर मरने का डर, मर जाने से भी ज्यादा पीड़ादायक होता है। बंकर में रहना, उस एकाकीपन का एहसास है जैसे तूफान आने के बाद महासागर में निर्जन टापू में खड़ा एक अकेला व्यक्ति– खुद की हिफाजत करने में असमर्थ। बंकर के गलियारों में ही कमरे-नुमा वर्गाकार दीवारें थीं जिसके बीचों-बीच चटाई डालकर लोग सो सकते थे। कमरे-नुमा एक और जगह थी जहाँ खाने की चीजें– ब्रेड, बिस्किट, मठरियाँ, खजूर और कुछ फल रखे रहते थे पर अब वो जगह खाली हो गयी थी। पानी के कैन खाली होकर इधर-उधर लुढ़क रहे थे, जैसे ये खाली बर्तन भी युद्ध में मरे लोगों का शोक मना रहे हों। लुढ़के हुए खाने के बर्तन देखकर अपनी माँ के हाथ का खाना बहुत याद आता है। बहन का इसरार करके खिलाना याद आता है और पिता का सिर पर हाथ रख कर ये कहना– ''चिन्ता न करो, मैं हूँ न!'' पानी का खाली कैन बचपन के उस संसार में ले जाता है– जब पौधों की सिंचाई के लिए लगे पानी के पाइप वाले शॉवर से खुद को गीला करके पौधों के बीच मस्ती की जाती थी। आँगन की नाली बन्द कर पानी इकठ्ठा कर उसमें नहाना और छपक-छपक खेलना। इंसान को जब जो चीज नहीं मिलती, तब उसकी जरूरत बड़ी शिद्दत से महसूस होती है।

सुनने में आ रहा था कि दूतावास से खाने-पीने के पैकेट्स भिजवाये जाएँगे, पर कहाँ... कब... और कैसे?

खबरों के गर्म बाजार में 'ऑपरेशन गंगा' यूक्रेन में फँसे भारतीयों को निकालने का काम कर रहा है। 48 स्पेशल फ्लाइट से 1000 से ज्यादा भारतीय नागरिकों को वतन पहुँचा दिया गया है। कई भारतीय नागरिक अपने निजी प्रयास से भी बाहर आये हैं। हर दिन की रिपोर्ट टीवी चैनल वाले पेश कर रहे हैं कि कितने घंटों में कितने विमान यूक्रेन से भारतीय नागरिकों को ले आये, पर सवाल ये कि जहाँ रूसी मिसाइलें लगातार यूक्रेन को तहस-नहस कर रही हैं, ऐसे में नागरिक एयरपोर्ट तक पहुँचे कैसे? जो जिन्दा नहीं बच रहे, जो अपनी जान बचाने और अपने वतन लौटने के लिए छटपटा रहे हैं, उनके बारे में शायद कोई खबर नहीं बन रही है।

इंसान का अतीत उसके साथ साये की तरह चलता है। मुश्किल घड़ी में अतीत मन की परतों को खुरचता भी है। प्राची भी अपने अतीत की गलियों में हौले-हौले टहलने लगी।

''**झोपड़ी** में रहने वाले महलों के ख्वाब नहीं देखते।'' इसी जुमले से प्राची की मम्मी ने उसे हकीकत का कड़वा घूँट पिलाया था। ख्वाबों की दुनिया से जलती जमीन पर ला पटका। प्राची खिड़की से बाहर देखती रही जैसे उसने कुछ सुना ही न हो।

''हम लोग तुम्हारे बगैर कैसे रहेंगे, तुम हमारी इकलौती सन्तान। यूक्रेन कैसा देश है, हमें तो ये भी नहीं पता। वहाँ कोई अपना नहीं होगा।'' प्राची के ख्वाब के खिले फूल मुरझा डालने के लिए इस तरह की तमाम बातों के तीर उन्होंने चलाये।

''इतने कम खर्च में कोई शहर एमबीबीएस नहीं करा सकता। मम्मी! मेरे साथ अन्य लड़कियाँ भी हैं, कुछ लड़कों का भी सिलेक्शन हुआ है। रिद्धिमा की माँ तो कुक हैं, पापा कारपेंटर हैं, वो भी जा रही है। अभय भी मेरी तरह एमबीबीएस करने जा रहा है। आप सिर्फ रुपयों का बन्दोबस्त कर दीजिए, बाकी मैं सँभाल लूँगी।''

प्राची के लिए इतना आसान न था अपने मम्मी-पापा को समझाना। पापा तो मान भी जाएँ पर मम्मी को बस यही लगता है कि उनकी उँगली छूटी कि बेटी मुसीबत में फँसी। वो हर वक्त ममता की छतरी ताने खड़ी रहती हैं।

''बैंक अकाउंट में 40 लाख रुपए की श्योरिटी दिखानी है, उसके अलावा आने-जाने का खर्च, रहने का बन्दोबस्त। कहाँ से हम इतनी रकम लाएँगे, घर के लोन चुकाने के लिए तेरे पापा जीपीएफ से पहले ही पैसे निकाल चुके हैं।'' विनीता यानी प्राची की मम्मी मैथी की पत्तियाँ तोड़ने लगीं।

''यहाँ रह कर पढ़ूँगी तो खर्च ज्यादा आयेगा मम्मी! दरअसल आपको खर्च से ज्यादा दिक्कत मेरे खारकीव जाने से है। आप अपने एकाकीपन से डर रही हैं। ये कहिए मेरे बिना आप रह ही नहीं सकतीं, पर कब तक आप अपने आँचल से मुझे बाँध कर रखेंगी?''

''सुना है कोरोना की दूसरी लहर बहुत खतरनाक है, बाहर की कंट्री में लोग मर रहे हैं।''

''कोविड तो किसी भी जगह, किसी को भी हो सकता है।''

इस तरह के वाद-विवाद का सिलसिला विनीता और प्राची के बीच कई दिन तक चलता रहा। शाम ढले रविराज त्यागी थके-हारे दफ्तर से जब घर लौटते तो शाम की चाय के साथ तीनों बैठते और कड़क चाय के स्वाद में प्राची दिन-भर

की तल्खी भुला देती। उतरती साँझ के साथ घर में सौहार्द्र का नारंगी रंग भर जाता। बस ये थोड़ी देर के लिए। रात की आमद के साथ उसका मन विकल होने लगता कि अगर सच में पैसों का इन्तजाम नहीं हुआ, मम्मी ने हामी नहीं भरी तो क्या होगा? उसका एमबीबीएस करने का सपना खाक में मिल जायेगा।

टेक्नोलॉजी युवाओं के ख्वाबों को सुनहरे पंख देती है तो उन्हें साकार करने के लिए जुझारू बना कर रास्ते भी दिखाती है। सोशल मीडिया के माध्यम से प्राची ने कुछ क्राउड-फंडिंग की। NOC और वीजा के लिए अच्छी-खासी मशक्कत की। अचानक उसके मोबाइल की स्क्रीन पर चमका– 'मौसी कॉलिंग।' बस... फिर क्या था प्यासे को जैसे कुँआ मिल गया!

प्राची का कई दिन का पसीजता दु:ख बह निकला। ''मौसी! अपनी मेडिकल की पढ़ाई के बाद आपको ये रकम लौटा दूँगी।'' कई दिनों की छल-छल आँखों की नदी गालों पर बह गई। मौसी बीस लाख रुपए उसके अकाउंट में डालने को राजी हो गयीं। इतने पर तो प्राची जैसे बादलों के बीच पहुँच गयी, रुई से धुने शफ्फाफ बादल को चीरती हुई वो उड़ने लगी।

कुछ रकम अपनी दोस्त से उधार ली, कुछ बैंक लोन, बची-खुची रकम मम्मी-पापा ने डाली। किसी तरह से बीस लाख रुपयों का और इन्तजाम हो गया था। प्राची के लिए इतनी बड़ी रकम का इन्तजाम करना सूखी नदी में बाढ़ लाने जैसा कठिन था।

मेडिकल कॉलेज को जब ये भरोसा हो गया कि कैंडिडेट अपनी पढ़ाई का खर्च उठा सकती है तो कॉलेज से अप्रूवल आ गया कि जल्द आकर कॉलेज में एडमिशन ले लें।

माँ-बेटी के बीच के तर्क-वितर्क अब संकल्प और ममतामयी संवाद में बदल गये। घर में ड्राइ-फ्रूट लड्डुओं के थाल सजने लगे। प्राची के लिए नये-नये ड्रेस लाये गये। और फिर एक रोज विनीता की आँखों में समन्दर भर गया और प्राची समन्दर पार उड़ गयी।

एक तरफ ख्वाबों का जहाँ, तो दूसरी तरफ मुश्किलों का जहाँ होता है, दोनों की गहरी दोस्ती है। कुछ घंटों में घड़ी की सुई पीछे करनी पड़ी, रात शाम में ढल गयी। हवा का रुख बदल गया, देश बदल गया, जलवायु बदल गयी। अजनबी चेहरों का महासागर। प्राची को सबसे पहला झटका लगा जब वो हिन्दी-अँग्रेजी मिक्स बोल रही थी और टैक्सी वाला टंग-ट्विस्ट कर देने वाली भाषा बोल रहा था, ''गिदै ते खोचिस्पैथी...।''

''खारकीव नेशनल मेडिकल यूनिवर्सिटी'' प्राची ने अन्दाजा लगाया, कहाँ जाना है, और जवाब दे दिया।

होस्टल के एक कमरे में दो बेड लगे थे, खिड़की से अजनबी हवाओं की आमद हो रही थी, रूम में एक अजनबी नीग्रो लड़की से परिचय की कोशिश हो रही थी।

अगली सुबह प्राची की नींद खुली तो मन जैसे मुम्बई के उल्हासनगर में छूट गया हो। बदन परदेस की नयी आबो-हवा सहने में नाकाम रहा। बड़ी मुश्किल से खुद को उठा कर खिड़की तक ले गयी। सूरज का सिन्दूरी रंग जंगले से झर-झर कर कमरे में बिखर रहा था, दिल किया कि कमरे में झरती कणिकाओं को अपनी हथेली पर रोपती हुई यूँ ही बैठी रहे, पर बदन पर जैसे भारी बोझा लाद दिया गया हो। वो फिर से जाकर बिस्तर पर पड़ गयी। लगता है बुखार तेज हो रहा है, थर्मामीटर निकालने की गरज से सूटकेस खोला तो पता चला कि फर्स्ट-एड-बॉक्स तो है ही नहीं। थोड़ी देर अधलेटी-सी बिस्तर पर पड़ी रही। घर याद आया। मम्मी का हाथ उसे अपने सिर पर महसूस हुआ।

रसोई में बोझिल कदमों से जाकर पानी गर्म कर अपने लिए कॉफी बनायी, अपनी रूम-मेट को इशारे से ऑफर किया। उसने पहले तो एकदम ब्लैंक लुक दिया, उसने ना और हाँ के बीच सर हिलाया। प्राची ने उसे 'ना' समझा और खुद कॉफी के मग में अपनी उदासी घोलने लगी।

मेडिकल कॉलेज जाकर रजिस्ट्रेशन करवाना था, पर तेज होता बुखार स्पीड-ब्रेकर की तरह अड़चन पैदा कर रहा था। इशारे से अपनी रूम पार्टनर से थर्मामीटर माँगा तो उसने फिर वैसा ही ब्लैंक लुक दिया और टिशू पेपर में लिपटा चिकन बर्गर खाने लगी। खाते वक्त वो अपने बालों को झटकती तो उसके बालों के घूँघर छितरा कर छाते की तरह खुल कर फिर जस के तस हो जाते।

''इससे तो दवा या डॉक्टर के लिए पूछना भी बेकार है!'' सोचते हुए ऑनलाइन मेडिकल स्टोर और ब्रेड-दूध की दुकान सर्च करने लगी। जलती और बोझिल पलकों में कब नींद का पहरा लग गया, कब मोबाइल हाथ से छूट कर बिस्तर के कोने में गिर गया, उसे कुछ खबर नहीं लगी।

प्राची की नींद खुली तो पेड़ों की झुरमुटों पर साँझ उतर रही थी। उसकी आँखों में अँधेरा उतर रहा था। लगता है मम्मी-पापा खूब याद कर रहे हैं। उन्हें अगर अपनी तबीयत खराब होने का बताया तो बस... मम्मी तो वापस लौट आने की बात करेंगी। फीकी-सी मुस्कराहट की दर्दीली रेखा प्राची के चेहरे पर तिर आयी। पराये मुल्क की ये पहली सीढ़ी थी, आगे न जाने कितनी दुश्वार सीढ़ियाँ चढ़नी हैं!

उसने जैसे-तैसे एक डॉक्टर खोजा। जिसका प्राची को सन्देह था, वही हुआ। कोरोना-पॉजिटिव। 'सिटी काउन्सिल, खारकीव' से कोरोना प्रोटोकॉल पालन करने का फोन आया, तब उसका दिमाग झनझनाया कि अभी तो पूरी तरह से रूम में सेटल भी नहीं हुई है। आइसोलेटेड रहकर खाने-पीने की बेसिक व्यवस्था कैसे करेगी? बिस्किट का पैकेट तक नहीं है उसके पास।

''क्या तुम्हारे पास ब्रेड या पास्ता होगा? या फिर कोई फोन नम्बर जहाँ से कुछ खाने की चीज मँगवा सकूँ?'' प्राची ने अपनी विवशता और मायूसी को बाहर धकेलने की कोशिश की।

रूमी ने अपनी काली आँखें उस पर ऐसे ठहरा दीं जैसे वो कोई अजूबा हो, जबकि अजूबा वो खुद थी। छोटी नाक, गहरे सिलेटी रंग की त्वचा, आँखों के नीचे गहरा कालापन जैसे गालों के ऊपर भी काजल लगा रखा हो।

अजीब लड़की है। किसी बात का जवाब ही नहीं देती। कॉलेज ज्वाइन करने के बाद सबसे पहले अपना रूम मेट चेंज करूँगी। सोचते हुए प्राची तुअर की दाल और बासमती चावल का पैकेट खोलने लगी, जिसे मम्मी ने आते समय जिद करके रख दिया था। बस वही खाकर कोरोना से लड़ना है। ये उसने अपने मन को समझा लिया।

यादों के दरिया से प्राची बंकर के जलते हकीकत में लौट आयी। उसने देखा कि उसकी हथेली पसीने से तर है और बेचैनी महसूस हो रही थी। उसने पानी की कैन के नीचे ग्लास लगाया तो दो-तीन बूँद पानी ही टपका, कैन खाली। ये वैसे ही है जैसे वहाँ के छात्रों को निकाल कर वतन पहुँचाने की व्यवस्था तो की जा रही है, लेकिन लोग वतन पहुँच नहीं पा रहे।

प्राची ग्लास के दो-तीन बूँद पानी अपनी जीभ पर रख कर होठों पर फिराते हुए नम कर रही थी, तभी एक अनजान चेहरा दिखाई दिया। उसके हाथ में आधी खाली पानी की बोतल थी, उसने प्राची को बोतल थमायी और बंकर के गलियारे में कहीं गुम हो गया। प्राची मुड़ कर उस अजनबी को जाते हुए देख रही थी कि अचानक चीखने-चिल्लाने और दूर से धमाकों की आवाजों से बंकर जैसे थरथराने लगा। ''भाग प्राची! चल जल्दी। रूस की सेना को इस बंकर की खबर लग चुकी है।'' एलीना की हस्की और बेस वाली आवाज एकदम पतली हो कर चीं-चीं कर रही थी। बंकर में पनाह पाये तमाम छात्र एक-दूसरे को बचाते हुए इधर-उधर भाग रहे थे, कुछ फौजी उन्हें सहारा देते हुए बंकर के दरवाजे की ओर धकेल रहे थे। इनकी आँखों में डर की चिंगारियाँ धधक रही थीं।

प्राची बंकर का एक कोना पकड़ कर चुपचाप भागते हुए लोगों को देख रही थी, पर उसकी आँखें कुछ खोज रही थीं। एलीना लगभग भागती हुई आयी और उसका हाथ पकड़ कर घसीटते हुए दरवाजे की ओर ले जाने लगी।

''मरना है क्या तुझे? जल्दी चल यहाँ से। सब लोग लॉरी में भर कर जा रहे हैं। किसी भी वक्त या तो हम लोग रूस के कब्जे में आ जाएँगे या तो बंकर को मिसाइल से नष्ट कर दिया जाएगा।''

''जहाँ जा रहे हैं वहाँ क्या हम सब मरने से बच जाएँगे? खारकीव की कोई जगह अब सुरक्षित नहीं है।'' कहते हुए प्राची लॉरी के विपरीत बंकर की ओर चलने लगी।

''प्राची तुम पागल हो गयी हो। उल्टी तरफ क्यों जा रही हो? चलो हमारे साथ।''

''उलटी नहीं, सीधी तरफ जा रही हूँ।'' सामने बुलेट प्रूफ आर्मर पहने एक फौजी खड़ा था, जिसकी आँखें नम थीं, इसी शहर में उसकी माँ अभी रहती हैं। हैं नहीं अब, थीं... पर वो उनके पास आखिरी दर्शन के लिए नहीं जा सका। वो अपनी ड्यूटी से आबद्ध है।

एलीना ने आकर फिर से प्राची का हाथ पकड़ लिया लेकिन इस बार फिर उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। वो उस फौजी की ओर देखती रही। प्राची की आँखों में कुछ था जिसे शब्दों में बयाँ करना मुश्किल था।

''मैं यहाँ से इसे छोड़ कर नहीं जाऊँगी। जब मेरी साँसें धौंकनी की तरह चल रही थीं, हलक सूख रहा था, प्यास से बेचैन थी तो इसी व्यक्ति ने मुझे पानी दिया था, जिससे मेरी साँसों की रफ्तार ठीक हुई थी।'' प्राची की आँखें फौजी की आँखों से जुगलबन्दी कर रही थीं। एलीना की आँखों में गुस्से की ज्वाला थी, ''युद्ध के समय जज्बात निहायत मूर्खता है।''

ड्राइवर ने लॉरी स्टार्ट की। एलीना की चिचियाती आवाज प्राची के कानों में गूँजती रही– ''चलो भागें यहाँ से, वरना हम सब मर जाएँगे।'' पता नहीं प्राची खारकीव में है या नहीं, कोई नहीं जानता। वो बंकर बचा है या रूस के गोले-बारूद की भेंट चढ़ गया, कोई नहीं जानता। प्राची की मम्मी रोजाना न्यूज चैनल देखती हैं और उम्मीद का दिया जलाती हैं कि आज के समाचार में शायद उल्हासनगर की लड़की की खबर मिल जाए, पर उनकी उम्मीद की लौ कब तक जलेगी, कब इसमें रोशनी भभकेगी या इन्तजार का ये चिराग बुझ जायेगा, ये कोई नहीं जानता।

❑

मो. 8369051596

❑ कहानी

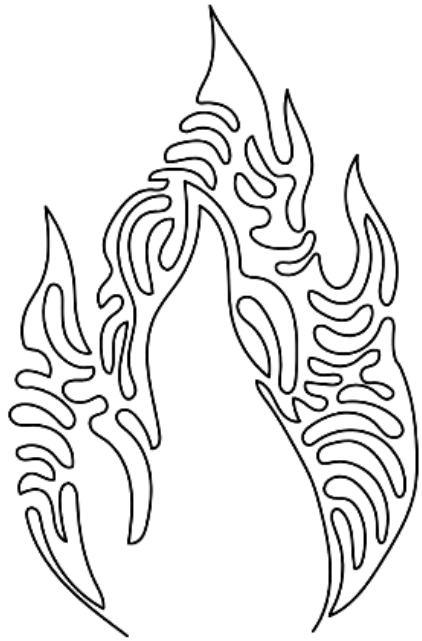

पापा जल रहे हैं

इन्दिरा दाँगी

''**अब** तक टिफिन नहीं दिया; अब जा रहा हूँ।'' गैलरी में जूते का फीता बाँधते वंश ने कहा।

''बस, ये हो गया! आज स्कूल बस देर से आयी तो बच्चों को स्टॉप पर अकेले छोड़कर भी कैसे लौट आती? ये लीजिये।''

टिफिन लेकर आगे बढ़ते पति के कदम यक-ब-यक थम गये।

''ये साड़ी!''

सामने खड़ी सद्यःस्नाता पत्नी, सितारों और लहरियादार भूरी साड़ी पहने हुए है।

''कल साड़ियों को धूप दिखायी थी तो एक निकाल ली पहनने को। शादी की साड़ियों की बरसों से तह नहीं खुली। आप क्या सोच रहे हैं? देर नहीं हो रही ऑफिस को अब?''

उत्तर में पति ने कुछ नहीं कहा; बैग उठाया और चले तो फिर मुड़कर नहीं देखा। वो प्रशंसा के दो बोल सुनने को तरसी, सोचने लगी कि पति का बर्ताव इतना अनमना-सा क्यों हो चला है–

–टेबल पर काम ज्यादा है क्या आजकल?

–इतना बड़ा होम-लोन ले तो लिया है; अब अन्दर-ही-अन्दर घुलते होंगे!

–कल अम्मा का फोन आया था! जब भी वे बात करती हैं, वही सब इनके दिमाग में घूमने लगता है फिर! तूने अपनी सब जीवन-पूँजी लगाकर वहाँ गुजरात में घर क्यों खरीद लिया? दो बेटियाँ ही तो हैं तेरी; कौन बेटा है तेरा जिसके पास रहेगा? इससे अच्छा, अपने भतीजे की पढ़ाई में पैसे लगाता; नौकरी के बाद तो तुझे यहीं आना है वापिस!

हाँ, शायद इसीलिए आजकल ऐसा लगता है जैसे ये साथ होकर भी कहीं जा चुके हैं या जाने वाले हैं!

उसने विचारों को झटक कर झाड़ दिया और घर के कामों में लग गयी।

दिन दूसरे दिनों जैसा ही चल रहा था– व्यस्त और सुखी।

दोनों बेटियाँ स्कूल से लौट आयीं।

''मम्मा, खांडवी खानी है।'' चार साल छोटी मनु ठुनकी।

''मैं दही ले आऊँ दुकान से?'' बड़ी पाँच साल की तनु सयानों की तरह पूछती है।

''तुम दोनों यूनिफॉर्म बदलो; मैं लेकर आती हूँ।'' बेटियों की सुरक्षा ही इस माँ का जीवन है। वो पर्स उठाकर दही लेने चली गयी।

दुकान पर पड़ोसन कोकिला मिली है। हमेशा की तरह आगे बढ़कर बात करती है–

''बड़ी सुन्दर साड़ी पहनी है; लगता है शादी की साड़ियों में से है। इन साड़ियों का और होता भी क्या है! ठीक किया जो निकाल ली! मैं भी सोच रही हूँ...''

'इसको सब जानना है; सबसे मतलब है!' सरगम अपनी निजता के दर्प में कुछ न बोली। दही लेकर लौट चली अपने घर।

मध्यप्रदेश के एक छोटे कस्बे देवास की अपनी ससुराल में तो वह महीनों तरस जाती थी बाहर का सूरज देखने को। दिन-रात काम में खपे रहो और फिर भी सास-जेठानी की आँखों में इल्जाम कि सिर्फ बेटियाँ ही क्यों जनीं? और जेठानी तो अपने बेटे को उससे ऐसे बचाती थी कि उसे खुद ही भय लगने लगा था इस सब-कुछ से। इसीलिए जब पिछले बरस पति ने एक बड़ा होम लोन लेकर गुजरात में स्थायी रूप से बसने की इच्छा व्यक्त की तो मानो उसके जीवन की सबसे बड़ी मनोकामना पूरी हुई। गुजरात आने के बाद, अब दही ले आना भी उसी के हिस्से के कामों में आ मिला है। और आज-कल तो चुप-चाप उसके भीतर एक दुस्साहस जम रहा है कि स्कूल में पढ़ाने के लिए अपना बायो-डाटा बना ले और किसी तरह पति को मनाये!

गृहस्थी में रमी सरगम बेटियों को बनाकर परोस रही है। ये छोटी खाती कम है, खेल ज्यादा करती है। माँ अपने हाथ से खिलाने लगी।

बेटियों के साथ कार्टून देखती वो भी हँस रही है– इससे अपरिचित कि आज क्या अनहोनी होनी है!

मोबाइल फोन की घंटी बजती है।

''नहीं!!''

पति के एक्सीडेंट की खबर सुन उसके पाँव तले की जमीन खिसक गयी। कुछ पल वह सदमे की हालत में खड़ी की खड़ी रह गयी।

''मम्मा! मम्मा!'' बेटियों ने हिलाया तो वो अपने में लौटी।

''तुम दोनों घर में ही रहना। कोई जरूरत हो तो सामने आनन्दी बेन आंटी के यहाँ चली जाना। तनु, तुम मुझे फोन लगा लोगी न?''

''हाँ, मम्मा।''

वो पर्स लेकर अब स्कूटर की चाबी उठा रही है। दोनों बेटियाँ उसके परेशान चेहरे को देख रही हैं, ''मम्मा, आप कहाँ जा रही हैं?''

''तुम्हारे पापा को हॉस्पिटल ले जा रहे हैं। तुम दोनों बहनें अन्दर से कुंडी लगाकर रहना।''

निकलने से पहले उसने पड़ोसन आनन्दी बेन से निवेदन किया कि दोनों बच्चियों से बाखबर रहे।

अस्पताल पहुँची तो पति आईसीयू में थे। ऑफिस जाते एक्सीडेंट हुआ। तत्काल ऑपरेशन करना पड़ेगा– जो प्राण बचाने हैं तो!

काउंटर पर उससे कहा जा रहा है, ''आप सिग्नेचर कर दीजिये। और ये अमाउंट लिखा है जो आपको जमा करना है।'' अस्पताल वालों ने कहा तो एकाएक उसे सूझा ही नहीं, अब क्या करे?

पति के ऑफिस फोन लगाया। फिर अपनी ससुराल फोन लगाया। जेठानी ने उसकी तीन लाख पचहत्तर हजार रुपयों की तत्काल जरूरत को सुना, फिर फोन रख दिया।

एक घंटे के अन्दर पति के सहकर्मी आ गये। वे पचहत्तर हजार रुपये साथ लाये थे, कम्पनी के खाते से पचास हजार की सहायता राशि और पचीस हजार आपस में चन्दा करके।

लेकिन बाकी तीन लाख कहाँ से आएँगे– सो भी तत्काल?

पति की कुल जमा-पूँजी तो उस डुप्लेक्स में लग चुकी जो पिछले साल फाइनेंस करवाया था। घर में कोई कीमती सामान भी नहीं अब तक इस फेर में कि जल्दी-से-जल्दी लोन का बोझ कम करना है।

'जेवर? हाँ, जेवर तो हैं! और ऐसे ही आड़े वक्त के लिए हैं।'

वो भागी घर।

दोपहर का सन्नाटा है।

दरवाजे के बाहर तक ही पहुँची है; बेटियों के रोने की आवाजें बाहर तक आती हैं।

''मम्मी! लाइट चली गयी है और आपने दरवाजा खोलने को मना किया था तो मनु रोने लगी।''

''तो तुम क्यों इसके साथ रोने लगीं? सामने आनन्दी बेन आंटी के यहाँ चली जातीं बहन को लेकर।''

''हम गये थे पर आंटी के यहाँ ताला लगा था। तो इसको घर में वापिस लाकर कुंडी बन्द की तो ये रोने लगी!''

''अच्छा!''

उसने खिड़की से पड़ोस का घर देखा जहाँ ताला लगा है अब। जबकि वो आनन्दी बेन को सब-कुछ बताकर और निवेदन करके गयी थी। रोज जिससे दुआ-सलाम का नाता है और आये दिन जो कुछ-न-कुछ उधार ले ही जाती है।

क्या परदेस में कोई अपना नहीं होता?

''चलो तुम दोनों भी साथ में हॉस्पिटल।''

वो अन्दर जाकर जेवर उठाने लगी कि दरवाजे पर आहट है। सामने दो घर दूर वाली पड़ोसन कोकिला है।

''आप बाद में आना कोकिला बेन। अभी कुछ इमरजेंसी है।''

''वही पूछने आयी हूँ कि कोई परेशानी तो नहीं! अभी बिट्टू ने बताया, आपके घर से तनु-मनु के रोने की आवाज आ रही थी सड़क तक!''

''नहीं वो तो...'' अब वो सोच रही है बताये कि रहने दे!

''कोई परेशानी हो तो बताना; हम हैं न!''

''कोकिला बेन! किसी सुनार का पता बता देंगी? हम तो जबसे यहाँ शिफ्ट हुए-सुनार के यहाँ जाने का मौका ही नहीं आया।''

कोकिला ने आगे बढ़कर सहायता की। अपनी बड़ी बेटी को सरगम के घर पर उसकी दोनों बेटियों के पास बैठा गयी और एक विश्वस्त सुनार के पास सरगम के साथ पहुँची। सुनार सब बात सुन कहता है, ''बहन जी, चीजें आप गिरवी रख जाईये। जब आपके पति ठीक हो जाएँ तो अपने जेवर उठा ले जाइयेगा।''

''नहीं भाईसाहब! वे ठीक हो जायेंगे तो जेवर तो नये वे बनवा ही देंगे।''

जेवर बेचकर मिले हैं तीन लाख सत्ताइस हजार। वे लौट आयीं।

सरगम ने बेटियों को साथ लिया और घर की दरवाजे-खिड़कियाँ जब वो बन्द कर रही थी, एकाएक जैसे मकान के वास्तु ने उससे कहा, अब यहाँ लौटना न हो सकेगा! एकाएक घर का सब सामान पराया-सा लगा जैसे इसे बस उठाया जाना बाकी है! शायद वह सदमे में है, उसने सोचा। बाहर का ताला लगाया और आगे बढ़ने से पहले पलटकर अपने घर की तरफ देखा।

कोकिला को घर की चाबी देते हुए बोली, ''पता नहीं कब लौट पाऊँ अब मैं; शाम को दिया-बाती कर दें, बस यही निवेदन है।''

''इससे निश्चिन्त होकर जाओ। और कोई जरूरत हो तो बताना। बड़ी बेन है तुम्हारी यहाँ!''

सरगम उसके गले लग गयी। वक्त निकल जाता है, बात रह जाती है!

बेटियों को लिये वो अस्पताल पहुँची। काउंटर पर रकम जमा की तब ऑपरेशन आरम्भ हुआ।

वो बार-बार फोन लगा रही है। कोई फोन क्यों नहीं उठा रहा? आखिर आठवीं बार का कॉल उठाया उस तरफ से जेठानी ने।

''तुमको तो पता है सरगम, इनका

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित

चतुर्वेदी चन्द्रिका

सामाजिक बदलाव के 125 साल

डॉ. विनीता चौबे

मूल्य ₹ 350/-

'चतुर्वेदी चन्द्रिका' का आगाज ऐसे समय में हुआ, जब एक ओर अँग्रेजों का शासन था तो दूसरी ओर हिन्दी भाषीय पत्रिकाएँ अपने शैशवकाल में ही थीं। सन् 1890 में माथुर चतुर्वेदी समुदाय की दीर्घजीवी मासिक पत्रिका 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' का प्रारम्भ हुआ। तब से अपनी सतत् 130 वर्षों की ऐतिहासिक यात्रा में पत्रिका ने माथुर चतुर्वेदी समुदाय को जोड़ने, हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार, सामाजिक जागरूकता और साक्षरता को बढ़ावा देने, सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारियों के संकलन और शिक्षा, साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में अद्वितीय अवदान देने वाले व्यक्तित्वों से समाज को रूबरू कराने वाले असाधरण कार्य किये हैं। 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' पत्रिका की यह दीर्घजीवी यात्रा बेहद बहुआयामी तथा श्लाघनीय है। सामुदायिक पत्रिका होते हुए भी इसने अपने समकालीन सभी राष्ट्रीय पत्रिकाओं के समानान्तर अपनी उपयोगिता सिद्ध की है। 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' पत्रिका के 250 से ज्यादा अंकों का गहन अध्ययन और विश्लेषण कर इस शोधपरक कृति में 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' पत्रिका की सम्पूर्ण यात्रा का विवरण उपयुक्त तथ्यों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

धन्धा ठीक से चलता नहीं। घर है सो किराये का। हमारा मोक्ष ही अपनी पढ़ाई एजुकेशन लोन पर कर रहा है। हमारा हाथ तो ऐसे ही तंग रहता है। उल्टा वंश भैया से ही हम उम्मीद करते हैं मदद की। तो अब तुम खुद ही इन्तजाम कर लो रुपये-पैसे का। यहाँ बार-बार फोन मत करो।''

''आप भाईसाहब से मेरी बात करवा दीजिये।''

''ये और अम्मा तो आज सुबह ही चले गये– चार धाम की यात्रा पर।''

उधर से कॉल डिसकनेक्ट कर दिया गया।

सरगम ने विदिशा अपने मम्मी-पापा को कॉल लगाया। पाँच बेटियों के वे बूढ़े माता-पिता अपनी सबसे बड़ी बेटी को कभी सान्त्वना दे रहे, कभी आप ही रो रहे।

अब सरगम सब सहारों से आस छोड़ आसमान की तरफ देख रही है। अपने सब पुण्य अर्पित कर वह पति का जीवन माँग रही है। ...और आसमान चुप है!

ऑपरेशन चल रहा है। उसे एकदम से याद आ रहा है– पिछले दिनों जब सब ऑफिस वालों के परिवारों की पिकनिक थी और वंश साँप के काटने से बाल-बाल बच गये थे, उस रात उन्होंने उससे वचन लिया था, ''अगर कभी अचानक से मेरी मौत हो जाए तो मेरा दाह-संस्कार महाकालेश्वर में करना। सुनते हैं, अकाल मृत्यु महाकाल के चरणों में जाकर मोक्ष पा जाती है। मुझे वहाँ ले जाना– तुम्हें मेरी कसम!''

वे ऐसा क्यों कह रहे थे; क्या उनके मुँह से होनी बोल रही थी? अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होय? नहीं-नहीं! हमने किसी का क्या बिगाड़ा है जो हमारे साथ बुरा होगा! ये ठीक होकर घर आ जायेंगे! अपने को यों समझाते उसका मन भीतर से दो हिस्सों में बँट गया है– एक वो मन जो कुछ सोचना नहीं चाहता सिवाय शुभकामना के; और दूसरा वो मन जो अपने को जैसे तैयार कर रहा है–

अगर आगे इस दुर्घटना के बाद इनकी नौकरी जाती रही तो? ...तो? मन एकदम मजबूती से उत्तर देता है– 'तो आगे जीवन का हर क्षण इनकी सेवा है! सा भार्या या पतिप्राणा!'

लेकिन अगर इनका जीवन ही न रहा तो? हृदय काँपता है! जैसे किसी पहाड़ से हथेलियाँ फिसलती हैं। अब कोई साफ उत्तर अन्दर से नहीं आता। वो रो भी रही है और अपने को भरसक चुप भी बनाये हुए है।

पति के सहकर्मी दिलासा देते, कल आने का वादा करते एक-एक कर चले गये। दोनों बेटियाँ ऑपरेशन थियेटर के बाहर खेल रही हैं। अस्पताल के कॉरिडोर से आसमान में शाम उतरती दिख रही है। परिन्दों के लौट जाने का समय है ये। वो देख रही है, सूरज डूब रहा है।

डॉक्टर ऑपरेशन थिएटर से बाहर निकले। सरगम उम्मीद से उनकी तरफ दौड़ी।

''आई एम सॉरी। पेशेंट को इतनी ब्लीडिंग हो चुकी थी!''

''मतलब?''

''ही इज नो मोर!''

''नहीं-नहीं! ऐसे कैसे? ऐसे कैसे?''

जब तक मृत देह ऑपरेशन थिएटर से बाहर निकाली गयी, वह पगली-सी यही दोहराती रही।

कितनी देर रोये सरगम– सामने दोनों बेटियाँ रो रही हैं। अस्पताल वाले अब उसे डेड बॉडी को तुरन्त यहाँ से हटाने को कह रहे हैं। बहते आँसुओं को पोंछने का भी समय उसके पास नहीं है।

'ओ समय महान! तुम कितने निष्ठुर हो!'

पति का मृत्यु प्रमाण-पत्र जब उसे दिया जा रहा है, वो अपने पिता को कॉल कर रही है। ''पापा, वे कसम देकर गये हैं; महाकालेश्वर उज्जैन के श्मशान घाट ही जाना चाहते हैं!''

''तुम निकलो, हम पहुँच जायेंगे किसी तरह!''

माँ बीच में बात रोकती हैं, ''इनकी शुगर इतनी बढ़ी हुई है; उठ नहीं पा रहे हैं! तुम बेटा, कुहू को फोन लगा लो; कुहू और प्रदीप जरूर पहुँच जायेंगे।''

अपने बहन-बहनोई को केरल फोन लगाने की उसने सोची नहीं तब।

वो बाहर अस्पताल परिसर में आकर शव वाहन खोज रही है; उसके लिए जो कभी उसे डोली में विदा करवाकर लाया था।

''महाकालेश्वर उज्जैन के श्मशान घाट तक चलने का कितना लोगे?''

''बीस हजार।''

''नहीं, रहने दो।''

वो दूसरी एक वैन की तरफ जाती है, पहली वाला पीछे आता है।

''आप पन्द्रह दे दीजियेगा।''

''मुझे दो गाड़ियाँ चाहिए। एक शव वाहन और एक साथ में छोटी वैन।''

''आप कितना दोगी?''

''बारह-बारह हजार।''

''मिलाकर पचीस हजार दे दीजियेगा। चलिए।''

''पचीस हजार!'' वो पल-भर को सोचती है। पर्स में कुल सत्ताइस हजार हैं। क्या बस एक शव वाहन ही करे किराये से? दोनों बेटियों पर वह एक नजर डालती है। वे सहमीं, पूरे माहौल से भयभीत, एक-दूसरे से चिपकी खड़ी हैं।

''ठीक है, पचीस हजार। चलिए।''

''डेड बॉडी कहाँ है?''

दोनों ड्राइवर आ गये।

वैन में दोनों बेटियों को बैठा दिया।

डरी-सहमी बेटियों को वो उनके जीवन भर के लिए, पार्थिव शरीर के साथ इस रात-भर लम्बी शव यात्रा की स्मृति से बचाना चाहती है।

''तनु, तुम और बहन सो जाना। मैं उस गाड़ी में साथ ही चल रही हूँ। आगे मेरी गाड़ी देखती रहना। अकेले डरना नहीं, मम्मा तुम्हारे साथ ही है। पापा भी!''

दोनों बच्चियाँ उससे किसी तरह अलग न होती थीं। मना कर, पुचकार कर, डाँट कर किसी तरह उन्हें उस छोटी वैन में चादर ओढ़ाकर लिटाया। सो जायेंगी वे अभी; अब अपने को मनाती-समझाती वो पार्थिव देह को लेकर शव वाहन में बैठी और दोनों गाड़ियाँ चल पड़ीं।

पीछे बेटियों वाली वैन आ रही है। जिन बच्चियों को कभी किराने की दुकान पर अकेले नहीं भेजा, वे आज रात-भर उस गाड़ी में अकेली हैं। और उनकी रक्षक माँ? वो भी तो अकेली है! निहत्थी भी! सरगम ने मृत शरीर का हाथ अपने हाथों में थाम लिया।

कितना ठंडा हाथ है! इस हथेली की गर्माहट से जिन्दगी में उजाला था! वो मृत हथेली में अपना चेहरा छिपाकर रोने लगी।

अचानक पीछे वाली गाड़ी ने अगली को तेजी से ओवरटेक किया और रुकने का इशारा किया।

उसका दिल धक्-से रह गया। क्या हो रहा है?

''आपकी ये दोनों बच्चियाँ तेज-तेज रो रही हैं।''

अब क्या करे युवती माँ? एकबारगी मन किया दोनों बच्चियों को भी अपने साथ शव वाहन में बैठा ले। जल्दी निर्णय लेना है, दोनों ड्राइवर खड़े उसे देख रहे हैं। भय और मोह क्षणों में भी भीतर की माँ कमजोर नहीं पड़ी। जीवन की इस रात का असर अपनी बेटियों पर कम-से-कम होने देना है!

''ठीक है। मैं इन दोनों के साथ रहूँगी। शव वाहन हमारे पीछे ले लीजिये।''

अब माँ-बेटियाँ एक वाहन में हैं और शव पीछे आते दूसरे वाहन में। जीवन में ये पहला अवसर है जब यह पत्नी, जो हर काम से पहले पति का चेहरा देखती थी, एक निर्णय लेकर उस पर कायम है। समय कब किसको नेतृत्व में ला देगा, ये तो समय ही जानता है!

एक घंटा लगभग बीता है। तनु सो गयी है। मनु गोद में चिपकी बैठी है।

''मम्मा, टॉयलेट जाना है।''

''अभी?''

''मुझे भी जाना है।'' तनु भी उठकर बैठ गयी।

जाना तो उसे भी है। अब दोनों बेटियाँ जब बार-बार कहने लगीं तो उसने न चाहकर भी छोटी खिड़की का काँच सरका कर ड्राइवर से बात की, ''आगे किसी सुलभ शौचालय पर गाड़ी रोक लीजियेगा।''

''अरे मैडम! यहाँ जंगल में कहाँ सुलभ शौचालय मिलेगा? आप झाड़ियों में कर आओ।''

उसने गाड़ी रोक दी। पीछे आता शव वाहन भी रुक गया। आज पति साथ होकर भी साथ नहीं हैं। वे पति जो पेट्रोल पम्प पर पेट्रोल भी भरवाते थे तो पत्नी और बेटियों को दूर खड़ा कर जाते थे!

माँ बेटियों को लेकर झाड़ियों की ओर चली गयी। इस बियाबान घोर जंगल में जंगली जानवर भी होंगे! कहीं निकट से रोती हुई-सी आवाजें आती हैं।

''मम्मा!'' छोटी बेटी डरकर उससे चिपट जाती है।

''कुछ नहीं है। चलो चलें।'' छिपकली देखकर भी कभी जिसकी चीख निकल जाती थी, इन हालात में वह सिंह का भी मर्दन करने का साहस रखती है... सिंह-वाहिनी माँ! संसार की माँ! एक माँ है जो सब माँओं में वास करती है!

उसने वाहन के निकट जाकर भीतर देखा, जहाँ शव है– 'ओ मेरे साथी!'

सड़क के दूसरी ओर खुले में खड़े होकर पेशाब कर चुके दोनों ड्राइवर अब बीड़ी पीते हुए बातें कर रहे हैं। रोना भी इस समय में खतरनाक हो सकता है। युवती माँ अपने भीतर सन्तुलन बनाये रखने के प्रयास करती, दोनों बेटियों के साथ वापिस आकर वैन में बैठ गयी है और दरवाजा भीतर से लॉक कर लिया है। ड्राइवरों को पुकारना उसने सही नहीं समझा और चुपचाप प्रतीक्षा करने लगी। बच्चियों ने अपने सिर उसकी गोद में रख लिये हैं।

''अब सो जाओ तुम दोनों।''

''मम्मा, भूख लगी है।''

''मुझे भी।''

दोनों बेटियाँ जब खाना माँगने लगीं तो उसने पर्स टटोला। एक पैकेट बिस्कुट, एक पैकेट ग्लूकोज और एक लीटर पानी की आधी खाली बोतल।

इस यात्रा में उसने पानी इसीलिए नहीं पिया क्योंकि वो इसे बेटियों के लिए बचाये है। पति के लिए इतने निर्जला व्रत रखे जीवन में, एक अपनी बेटियों के लिए सही!

बेटियाँ बिस्कुट खाकर लेट गयीं। बीड़ी पीकर दोनों ड्राइवर लौट आये और दोनों वाहन चल पड़े– आगे पत्नी-बेटियाँ, पीछे शव-पति!

और शिव और शव के बीच जो अंश होता है– वो आत्मा कहाँ है? सब जीवित और मृत... ये बियाबान घोर जंगल ...ये समूचा विश्व– क्या किसी विराट हथेली पर रखे खिलौने हैं सब?

वाहन अपनी रफ्तार में हैं। बेटियाँ उसकी गोद में गहरी नींद में चली गयी हैं। वो पीछे आते शव वाहन को एकटक

देखती जा रही है। तन्द्रा है, स्वप्न है कि कल्पना? पलकों में झिलमिल होतीं रोशनियों में वंश बगल में आ बैठे हैं।

''आप?''

वो हाथ बढ़ाती है कि...

कि झटके से गाड़ी रुक जाती है।

क्यों रुक गयीं गाड़ियाँ; वो चौकन्नी होकर देखती है।

एक ढाबा है; ड्राइवर खाना खाने उतरे हैं।

''मैडम जी, आइये खाना खा लेते हैं।''

''नहीं। हमें नहीं खाना।''

अब दूसरा ड्राइवर भी इधर को निकट आकर बोल रहा है, ''अरे बहन जी, अभी पूरी रात का सफर बाकी है। अस्पताल में तो आपने कुछ खाया नहीं होगा और दोनों लड़कियाँ भी तो भूखी होगी?''

''नहीं, हमारे पास खाना है। आप लोग खा आईये।''

उसने बहुत स्पष्ट स्वर में कहा तो वे दोनों चले गये।

ढाबे पर दो-तीन ट्रक रुके हैं। एक खाट पर कोई खुले बदन सो रहा है। चार-पाँच लोग खाना खा रहे हैं जो दिखने-होने में ट्रक-ड्राइवर जान पड़ते हैं। तीन लोग ढाबा संचालन कर रहे हैं; खाना बनाते और परोसते... और क्या परोसते– शराब!

उन सबों में से एक ने साधिकार गिलास बढ़ाया उन दोनों की ओर। यहाँ से सरगम तो नहीं सुन सकती, पर वहाँ वे ड्राइवर अपने उस पुराने परिचित से कह रहे हैं– ''आज नहीं पियेंगे; समझ लो, धन्धे पर नहीं, धरम पर हैं आज!''

''कौन-सा धरम?''

''क्यों? मनुष्यता कोई धरम नहीं?''

वो यहाँ खिड़की से देख रही है; वहाँ दोनों ड्राइवर शराब नहीं पी रहे हैं।

वो दूसरी तरफ ताकती है– शव वाहन में पति सोये हैं।

क्यों शव वाहन को शान्ति वाहन कहते हैं? क्यों मरघट को शान्ति घाट कहते हैं? क्या मृत्यु शान्ति है? और क्या ये इस पर भी है कि मरने वाले के लिए इस अन्तिम शान्ति की परिभाषा क्या थी? अन्त मति सो गति?

तुम्हें शान्ति मिले, तुम्हारा अन्तिम संस्कार तुम्हारे चाहे विधि-विधान से हो।

पर्स में से फोन निकाल कर वह कॉल लगाने लगी। ससुराल में कोई फोन नहीं उठा रहा। रात के ग्यारह बज रहे हैं। इस समय तक तो नहीं सोते सब वहाँ। कितनी बार कॉल कर रही है, उधर कोई उठाता नहीं। अब ये आखिरी बार वो कोशिश कर रही है।

''हेलो।'' उधर से जेठानी निद्रासन में है।

''दीदी, ये नहीं रहे।''

''क्या?''

''दो गाड़ियाँ किराये पर की हैं। इन्हें महाकालेश्वर, उज्जैन ले जा रही हूँ। आप मोक्ष को लेकर वहीं आ जाईये। मोक्ष बेटा ही इनकी चिता को अग्नि दे, यही प्रार्थना है आप लोगों से।''

उस तरफ से स्तब्धता थी, आवाज नहीं आ रही थी, न जाने क्या था कि फिर कॉल डिसकनेक्ट हो गया। फिर कॉल मिला नहीं। एक और नम्बर था उसके पास, भतीजे मोक्ष का ही। उस पर भी कोशिश की लेकिन लाइन नहीं मिली। उसने फोन वापिस पर्स में रख लिया।

''क्या मोक्ष के लकड़ी दिये ही मोक्ष मिलेगा? अगर वो नहीं आये तो तनु को ही अपना मोक्ष मान लेना न आप!''

ढाबे से खाने की खुशबूदार हवा इधर को आ रही है, क्या इसी से मनु की नींद टूटी है, ''मम्मा, भूख लगी है।''

उसने पर्स में बचे दो बिस्कुट निकाले और पानी की बोतल में ग्लूकोज घोलकर उसे दे दिया।

''ये नहीं खाना!''

''अभी यही है हमारे पास।''

माँ का कठोर व्यवहार सिखा रहा है बेटी को– भूख पर संयम की विजय!

ड्राइवर लौट आये हैं, और एक के हाथ में ताजा पैकेट हैं, ''बेन, खाना पैक करवा लाये हैं इसमें। मना मत कीजिये; छोटी बच्चियाँ साथ हैं!''

कहकर दोनों ड्राइवर जल्दी से वहाँ से हट गये, क्या वे एक स्त्री के भयों को समझते हैं? समय और समाज कभी इतना बुरा नहीं होता कि उसमें जिया ही न जा सके!

दोनों गाड़ियाँ फिर चल पड़ीं।

एक अनजान, सुदूर नम्बर से कॉल आ रहा है, झिझक के साथ सरगम कॉल अटेंड करती हैं। उस तरफ जेठ की रुँधी आवाज है, ''अभी पता चला! तुम अन्तिम संस्कार कर देना बेटा! हम अभी चले तो भी समय पर पहुँच न पाएँगे! अस्थियाँ मुझे दे देना मेरे बच्चे की! अम्मा को अभी नहीं बताया है, किस मुँह से बताऊँगा? छोटा भाई चला गया और मैं ढीठ जिन्दा हूँ! देखना, अब बहुत दिन जीता न रहूँगा!''

अनन्त रात-भर चलती एक शव-यात्रा...

सुबह से ऐन पहले, महाकाल की नगरी में शवयात्रा ने प्रवेश किया है।

क्या यही वह समय होता है जब भटकती आत्माएँ लौट जाती हैं अपने घरों को; पर वंश अभी कहीं नहीं गये हैं, उसको विश्वास है। अभी तो वे साथ हैं। शान्ति घाट आता होगा; वो जैसे अन्तिम बार तैयार हो रही है अपने साथी के लिए। साड़ी के पल्लू से मुँह पोंछती है। शादी की ये साड़ी जिस पर मृतक का रक्त, उसके आँसू और हालात की गर्द– अब सबके रंग लग चुके हैं। पिछली

सुबह जब शादी की ये एक साड़ी उसने पहनी थी, क्या वो जान पायी थी कि उसके पति के लिए एक और दुल्हन तैयार हो चुकी है; साक्षात् चली आ रही मृत्यु– रक्त, आँसू और धूल के शृंगार में!

दोनों गाड़ियाँ आ रुकी हैं। नदी तट पर ये शान्ति घाट है। सब यात्राओं का अन्त। इस लोक का अन्तिम विश्राम। पर विश्राम की अन्तिम यात्रा पर जाने वाले जिन्हें पीछे छोड़ गये हैं– उनका क्या?

हर मरने वाले के साथ थोडा-सा मर जाते हैं, उसको प्यार करने वाले।

शव उतारा जा रहा है।

'ओ मेरे साथी! तुम मुझे छोड़कर क्यों चले गये?' उसका दिल बिलखकर रो रहा है लेकिन वो भरसक चुप दिख रही है।

शव को चबूतरे पर रख दिया दोनों ड्राइवरों ने। मृतक का साथ देने जहाँ तक आते हैं परिजन, पुरजन, प्रियजन लेकिन यहाँ कौन जो वे रस्में करे; कौन है जो फूल चढ़ाये, बताशे लुटाये या अनाज दान करे? पत्नी ने बस पैर छू लिये पार्थिव शरीर के– मेरी भावना को ही मेरा दान समझ लेना!

उसने दोनों ड्राइवरों को पचीस हजार रुपये दिये।

''हमें सही-सलामत यहाँ तक पहुँचा दिया, आप दोनों का ये उपकार है मुझ पर।'' वह हाथ जोड़ शब्द-पुष्पों से कृतज्ञता व्यक्त करती है।

एक ने पलटकर प्रणाम में हाथ जोड़े, दूसरे ने नोटों की गड्डी अपनी जेब में रखने से पहले एक हजार रुपये निकाले और उसे वापिस कर दिये।

''हमारा मेहनताना बस इतना ही बनता है!''

दोनों ड्राइवर चले गये। शव के पास बेटियों को बैठा कर युवती माँ मरघट के चौकीदार को खोजने निकली है।

''तीन हजार रुपये लगेंगे।''

चौकीदार कुल खर्चा बताता है।

''तीन हजार?'' कुल जमा इतने ही तो रुपये हैं उसके पास।

''ठीक है।'' वो न जाने किस आधार पर कहती है। कभी-कभी जीवन को चलाने के लिए पैसा नहीं, हिम्मत चाहिए होती है, बस!

चिता सजने लगी।

''मम्मा, बहुत भूख लग रही है!''

''हाँऊँ!''

वो बेटियों को लेकर श्मशान से बाहर आती है। आस-पास कुछ नहीं। थोड़ी दूर चाय की एक छप्पर-दुकान नजर आती है। चाय की इस वक्त उसे सच में जरूरत है।

दुकान पर पहुँचकर उसने दोनों बेटियों को एक-एक पैकेट बिस्कुट दिलवाये और पानी की बोतल खरीदी। पर्स में से खोजकर वो चिल्लर निकलने लगी। फिर चाय नहीं पी; पर्स के पैसे खत्म हैं और अब आगे की चिन्ता दिल के भीतर है; लेकिन बेटियों को कुछ नहीं बताना है।

वे श्मशान लौट आयीं।

चिता तैयार है। अग्नि को साक्षी मानकर जिसके साथ सात फेरे लिये, आज उसको अग्नि कैसे दे! जलती लकड़ी ले जब वो परिक्रमा करती है तो कदम लड़खड़ा गये हैं। तन और मन का सन्तुलन अब और नहीं सध रहा। अभी गिर पड़ेगी वो धूल में चीखकर– बिलकुल अभी!

नहीं!

दो सन्तानों की माँ इस चरम पल में कैसे टूट जाए! आँखों से अविरल आँसू बह रहे हैं। दोनों बेटियाँ दूर खेल रही हैं। वो उन्हें बुलाती है। बेटियों से अग्निशिखा को स्पर्श कराकर वो चिता को अग्नि देती है, ''प्रणाम करो पापा को।''

बेटियाँ माँ के साथ प्रणाम करती हैं।

''मम्मा! पापा जल रहे हैं! मम्मा! पापा को बचा लो प्लीज!'' तनु एकाएक चीखकर रोने लगी और मनु उसे रोता देख रोने लगी। युवती माँ आप भी रोती जाती है और बेटियों को चुप भी कराती जाती है।

''नहीं बेटा, तुम्हारे पापा हमेशा हमारे दिल में हैं!''

बेटियों को समझाती-बहलाती वो टीन-शेड के खम्बे से टिककर बैठ गयी। दोनों बेटियाँ रो चुककर उसकी गोद में सिर रखे सो गयीं। वो जलती हुई चिता को ताक रही है– अविरल आँसुओं की झिलमिल में चिता जगमगा रही है।

चिता की आँच यहाँ तक आती है। इस गर्माहट में कितनी शान्ति है। उसने आँखें मूँद लीं– जैसे हिमपात में ऊष्मा का सामीप्य मिल रहा है। वो देख रही है, चिता की लौ के उस पार पति खड़े हैं।

झिलमिल अग्नि रूप में वे पास आते हैं और उसका हाथ पकड़ते हैं, ''उठो! देखो, ये एक उजला दिन है!''

वो चौंकती है। पति कहीं नहीं, लेकिन वो उठ चुकी है।

धधकती चिता राख में बदल चली है। पति की चिता से एक मुट्ठी गर्म राख उठाकर वो अपने पल्लू में बाँध लेती है। संसार का सार यही है– राख!

आँसू पोंछती वह, अब बेटियों को जगाती है।

''चलो उठो! हमें बस पकड़नी है।''

''हम कहाँ जा रहे हैं मम्मा?''

''फिलहाल तो नानाजी के घर।''

जबकि वो श्मशान के चौकीदार से कह रही है, ''मैं कल सुबह आऊँगी, अस्थियाँ लेने।''

सामने से लाँकते-हाँफते उसके बूढ़े माता-पिता दौड़े चले आ रहे हैं।

❑

मो. 9179131980

❑ कहानी

कियारा और जंगल

उजला लोहिया

जिन्दगी में कौन किससे कहाँ आ मिले, आ जुड़े, आ टकराये। आकाशगंगाओं में बहते तारों-सी नीयत सधी लय और लीक पर बढ़ते हुए भी। राह तो तारे भी बदलते। कभी बगल से, कभी हाथ मिलाते से तो कभी ज्यादा गर्मजोशी में चिंगारी उगलते, टकराने की जिद में आते तो आहूत हो जाते।

क्या बड़े, क्या छोटे! बड़े के नजदीक से गुजरे तो सिर झुका दिया। ज्यादा नजदीक तो झुक कर कदम छू दिया। दूर से तो हाथ हिला दिये, नजरों की नजर तक पहुँच हो जाये तो मुस्करा दिये।

इन्हीं तारों की, पिंडों की या देह की नजरों पर अगर मन को बिठा दो तो बस दोनों उड़ चलें, बगैर किसी नियम या लीक के। जैसे झाड़ू पर हैरी पॉटर। पहाड़ों, समन्दरों, गुफाओं और हर कोटर। जैसे एक तन्तु पर स्पाइडर-मैन। गुम्बद, खिड़कियों, दीवारों पर। फिर क्या दिन, क्या रैन! तो बस ऐसे ही चलते-चलते या कहें दौड़ते-दौड़ते कियारा भी आ मिली। फिर जुड़ी भी और टकरायी भी और फिर थमी तो ऐसी थमी कि बस देह चले, मन थमे। मन चले, देह थमे।

उन दिनों भोर अपने अनोखे अन्दाज में उगती, मोगरे के साथ। दो-चार पल बीतते न बीतते, दोनों जवान गालों पर ललाई। और अभी ललाई का भरपूर मजा लूटें, उससे पहले सुनहरी से पीली, फिर लाल और लोहारी होती माया की मार आ पड़ती। और पड़े जाती... पड़े जाती। गुलबदन हो जाता गुलशिकन। भोर का भी, मोगरे का भी। मगर इस गुलबदन से गुलशिकन होने तक के बीच इतना कुछ घट जाता कि एक उम्र। तरुणई वाली भोर का दूधिया रंग मोगरे में और मोगरे की सुगन्ध भोर में घुल जाते। लेन-देन का व्यापार बगैर लेखे-जोखे के चलता रहता। न एक अणु ज्यादा, न एक अणु कम। अभी ये व्यापार शुरू हुआ ही होता कि लेखे-जोखे

का व्यापार करने वालों की भीड़ उमगने लगती। उगती या उमगती, रुकती या जाती। वहाँ तक तो ठीक मगर वो तो अपने पोथी पन्नों की शेखी में व्यापार गड़बड़ा देते भोर का, मोगरे का। दूधिया रंग में घोलते काला जहर और तोड़ते सुगन्ध। चढ़ाते नाक में, जेब में, रुमाल में, थैली में। देख ले कोई तो कहते भगवान के लिए। दुनिया में जितने भी गोरखधन्धे हैं, भगवान के नाम पर भेंट कर दो और निजात पाओ। पार्क की पगडंडियों पर गोरखपन्थियों की तादाद बढ़ती जाती और पंछियों, गिलहरियों की घटती जाती। यहाँ तक कि हवा भी एक ओर सरक जाती और धरती आकाश सिमट जाते। ये सोचते कि 'ठीक है पसर लो जितना पसरना है। अन्त में तलाशोगे तो हमें ही, लेकिन यहाँ अन्त की किसे पड़ी! सो सिमटने-पसरने का सिलसिला यूँ ही चलता रहता।

कियारा को न गोरखपन्थियों से मतलब, न पंछियों-गिलहरियों से, न पगडंडियों से। न भोर और मोगरे की ललाई से। न सिमटने और पसरने से। न जाने कब से फीड होते-होते दिमाग के अनजाने रिमोट ने देह को अपनी जद में ले लिया है। नीचे प्यूमा, ऊपर एडिडास, कानों में बोट बड्स, कलाई में फिटबिट। आँखें दौड़ते प्यूमा के कुछ गज आगे तक पसरी पक्की सड़क पर, बाकी सब नदारद। ये नदारद यूँ ही एकदम नदारद नहीं हुआ, बल्कि कर दिया गया। धीरे-धीरे। उपस्थित का नदारद हो जाना, मतलब गैरजरूरी समझ लिया जाना और किसी जरूरी का इस गैरजरूरी का स्थान ग्रहण कर लेना। रेल की साथ चलतीं पटरियों में से यदि एक दूसरी को गैरजरूरी समझ धक्का मार दे तो...? बस वही।

'कॉज आई डोन्ट केयर...एज लॉन्ग एज यू होल्ड मी नीयर... यू कैन टेक मी एवरी वेयर...' कदमों में रिद्म... कानों में तेज रिद्म... साँसों में और तेज रिद्म। जिन्दगी में रिद्म का न होना मतलब सब उलटबाँसी। धरती-आकाश के रिद्म के बीच बिखरी लेकिन सधी, कदम-कदम पर अलग राग। हर राग में अलग सुरों का मेल। अलग उतार-चढ़ाव, ठहरा बहाव। अंगार पानी पेड़ पहाड़, चीं-चाँ-कुहू-ट्यूँ म्याऊँ-दहाड़। सुर पकड़ सको, पकड़ लो... ताल मिला सको सही... नहीं तो भी सही। धकियाने के बाद भी अभी पटरी जरा खिसकी ही तो है। तो बस चलते-दौड़ते रहो।

सुघड़ बगीचे के दूजी ओर सड़क पार कुछ ढलान उतर कर है वन-विभाग द्वारा संरक्षित अनगढ़ वन। अब संरक्षण कौन, किसे और किससे दे रहा है, ये बात अलग है, लेकिन यहाँ तो जो जता सके, उसी का बोलबाला। बगीचे में लेखे-जोखे वाले व्यापारियों की भीड़, वन में तलैया, हिरन, खरगोश, कौवे, तोते, कोयल, मोर, गिलहरी, कच्छप, मेंढक, भँवरा, तितली, उल्लू, चील, चमगादड़, मधुमक्खी, चींटी और, और भी... पर छीड़ ही छीड़। भीड़ को छीड़ से क्या और छीड़ को भीड़ से क्या!

कियारा को किसी से भी क्या...!

होता भी नहीं किसी से भी कुछ... अगर उस दिन एक गोरखपन्थी ने अपने हाजमा बिगड़े टट्टू की उगली कार्बन मोनॉक्साइड सीधे उसकी तेज रिद्म साँसों को न पिला दी होती। साँसों की बिगड़ी लय तो कानों-कदमों की भी बिगड़ी और आदतन सुघड़ता की ओर मुड़ गयी। पता चला, नल खुला रह गया और सुघड़ता का पानी खत्म। होना ही था। किये-कराये पर पानी फिरना इसे ही कहते हैं। वैसे भी जिस गति से सुघड़ता पानी का इस्तेमाल करती है, नल का खुला रहना तो सब एक बिन्दी या चिन्दी-सा कारण है। तो अब क्या?

ऐन उसी वक्त, सड़क के दूसरी ओर से अनगढ़ वन ने लताएँ झुला इशारा किया... इधर... इधर...।

बिगड़ी साँसें सधने की चाह लिये बढ़ गयीं उधर। कदम उतर लिये ढलान। प्यूमा को झुरझुरी हुई, नयी छुअन की। नाक में फुरफुरी हुई, नयी गन्ध की। नजरों का घेरा कुछ बढ़ा और ठीक उसी निमिष कुछ घटा या उसके घटने की भूमिका तो बन ही गयी– कहाँ! ये पता नहीं। न कियारा को, न घटने को, न निमिष को, न वन को। अस्तित्व में आना इतना सरल भी तो नहीं। आने से पहले किन-किन गली-कूचों से किन-किन हालात में गुजरा होगा। पर किसने देखा, किसने जाना!

सबकुछ अस्त-व्यस्त-सा। बड़े पेड़ों से झूलतीं-उलझतीं-लिपटतीं लतरें। सतर मोटी शाखें सटी-सटी, तरल महीन झुकी डोलती गुँथी और पसरी भी। ढेलों-कंकड़ों-पत्थरों के नीचे कहीं सुतल-अतल -वितल से भी उगने का माद्दा रखती, कदम सहलाती या चूमती या गोरखपन्थी समझ के अनुसार जूते चाटती, बेतरतीब लम्बी-ठिगनी आड़ी-पड़ी खड़ी घास। घास की पीठ पर चढ़े हरे-पीले-भूरे लाल-सफेद-नारंगी, कुछ कुरकुरे, कुछ नरम फूल-पात, अपने माथों पर बीटों का विजयतिलक लिये।

बस पहली नजर में इतना ही।

एक कौआ नजरों की सीध में आ बैठा शीशम डाल पर। कियारा से नजरें मिलीं, इशारा किया और उड़ चला। कियारा ने समझा या नहीं समझा मगर चल दी उसके पीछे। प्यूमा ने शिकायत की चुभन की, मगर अनसुना रहा। कौआ मौलश्री की निचली टहनी पर टिका, मुड़ कर देखा, कियारा पहुँची तो फिर उड़ा। मौलश्री ने नन्हें फूल झारे तो

सरसराती गिलाइयाँ थमक कर तने की ओट से गाने लगीं... 'बहारो फूल बरसाओ', मौलश्री हँसा, बोला– ''नहीं सुना।'' गिलहरी बोली– ''सूँघा भी नहीं।''

कौआ इस बार सीधा चुरैल की डाल पर। चुरैल पर, चुड़ैल नहीं, गुलाली बेगमविलिया चढ़ी हुई और नीचे वॉटर कूलर। जंगल में मंगल-सा आश्चर्य। नल खोला। पानी था। साँसों की बिगड़ी लय दुरुस्त हुई। साँसों की सही हुई तो कदमों की भी हुई। कानों का स्विच ऑफ किया, इयर बड्स हटाये और आकाश बिन पूछे भीतर धसक लिया और साथ ही 'चीं-चाँ-कुहू-ट्यूँ' भी। गिलहरियों ने फिर गाया... 'बहारो फूल बरसाओ...।' बोगनविलिया हँसा, बोला– ''हाँ सुना।'' मौलश्री बह आया हवा संग, कियारा की नाक से देह में घुसने की जिद लिये। नसें ढीली हुईं। देह के अनसुने बन्द राग अँगड़ाये। अनबजे के बजने और सुनने को वन स्तब्ध। वनसखा स्तब्ध। कियारा स्तब्ध। दुरुस्त लय के साथ कियारा की नजरों ने सबसे पहले कौए को ढूँढ़ना चाहा। मगर ढूँढ़े कैसे! सामने बड़ के पेड़ों पर तो अनगिनत काक-दलों का डेरा। कौन-सा था? सवाल-सवाल ही रह गया। सब उसे ही देख रहे थे, सवाल के साथ जवाब थामे। मस्तिष्क में फीड डर उछल कर कियारा की देह में आया। सहमी नजरें एक साथ दसों दिशाओं में घूम गयीं, मगर देह में टिके डर ने फिर बड़ के पेड़ों की ओर धकेल दिया। धूर्त, कपटी, चालाक कौए की कहानियाँ याद आ गयीं। दादी के बताये शगुन-अपशगुन याद आने लगे।

'हमला कर दिया तो।'

'मगर बेवजह क्यूँ?'

'वजह कौन देखता है आजकल!'

बड़ के अनेक सिरों पर उगे मुखों से आवाज आयी– ''हम!''

दसों दिशाओं से आवाज आयी– ''हम!''

कौवे शान्त, निश्चेष्ट दिखे तो उछला डर उकड़ू बैठ गया। दायीं ओर कुछ दूर फीकी गुलाबी-सी दीवारें दिखीं। दीवारों पर मोर-मोरनियाँ। चित्र नहीं, असल। कदम बढ़े तो प्यूमा चरमराये, कसमसाये। घास संग लुका-छिपी खेलतीं पीली-सफेद तितलियों ने उन्हें खेल में आमन्त्रित किया मगर प्यूमा ने नाक चढ़ा, समेट लिया खुद को। सिमटे-सिकुड़ते बढ़ते रहे। दो कमरे, एक बरामदा। बूढ़ी, जगह-जगह से खाल लटकी, दीवारें। बाहर बोर्ड।

वन-विभाग कार्याल। आधा 'य' मिट गया था। वैसे कार्यालय के स्थान पर 'कार्याला' ज्यादा उपयुक्त है। जहाँ कार्य को आले में धर दिया जाये वो 'कार्याला'। खिड़की से झाँका कियारा ने। कमरे में कोई चादर तान सोता नजर आया। दूसरे की खिड़की बन्द। जरूर उसी में 'कार्याला' होगा। दीवार पर बैठे मोर केकाते कहीं पीछे चले गये। दोनों कमरों का चक्कर लगा कियारा भी पीछे गयी। एक जानी-पहचानी गन्ध।

नीचे ढेरों फूल।

''अरे! ये तो सरेस है!'' मुँह से निकला।

सब ओर से तालियों के साथ आवाज उठी– ''बात की... बात की।''

''सरेस नहीं, शिरीष!'' शिरीष पर से तोता बोला।

''दादी सरेस कहती थीं और हम बॉटल-ब्रश।''

''तो हम सरेस कहें या बॉटल-ब्रश?''

''सरेस...'' कियारा ने झुक कर फूल उठाया और गालों से छुआया। सरेस ने हरा गालों पर छोड़ा और थोड़ी ललाई उठा ली।

सब ओर से आवाज उठी– ''सरेस... सरेस... सरेस...।''

चोंच में फूल दबाये तोतों का झुंड *'सरेस-सरेस'* टिहूँकता सबको खबर करने उड़ चला।

हाथ में फूल झुलाती कियारा आगे बढ़ी। पाकर गूलर नीम, बीच-बीच में लाल सरेस भी। अरिल सरल उन्मुक्त पंक्तिमुक्त। उन्हीं के आगे बरसाती तलैया में बचा पानी। कियारा मुस्करायी।

''मुस्करायी... मुस्करायी...'' टर्र-टर्र कर मेंढक फुदका। तलैया के हरे नीले पर झरी पत्तियाँ दोहराती फरफरायीं... ''मुस्करायीं... मुस्करायीं...।''

गीली मिट्टी में धँसे लिसड़े गूलर के अनेक लाल फल। एक को उठाया।

स्कूल के रास्ते में था एक। हम सोचते अंजीर है।

''हा-हा-हा-हा-हा!'' सब हँसे। तलैया भी।

गूलर के बीजों से प्यूमा के गाल लिसड़ गये। ज्यादा गीली मिट्टी, फिर कीच-सी मिट्टी, संग कंकड़-पत्थर। प्यूमा का दम घुटने को हुआ। रूठ गया और आगे बढ़ने से मना कर दिया।

नीम का सहारा ले गैरजरूरी को आजाद किया कियारा ने। मिट्टी में तलवों की छप-छप छपती गयी। मिट्टी गुदगुदी से खिलखिलाती रही। कंकड़ मुँह छुपाये चुप। आदतन बोल न पड़ें।

सब चुप।

तलैया किनारे तीन तीतर एक के पीछे एक चलते।

दादी पहेली बूझती थीं– कियारा गुनगुनाई– ''तीतर के दो आगे तीतर, तीतर के दो पीछे तीतर, बोलो कितने तीतर?''

'टिं टिं टिं टी टी टी' टिटहरी चक्करदार घेरा लगाते बोली–

''तीन-तीन-तीन सबको पता, सबको पता, सबको पता।''

गुठली फोड़ अभी-अभी मिट्टी से बाहर निकली आँख मसलती जामुन की नन्हीं पत्ती कुनकुनायी– ''नहीं पता।''

तलैया के पास शीशम का ऊँचा घना पेड़। दोनों ओर चँवर ढुलाते नीम। शीशम से सटीं, शीशम से बनीं सीढ़ियाँ। कियारा की नजरें एक-एक सीढ़ी चढ़ती मचान पर जाकर रुक गयीं।

''अरे वाह! मचान!''

शीशम के तने से चोंच खटखटाते कठफोड़वे ने गर्दन घुमाई, बोला– ''हाँ! मचान।''

बड़ पर बैठे कौवों के मुख मचान की ओर घूम गये। सरेस से उड़े तोते नीम पर आ बैठे, मचान की ओर मुँह किये। कियारा ने पहली सीढ़ी पर पैर रखा। दूसरी सीढ़ी से चींटी लटक कर बोली– ''देखो सँभल के।'' पाँच सीढ़ी चढ़ी तो शीशम की डाल ने हाथ बढ़ा खट-खट चढ़ा लिया। डाल की पत्ती पर टिका टिड्डा सरकता बोला–

''आ जाओ, बहुत जगह है।''

गिलहरियों को खबर थी। पूँछ से बुहार दिया था। पेड़ पर पेड़ से बना चौकोर मचान। डालों से घिरा। घनी नहीं, खुली-खुली। कियारा की बाँहें खुलीं।

''खिलीं... खिलीं...'' भँवरा, मधुमक्खी ने हाथ पकड़ गोल घेरा लिया।

सबकी आँखें मिलीं और सबकी आँखें खिलीं। कोटर में थोड़ी देर पहले ही सोने गया उल्लू सिर निकाल अलसाता बोला– ''क्या खिलीं?''

''दिशाएँ...!'' जंगल बोला और दसों दिशाएँ समा गयीं खुली-खिली बाँहों में।

फिटबिट से आवाज आयी–*'टिंग टिंग टिंग...'*

कियारा ने समय देखा।

''अरे! आठ बज गये! दस बजे ऑफिस पहुँचना है।''

दिमाग का गड़बड़ाया रिमोट हड़बड़ा कर दुरुस्त हुआ। बाँहों को सिमटने की, कदमों को सीढ़ियाँ उतरने की और नाक-कान आँख को अपनी हदों में रहने की आज्ञा मिली। सबने आज्ञापालन किया। प्यूमा ने तलवों को बाँधा और अकड़ता चढ़ गया ढलान। नदारद फिर उपस्थित।

अगला दिन–

सबकुछ वही। मगर नहीं...

देह में धँसे आकाश और दिशाओं ने रिमोट के एक बटन पर कब्जा कर लिया था। ढलान आते ही प्यूमा और बोट ने लाख कोशिशें की कदमों-कानों पर हावी रहने की, मगर कब्जाया हुआ बटन ऑन हो ही गया। बोट, एडिडास की जेब के हवाले हुआ तो प्यूमा हँसा।

''काँव-काँव-काँव... आ गयी... आ गयी... आ गयी...।''

मौलश्री झरझराता हँसा। गिलहरी ने गाया– ''मेरा पिया घर आया ओ राम जी! मेरा पिया घर...''

चुरैल से लिपटी बोगनविलिया, ''झूम के नाची सारी रात कि घुँघरू टूट गये।''

''घुँघरू नहीं फूल...'' चुरैल ने चुटकी ली। सब हँसे।

आदतन नोकदार पत्थर देह में धँसा तो प्यूमा सिसका। घास संग बोगनबेलिया के फूलों और तितलियों ने प्यूमा को चूमा। गुदगुदाता जेब में पड़े बोट से बोला– ''इतने बुरे भी नहीं हैं ये...।''

दीवार से मोरों की नीलकंठी केका ने पुकारा। खिड़की के भीतर सब वैसा ही। एक खरगोश फुदकता 'सरेस... सरेस' आलापता चला। अचानक घास-पात, तोते-मोर-मेंढ़क, टिटहरी-गिलहरी-कौवे-कठफोड़, सबने उसका सुर पकड़ लिया– ''सरेस... सरेस... सरेस...।''

अनेक आवाजें मगर सुर एक।

गर्दन घुमाते उल्लू ने पूछा– ''कौन सरेस?''

जंगल बोला– ''फूल सरेस।''

कियारा ने फूल उठाया, हँसी और सुर मिल गया, ''हाँ... सरेस।''

सब हँसे, ''हाँ... सरेस!''

प्यूमा बगैर किसी उह-आह के मचान तक आ गया था। 'लिसड़े तो क्या, मचान के ऊपर विराजेंगे', मगर जब नीचे छोड़ दिया गया तो बड़बड़ाया– ''इन उलझी खोपड़ियों को कब समझ आयेगा, क्या जरूरी, क्या गैरजरूरी!''

जेब में पड़ा बोट खिलखिलाया– ''नाक कटी... नाक कटी...।''

चींटी सँभाल कर सीढ़ियाँ चढ़ा ले गयीं। टिड्डा लपक लेने को झाँकता रहा। सबसे ऊपरी शीशमी डाल पर टँगे छत्ते से रानी मक्खी नीचे झुकी तो दूसरी पर जीभ निकाले लटका चमगादड़ भी और नीचे आ गया।

नीम ने चँवर ढुलाया तो कियारा ने बाँहें खोल दीं। उल्लू ने पंख खोल कर गर्दन घुमाते ऐलान किया– ''दिशाएँ खुलीं।''

जंगल खुल कर मचान के इर्द-गिर्द सिमट आया। खुलन और सिमटन साथ बैठ गयीं। कियारा भी बैठ गयी। खुली-खुली-सी सिमटी। लकड़ी की सिमटी दरार से निकल कुछ घोंघे खुले और जगह बनाते बैठ गये।

उल्लू कोटर में जाने लगा, कियारा ने रोका– ''तुम भी यहीं बैठ जाओ।'' चमगादड़ ने आँखें फाड़ीं– ''क्या सच में...?''

''ये नहीं बैठेगा... रात के अँधेरे के नीले में...''

बोलते-बोलते रुकी चींटी, फिर ऊपर चमगादड़ की ओर इशारा किया, ''उसके साथ क्वान्टम फिजिक्स के सूत्र तलाशता है और दिन में अधमुँदे सपनों में अपनी कृष्णिका गुहा में प्रॉब्लम्स सॉल्व करता है...''

उल्लू चुप-सा बोला– ''तुझे कैसे पता?''

चींटी ने कियारा की हथेली की ओट दुबकते कहा– ''तुम दोनों पर लक्ष्मी विराजने के बाद भी इतनी जगह बचती है कि मैं बैठ सकूँ। वैसे भी मैं कहाँ नहीं हूँ...'' चींटी ने फिलोसॉफिकल अन्दाज में कहा तो जंगल मुस्करा दिया।

''सब छुपे रुस्तम...'' तोते बोले।

''कौए की बात सुनाऊँ?'' कियारा की हथेली से गूलर का बीज चाटती चींटी ने कहा– ''ये ब्लैक बॉडी रेडियेशन का स्पेक्ट्रम बनाता खुद कृष्णिका है। सब तरह के आवृत्ति विकिरणों को एक-सा उत्सर्जित और अवशोषित करता।''

उल्लू-चमगादड़ की नजरें मिलीं– ''इसे तो पता है!''

''लेकिन आदमी तो मुझसे दूर भागता है।'' कौए की रुआँसी आवाज आयी।

''दूर तो मुझसे भी भागता है।'' उल्लू ने कहा।

''मुझसे भी।'' चमगादड़ बोला।

तने से लटकता गिरगिट बोला– ''मुझसे भी।''

''मुझे दूर खदेड़ता, पीछे-पीछे खुद भागता आ रहा है।'' जंगल की दर्द-भरी आवाज उठी।

सबकी नजरें कियारा पर टिकीं।

''दूर नहीं भागता, जिसे तुम पीठ पर उठाये घूमते हो, उसकी दमक के पीछे तुम दिखते नहीं हो... सब अनजाने ही गैरजरूरी मान परे सरका दिये जाते हो।'' कियारा ने पैरवी की।

''नहीं-नहीं... अनजाने नहीं... जानबूझकर...'' सब तरफ से आवाज उठी।

''हाँ-हाँ, जानबूझकर...''

''क्वान्टम फिजिक्स के सूत्र तो उसने भी खोजे हैं न!'' कियारा ने फिर पैरवी की।

''तो खोज कर भूल क्यूँ गया?'' उल्लू ने कहा।

''और क्या किया खोज कर! क्लासिकल फिजिक्स के लिए उपयोग-भर... हुँह... ऐसी भी क्या सुघड़ता कि एंट्रॉपी ही कम कर दे!'' चमगादड़ बातचीत से उत्साहित हो निचली डाल पर सरक आया था।

''माइक्रोस्कोपिकल पैमाने से आगे बढ़ना ही नहीं चाहता... बातें करता है थर्मोडायनामिक लॉ की... और उत्सर्जित और अवशोषित ऊर्जा में बैलेंस बनाना तक नहीं जानता... अरे! ब्लैक-बॉक्स का गुलाम बना बैठा है। इस गोरखपन्थी ब्लैक बॉक्स की बेवकूफियों की सजा एक दिन हम सब भुगतेंगे।''

''सब भुगतेंगे...'' तोते टिहुँके। गिलहरी चिकियाती कियारा की गोद में दुबक गयी और जंगल अचानक चुप।

'टिंग टिंग टिंग टिंग...' फिटबिट ने मौके का फायदा उठाया। रिमोट दुरुस्त हुआ और आज्ञाएँ देना शुरू। नाक-कान आँख-कदम, सब आनाकानी करने लगे।

''कुछ देर और... बस जरा-सी देर...''

''नहीं... देर हो जाएगी।''

''नहीं होगी...''

''हो जाएगी...''

''नहीं...''

''हाँ...''

''अच्छा... चलो...।''

देह चल पड़ी, मगर उस पर धरा मन वहीं मचान पर उतर गया और दिन के सुनहरे-हरे संग बहता, रात के नीले में उड़ चला। उल्लू, चमगादड़ और हाँ! चींटी संग क्वान्टम फिजिक्स समझने।

अगले दिन कान-नाक-आँख-कदमों ने ऐसी जल्दी मचायी कि बेचारे प्यूमा की साँस फूल गयी। टेबल पर पड़ा बोट कितना चिल्लाया चलने को मगर अनसुना पड़ा रह गया। ढलान तक आते-आते तो पसीने छूट गये प्यूमा के। मन पर रिमोट का कंट्रोल खत्म हुआ तो ढलान उतरने ही देह भी छूटने को कसमसाने लगी।

गिलहरियाँ– ''प्यार हुआ...''

बोगनविलिया– ''कैसे हुआ...''

गिलहरियाँ– ''जो भी हुआ अच्छा हुआ...''

जंगल से कोरस आया– ''न मैं जानूँ न तू जाने, क्यूँ हो गये हम दीवाने...''

सारे दीवाने मचान के इर्दगिर्द। दिशाएँ पहले से खुली थीं। कसमसाती देह को रास्ते मिले तो निकल गयी दिशाओं संग। दौड़ी-भागी-कूदी-फाँदी-झूमी, फिर तलैया के हाथ-भर पानी को छपछपाती सीधी मचान पर। जंगल की खुली देह दिशाओं संग झूम उठी। एक देह एक मन। उल्लू चमगादड़ के कान में फुसफुसाया– ''सुपरपोजिशन।''

चमगादड़ कुछ कहे, उससे पहले अभी तक पीठ पर टिकी चींटी बोल पड़ी, ''हाँ, समझ गयी... समझ गयी।''

अचानक बड़ और गूलर की तरफ से कोलाहल उठा। बन्दरों की टोली। कौआ छठी इन्द्री में डुबकी लगाता बोला, ''कोई सन्देसा लाये हैं।''

बन्दर मचान के पास की शाखाओं पर टिक गये।

जो सबसे बड़ा था, वो बोला– ''*कार्यालय* खुला है। गोरखपन्थी जमावड़ा है। कुछ तो गड़बड़ है।''

''अरे वाह! ये तो अच्छी बात है। कुछ अच्छा काम होगा।'' कियारा ने कहा।

''गोरखपन्थी के अच्छे की परिभाषा अपनी तो समझ से बाहर है।'' कठफोड़ा पहली बार ठकठकाया।

''माजरा क्या है?''

''वहीं चल कर समझना पड़ेगा।''

सबने कियारा की ओर देखा,

''चलो...''

खुली देह और खुला मन जुड़ गये। संग-संग चले।

''हम भी चलें।'' नीम शीशम ने कहा तो नीचे सरसरा कर चलने की तैयारी करती पत्तियों ने किसी बुजुर्ग-सा ताकीद किया– ''नहीं! तुम यहीं रुको।''

कार्यालय के पास कुछ गाड़ियाँ दिखीं। दोनों कमरे खुले। बड़ी टेबल के इर्द-गिर्द कुर्सियों पर गोरखपन्थी जमावड़ा।

खिड़की पर कियारा और ऊपर दीवार पर जंगल। कमरे के भीतर से आवाज उठी।

''आपने खुद देखी है, सड़क पर गाड़ियों की भीड़।''

''मैं समझ रहा हूँ, लेकिन ये जिम्मेदारी तो नगर-निगम की है। उसे हल खोजना चाहिए।''

''उनके पास तो एक ही जवाब है– 'जगह नहीं है, कहाँ से लाये'।''

''तो हम भी क्या करें?''

''आपके पास जगह है, दे सकते हैं।''

''वन-विभाग की है, हमारी जागीर तो नहीं।''

''वन-विभाग की अनाप-शनाप जमीन में से थोड़ी-सी को अपनी जागीर बना सकते हैं आप, वरना कुर्सी का रुतबा जाता रहेगा।''

''कुर्सी का रुतबा रखना मुझे आता है, आपसे सीखने की जरूरत नहीं।''

''अरे... अरे... नाराज न हों। हमारा मतलब तो ये था कि बारिश यहाँ न के बराबर, तलैया आधी सूखी, उसके आस-पास की जमीन पर बस कुछ पत्थर जमाने होंगे। खर्चा कुछ ज्यादा नहीं और पार्किंग शुल्क मिलेगा सो अलग।''

''और पेड़ क्या अपने आप टूट कर बिछ जाएँगे!''

''पेड़ों का क्या है? मैं हूँ न! लकड़ी के ठेके का ही काम है मेरा। सब कटवा भी दूँगा और उठवा भी। रकम भी अच्छी दूँगा। बल्कि आप कहें तो पत्थर जमाने की जिम्मेदारी भी हमारी। आप तो बस रकम पकड़िये और गर्दन हाँ में हिलाइये।''

कागज का मोटा बंडल टेबल के इस पार से उस पार सरक गया।

काँव-चाँव-कुहू-ट्यूँ-ठक, सब चुप...

चिक-टर्र-फर्र-सर्र, सब चुप...

जंगल स्तब्ध।

कियारा स्तब्ध।

उल्लू से चुप न रहा गया, चीख पड़ा– ''अरे बेवकूफो! ये हाई-एलबिडो सरफेस है। खत्म कर दोगे तो सौर विकिरण सह नहीं पाओगे।''

चमगादड़ ने साथ दिया– ''अपनी उलझनों से खुद का एलबिडो तो कम कर ही लिया है। अब धरती को तो बख्श दो।''

कियारा ने दीवार की ओर देखा, बोली– ''इन्हें तो सुनाई ही नहीं दिया।''

''देगा भी नहीं... हमारी अनुनाद आवृत्ति के साथ इनके अव्यों का सुर ट्यून्ड नहीं है।''

''खुद से ही ट्यून्ड नहीं है ये बेसुरे, हमसे क्या होंगे!''

''इनके बेसुरे सुरों का घेरा जब तक नहीं टूटेगा, तब तक न सुनाई देगा न दिखाई देगा।''

''फिर... अब क्या करें!''

''अरे कोई तो ट्यून करो इन्हें!'' तोता टिहुँका।

सड़क पर से गुजरती एम्बुलेंस के सायरन से जंगल गूँज गया, बोला– ''फिर एक बार मेरी जिन्दा लाश उठेगी।''

अचानक खिड़की के भीतर का जमावड़ा चौंक गया। एक लड़की खिड़की के बाहर से जोर-जोर-से कुछ चिल्ला रही है–

''अरे बेवकूफो! ये हाई एलबिडो सरफेस है। खत्म कर दोगे तो सौर विकिरण सह नहीं पाओगे।''

सबने सुना, सबने देखा और तब तक कियारा *कार्यालय* के भीतर।

फिर वही हुआ जो ऐसे हालातों में हरदम होता है।

पहले अनुनय-विनय और न समझने पर उच्च अधिकारी तक बात पहुँचाने की धमकी। ढिठाई से मिला जवाब– ''पहुँचा दो, बंडल के एक हिस्से के नीचे दब जाएगी। उससे उच्च अधिकारी... एक और हिस्सा...।'' फिर एक ऑफर– ''तुम चाहो तो दो-चार नोट तुम्हें भी दे देंगे।''

देह के भीतर चिंगारियाँ चटकीं। आँच मन तक पहुँची।

और तभी फिटबिट से– 'टिंग टिंग टिंग...'

खुली देह के एक हाथ ने दूसरे पर सजे फिटबिट को झटके से खींचा और *कार्यालय* की दीवार पर दे मारा।

टिंग-टिंग हमेशा के लिए बन्द। रिमोट के दुरुस्त होने का रास्ता बन्द। आज्ञाएँ देना बन्द। खिड़की पार से सब देखा जंगल ने।

और तभी... काँव-चाँव-कुहू-ट्यूँ-चिक-टर्र-फर्र-सर्र का शोर *कार्यालय* में भर गया। *कार्यालय* से बढ़ता शोर भीषण होता ढलान चढ़ गया। सड़क पर आया और गर्जना के साथ हदें तोड़ता, सड़क पार की सुघड़ता में घुस गया, लेखे-जोखे का व्यापार करने, नदारद को उपस्थित करने।

अनगढ़ता कब किस पल सुघड़ता को अपने घेरे में ले लेगी, कौन जानता है! कौन नदारद होगा, कौन उपस्थित, कौन जानता है!

हाँ! भोर अपने अनोखे अन्दाज में उगती रहेगी मोगरे के साथ और चलता रहेगा, बगैर लेखे-जोखे का व्यापार।

❑

मो. 9414008768

कथाविश्व

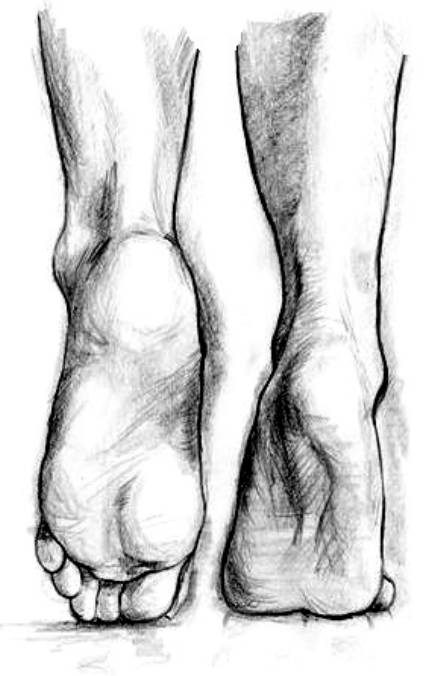

लौटना

एनी ऐर्नो

अनुवाद : निशान्त उपाध्याय

वह जुलाई का एक इतवार था जब मैं, आखिरी बार, अपनी माँ से उनके घर में मिली थी। 'मोतेविले' पर, हम लम्बे वक्त तक स्टेशन पर बैठे रहे। काफी गर्मी थी। ट्रेन के अन्दर और बाहर, दोनों जगह खामोशी पसरी हुई थी। मैंने खिड़की से बाहर झाँका; प्लेटफॉर्म सूना था। 'एस.एन.सी.एफ.' स्टेशन के बैरियर की दूसरी तरफ, सेब के पेड़ों की निचली डालियों को लम्बी घास लगभग छू रही थीं। उस पल मुझे पूरी तरह अहसास हुआ कि मैं 'क' पहुँचने वाली थी और यह भी कि मैं कुछ देर में अपनी माँ को देखूँगी। ट्रेन कम होती गति से 'क' की तरफ बढ़ती रही।

स्टेशन से बाहर निकलने पर कई चेहरे पहचान में आ रहे थे। हालाँकि उन चेहरों को सहसा मैं कोई नाम नहीं दे पा रही थी। शायद मुझे उनके नाम कभी पता भी न थे। हवा चलने के कारण यहाँ गर्मी कम थी। 'क' में हमेशा हवा बहती रहती है। हर कोई, जिसमें मेरी माँ भी शामिल थीं, ये मानता है कि 'क' हमेशा और जगहों से ज्यादा ठंडा रहता है। चाहे वह दूसरी जगह पाँच किलोमीटर दूर ही क्यों ना हो!

मैंने रेलवे के होटल के सामने खड़ी टैक्सी को नहीं लिया, जैसा मैं अमूमन और कहीं भी करती। मैं जब 'क' में होती हूँ, अपने पुराने तौर-तरीकों पर लौट आती हूँ: टैक्सी तो शादियों, अन्तिम संस्कारों और अन्य ऐसे कार्यक्रमों के लिए होती है। ऐसे पैसे खर्च करने की कोई तुक नहीं है।

मैं 'रियू कार्ना' की तरफ चल पड़ी जो इस कस्बे का बाजार था। पहली ही बेकरी से मैंने केक, टॉफियाँ और एप्पल टार्ट खरीदे– वह सब जो, गुजरे दिनों में, वह मुझसे दिन की प्रार्थना से लौटते वक्त लाने के लिए कहती थीं। साथ में, मैंने उनके लिए लिली के वे फूल भी ले लिये जो थोड़े ज्यादा दिनों तक खिले रहते हैं। जब तक मैं उस कॉलोनी तक नहीं पहुँच गयी, जहाँ वह रहती थीं, मेरे जहन में इसके अलावा और कोई ख्याल नहीं आ रहा था कि मैं उन्हें दोबारा देखने वाली हूँ और वो मेरा इन्तजार कर रही हैं।

मैंने उनके ग्राउंड फ्लोर पर बने अपार्टमेंट के सँकरे दरवाजे पर दस्तक दी। उनकी आवाज आयी, ''हाँ,

आ जाओ अन्दर!''

''आपको दरवाजा लॉक रखना चाहिये!''

''अरे! मैं जानती थी कि तुम ही हो। तुम्हारे अलावा और कोई नहीं हो सकता था।''

बिना एप्रोन पहने और लिपस्टिक लगाये हुए वह, टेबल के पास खड़ी होकर, हँस रही थीं। उन्होंने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखा और मेरे चूमने के लिए अपना चेहरा टेढ़ा कर लिया। ठीक उसी वक्त, वह मेरी यात्रा, मेरे बच्चों, कुत्तों के बारे में लगातार पूछती जा रही थीं। मेरे सवालों का उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। उन्हें अपने बारे में बताते वक्त, सामने वाले को पकाने का, एक डर सालता रहता था। बाद में जरूर, हमेशा की तरह, वे वही बातें दोहराने लगीं। ''मैं यहाँ एकदम ठीक हूँ, इससे बेहतर कुछ नहीं'' और ''मुझे कोई शिकायत नहीं है''। टीवी पर कुछ आकार बन-बिगड़ रहे थे पर आवाज नहीं आ रही थी।

उन्होंने कुछ झिझक के साथ लिली के फूल लिये और एक बनावटी अन्दाज में मुझे शुक्रिया कहा। मैं भूल गयी थी कि मेरा यूँ किसी दुकान से उनके लिए फूल लेकर आना, उन्हें दिखावटी महसूस होता था। जैसे कि मैं उनसे, परिवार की तरह नहीं, किसी अजनबी की तरह, पेश आ रही हूँ। केक देखकर वह खुश हुई लेकिन वो पहले ही चर्च से लौटते वक्त हमारे लिए केक ला चुकी थीं।

हम दोनों टेबल के विपरीत छोरों पर बैठे जो, उस पर रखे सामान के अलावा, लगभग पूरे कमरे की जगह घेर रही थी। मुझे याद आया कि उनके यहाँ शिफ्ट होने के बाद, जब मैं पहली बार आयी थी तो उन्होंने कहा था, ''मैंने टेबल बड़ी ले ली– आराम से दस आदमी बैठ जायें इस पर!'' पर इन छह सालों में एक बार भी...खैर, टेबल खराब ना हो सो उन्होंने उसे मोमजामे से ढँक रखा था।

वो बड़ी अशान्त थीं जैसे उन्हें समझ ही ना आ रहा हो कि जो कई सारी बातें हमें करनी थीं, उन्हें किस बिन्दु से शुरू करें। उनके कमरे में अँधेरा था और एक हल्की सीली गन्ध भी। जब मैं बच्ची थी, वह मुझे साथ ले हर रविवार कुछ बूढ़ी औरतों से मिलने जाती थीं। उनके घर से बाहर निकलते वक्त, वह नाक सिकोड़ते हुए कहती थीं, ''उम्रदराज लोगों के घर में हमेशा एक नम गन्ध बनी रहती है। वे कभी अपनी खिड़कियाँ ही नहीं खोलते हैं।'' क्योंकि वह ऐसा कहती थीं इसलिए मैंने कभी सोचा नहीं था कि वो भी उन लोगों में से ही एक बन जायेंगी।

वह मुझे बसन्त में 'क' के मौसम के बारे में बताने लगीं। साथ ही यह भी कि मेरी पिछली आमद के बाद से कितने लोग गुजर गये। मेरे उन लोगों को याद ना कर पाने से वो चिढ़ रही थीं। उन्हें लगा कि मैं ऐसा जानबूझकर कर रही हूँ– ''बात दरअसल ये है कि तुम उन्हें याद करना ही नहीं चाहती हो।'' और जब तक मुझे वे लोग याद ना आये, वो मुझे छोटी-छोटी जानकारियाँ देती ही रहीं: वो यहाँ रहता था, उसकी बेटी मेरे साथ स्कूल में थी, और भी जाने क्या क्या!

हमने पौने बारह बजे खाने को टेबल पर लगाया। पिछली बार, उन्होंने साढ़े बारह बजे तक का इन्तजार किया था। वो हर काम जल्दी-जल्दी कर रही थीं। एक बार बीच में बोलीं कि अच्छे मौसम के दिन अब जल्द ही गुजर जायेंगे।

नैपकीन तलाशते वक्त, मुझे दराज में कुछ रूमानी पत्रिकाएँ दिखीं। मैंने कुछ कहा नहीं पर उन्हें लगा कि मैंने पत्रिकाएँ देख लीं। ''ये पतली पत्रिकाएँ, पौले मुझे दिया करती है वरना तो तुम्हें पता ही है कि मैं इन्हें नहीं पढ़ती। वो यही सब पढ़ती है, ये बिना बात की छोटी-छोटी कहानियाँ।'' मैं बोलने ही वाली थी कि मुझे सच में फर्क नहीं पड़ता अगर वो लाइब्रेरी से लाई गयी 'मेलराक्स' की किताब की जगह 'हम दोनों एक दूजे के लिए' पढ़ रही हैं। उन्हें दुख होता अगर मैं ये कहती कि वे उस तरह की किताबें नहीं पढ़ सकतीं जो मैं पढ़ा करती हूँ।

बाकी का भोजन शान्ति में गुजरा। उनकी आँखें अपनी प्लेट पर जमी थीं। उनके साथ में उनकी, अकेला खाना खाने के आदी हाथों की, बेतरतीबी। उन्होंने मुझे बर्तन धोने से साफ मना कर दिया। ''तुम चली जाओगी तो मेरे पास करने के लिए क्या बचेगा!''

वो अपनी बाँहें मोड़े, कुर्सी पर सीधी पीठ टिकाये बैठी थीं। मैंने पहले कभी उनके शरीर को यूँ सहज और आरामदेह तरीके से चलते नहीं देखा था। वह पहले कभी अपने बालों में उँगलियाँ नहीं फिराती थीं, न ही किसी किताब को पढ़ते वक्त बेख्याली में अपनी गर्दन सहलाती थीं। अकेलेपन की थकान उनके हाव-भाव-भर में दिखाई दे रही थी। अँगड़ाई लेतीं सिर के ऊपर जाती बाँहें; कुर्सी में धँसकर अपने पैर फैलाना। पहले की अपेक्षा उनके चेहरे में कठोरता कम थी। वह तनाव भी कम जो इस जीवन को गुजारते रहने के लिए जरूरी होता है। उनकी भूरी आँखें जो हमेशा मुझे सन्देह से देखती थीं, मुझ पर एक भूखी मुलायमियत के साथ टिकी थीं। वह दिन गिन रही थीं और सुबह उन्होंने खुद को याद दिलाया था कि मैं आज आने वाली हूँ। और अब हम दोनों यहाँ थे और हमारा आधा वक्त बीत चुका था। हमारी मुलाकात का मिजाज सहर्ष और दयालुता से भरा था। अब वह मिजाज नहीं लौट सकता था जो

मेरे पन्द्रहवे साल के वक्त था–

''साली के लिए मैं खुद को मार रही हूँ।''

''मैं एक दिन यहाँ से भाग जाऊँगी।''

''मूर्ख! उससे पहले तुम जेल चली जाओगी।''

वह बार-बार बात करने के लिए नये-नये मुद्दे तलाशती रहीं जिससे वह मुझे जल्दी जाने से रोक सकें। जिससे वे फिर अकेली ना रह जाएँ, अपनी बेटी से मिलने, हमेशा उसके साथ रहने की इच्छा से भरी हुई। ''पौले, मेरे लिए करोंदे लेकर आई थी। तुम्हें विश्वास नहीं होगा, वो कितने स्वादिष्ट हैं! खैर, होंगे भी, उनका मौसम जो है। मुझे याद दिलाना कि तुम्हें जाने से पहले कुछ दे दूँ।''

पौले– मेरी हमउम्र, हमारी पुरानी पड़ोसी थी, जो उनसे हर सप्ताह मिलने आती थी। उसने कभी 'क' छोड़ा ही नहीं था।

मैं दूर सड़क पर चल रही कारों को सुन पा रही थी। साथ ही पास के अपार्टमेंट में चलते रेडियो को भी। शायद, 'टूर दे फ्रांस' का प्रसारण था।

''यहाँ काफी शान्ति है।''

''यहाँ हमेशा शान्ति रहती है। रविवार को तो सबसे ज्यादा।''

मेरी छुट्टियों के दौरान वो कई बार मुझसे आराम करने का कहती थीं। और इस वाक्य से मैं सबसे ज्यादा तब घबराती थी जब मैं शिकायत कर रही होती थी कि मुझे नहीं समझ आ रहा कि मैं क्या करूँ।''

''थोड़ा आराम कर लो।''

मुझे दोबारा अपने अन्दर चिढ़ जागती महसूस हुई पर अब उनके शब्दों का मुझ पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता था। वो सिर्फ मेरी यादें जगा देते थे। जैसे रविवार को रेडियो से आती आवाजें या 'एप्पल टार्ट' जगा देते हैं।

मैं 'क' की गर्मियों की बोरियत महसूस कर पा रही थी। सुबह से शाम तक किताबें पढ़ना, मोंडियाल के चौथाई भरे थियेटर में, रविवार को प्रतिबन्धित या वयस्क फिल्में देखना, जब वह सोच रही होती थीं कि मैं अपनी एक बड़ी कजिन के साथ बाहर टहलने निकली हूँ। नुक्कड़ों के मेले में बच्चों के खेल; सामुदायिक नाचने का हॉल जिसमें घुसने की मैं कभी हिम्मत नहीं जुटा पायी थी।

दोपहरी के बीच में, रसोई की खिड़की की चौखट पर, एक बिल्ली आ गयी। वो अपनी आरामकुर्सी से उछलते हुए उसे अन्दर लेने को गयीं। वह एक गोद ली बिल्ली थी जो दिन में उनके बिस्तर पर सोने आती थी। मेरे आने के बाद से वह इस क्षण सबसे खुश दिखाई दे रही थीं।

बिल्ली ने हमें लम्बे वक्त तक उलझाये रखा। उसे हम देखते रहे और बारी-बारी से अपनी गोद में भी लिया। उन्होंने मुझे उसकी सारी कलाकारियों का ब्यौरा दिया। 'नन्हीं सुअर' परदों को अपने पंजों में भींच रही थी और उनकी कलाइयों को भी जिन पर दो लाल रंग के निशान उछरे हुए थे। जैसे वो कहा करती थीं, उन्होंने वैसे ही कहा, ''हर जीव सुन्दर होता है।'' ऐसा लग रहा था जैसे वह भूल चुकी हों कि मैं कुछ देर में जाने वाली थी।

आखिरी पल में उन्होंने एक फॉर्म निकाला जिसे उनकी 'सोशल सिक्योरिटी' के लिए भरा जाना अपरिहार्य था।

''मेरे पास वक्त नहीं है। मुझे ये दे दो, मैं आपको भर कर भेज दूँगी।''

''इसमें ज्यादा वक्त नहीं लगेगा। स्टेशन महज पाँच मिनट की दूरी पर है।''

''मेरी ट्रेन छूट जाएगी।''

''तुम्हारी आज तक ट्रेन नहीं छूटी है। तुम दूसरी ट्रेन भी ले सकती हो।'' वो रुआँसी हो चुकीं थीं। उन्होंने अपने आदतन, 'मुझे इससे बहुत दुख हो रहा है' से बात खत्म की।

दहलीज पर मुझे चूमने के बाद भी बतियाने की कोशिश करती रहीं। उनकी आखिरी झलक: देहरी पर गोल बाँहों की फ्रेम में अपनी सबसे सुन्दर पीली ड्रेस में खड़ी, जो उनके पेट और बदन से कसी हुई थी। और एक चौड़ी, स्थिर मुस्कान। इस बार मुझे फिर ऐसा लगा कि मैं एक खराब, लगभग कायर तरीके से विदा ले रही हूँ।

मैंने ट्रेन तक पहुँचने के लिए सबसे छोटा रास्ता लिया। वही रास्ता जो 'शैल स्टेशन' से होता हुआ गुजरता था। पुराने दिनों में, मैं वहाँ कुछ देर रुका करती थी जिससे सिनेमा से लौटने पर उनकी प्रश्नवाचक निगाहों का सामना कर सकूँ। अपनी बची लिपस्टिक भी पोंछती थी।

''आखिर दुनिया क्या कहेगी?''

ट्रेन के अन्दर, मैं ना चाहते हुए भी उनकी कल्पना करती रही। एक एकान्तमय सन्नाटे में बर्तन धोती हुई वह और मेरे वहाँ होने के जल्दी से मिटते निशान। मैं 'क' को ओझल होते देखती रही। रेलवे की इमारतें, पटरियों के बगल में रेल कर्मचारियों के मकान।

एक महीने बाद मैं अपनी माँ से मिलने दोबारा लौटी। चर्च से लौटते वक्त उन्हें 'सनस्ट्रोक' हुआ था और 'क' के एक अस्पताल में उन्हें भर्ती किया गया था। मैंने उनके अपार्टमेंट की खिड़की खोल हवा को अन्दर आने दिया, उनकी दराज से कुछ जरूरी कागजात निकाले, फ्रिज में सड़ रहे सामान को फेंका। सब्जियों के खाने में, एक गाँठ लगी पॉलीथिन में करोंदे थे जिन्हें मैं पिछली बार ले जाना भूल गयी थी। अब वे बस एक कत्थई गिलगिला ढेर बन चुके थे। ❑

मो. 7611100440

आसपास

भाषा में स्त्री की भागीदारी

डॉ. अर्चना शर्मा मिश्र

स्त्रीभाषा एक नया पद होते हुए भी दुनिया-भर के विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों, साहित्यकारों और मनोवैज्ञानिकों के लिए बहुत अनजाना क्षेत्र नहीं है। स्त्रीभाषा, जैसा कि इसके नाम से ही ध्वनित होता है कि वह भाषा जिसे स्त्रियाँ बरतती हैं। लम्बे समय तक भाषाविदों ने भाषा को एक सामाजिक या सामूहिक उत्पाद के रूप में परिभाषित करते हुए इसे लगभग लैंगिक पूर्वाग्रहों से मुक्त माना। ऐसी कोई खुली घोषणा तो नहीं थी लेकिन भाषा का सवाल अक्सर एक न्यूट्रल दायरे में ही रहा। यहाँ तक कि सामाजिक भाषा विज्ञान ने भी अपनी शुरुआती समझ में समाज के भिन्न उपेक्षित, वंचित और सबाल्टर्न तबके द्वारा इस्तेमाल किये जा रहे भाषा-रूपों को ही अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाया। स्त्रियों की कोई अलग भाषा होती है या वे किसी अलग भाषा में खुद को अभिव्यक्त करती हैं, यह सवाल भी पितृसत्तात्मक दायरे में विकसित हो रहे विभिन्न ज्ञानानुशासनों में सेंध नहीं लगा पाया था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशक में यह सवाल धीरे-धीरे अपना आकार ग्रहण करने लग गया था। स्त्री-अस्मिता का सवाल जैसे-जैसे एक केन्द्रीय और मुख्य धारा का सवाल बनता गया, वैसे-वैसे इस अस्मिता के निर्माण के कारकों पर नये सिरे और नये नजरिये से सोचा जाने लगा।

ब्रिटिश लेखिका वर्जीनिया वूल्फ (1882-1941) को इस बात का श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होंने पहली बार स्त्री-लेखन को स्त्री-अस्मिता से जोड़ते हुए इसकी एक सैद्धान्तिकी गढ़ने की कोशिश की। उन्होंने अपनी कई किताबों जैसे– मॉडर्न फिक्शन (1929), टू द लाइटहाउस (1927), अॅ रूम फॉर वन्स ओन (1929) और वुमन ऐंड फिक्शन में स्त्री-अस्मिता, स्त्री-लेखन और स्त्री-चेतना से सम्बन्धित सवाल उठाये।

'मॉडर्न फिक्शन' एक तरह से स्त्री सचेतनता का घोषणा-पत्र ही है। इस किताब में वर्जीनिया पिछली पीढ़ी के लेखकों और उनके साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट मन्तव्य देती हैं कि लेखक को अपने लेखन की अस्मिता को महत्त्व देते हुए वही लिखना चाहिए जो जीवन के करीब हो, न कि प्रकाशकों के स्वार्थ से संचालित हो।

आगे वह 'मॉडर्न फिक्शन' को परिभाषित करते हुए कहती हैं कि अपनी अन्तरात्मा से प्रेरित लेखन ही 'मॉडर्न फिक्शन' हो सकता है, क्योंकि यही मौलिक होता है और मौलिकता का सम्बन्ध अनिवार्यत: जीवन और उसकी जटिलताओं से होता है।

अपनी दूसरी आलोचनात्मक कृति 'वुमन ऐंड फिक्शन' में वर्जीनिया ज्यादा स्पष्ट तरीके से स्त्रीभाषा के सवाल को उठाती हैं। स्त्रीभाषा, स्त्री-लेखन, मापदंड के पुरुषवादी सिद्धान्त, महिलाओं की पहचान के संकट और उनकी असफलताओं के सवालों से जूझते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि स्त्री-लेखन में अक्सर यह देखा जाता है कि महिलाएँ अपनी अस्मिता को छुपाते हुए, अपने लेखकीय बोध से झेंपते हुए अन्य शैली में लेखन करती हैं; अर्थात् वे मैं (Self) शैली में लिखने से परहेज करती हैं और ऐसा इसलिए भी है, क्योंकि स्व (Self) का भाव उनमें विकसित या अंकुरित ही नहीं हो पाता है और जब अन्य भाव से, अन्य की शैली में अर्थात् पुंसवादी मानदंडों के अनुसार लिखा जाता है तो ऐसा साहित्य सफलता भले दिला दे, लेकिन वहाँ प्रतिभा ठीक से विकसित नहीं हो

पाती है।

अपनी इस बात की पुष्टि के लिए वर्जीनिया, ऐमिली ब्रेंटे और जॉन ऑस्टिन के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। जहाँ ऐमिली ब्रेंटे स्वीकृत मर्यादा शैली में लिख रही थीं तो जॉन ऑस्टिन अपने स्त्री-रूप को केन्द्र में रखकर लेखन कर रही थीं। वर्जीनिया अपने इस तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में कहती हैं कि जहाँ जॉन ऑस्टिन ने पूरी तरह से अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल किया, वहीं ऐमिली ने कम प्रतिभा के साथ अधिक सफलता पायी।

1929 में वर्जीनिया की एक और किताब आयी– 'अ रूम फॉर वन्स ओन।' यह किताब दरअसल किसी कॉलेज में दिये गये दो व्याख्यानों का संकलन है, लेकिन इस किताब में उन्होंने महिला-लेखन, महिला-कलाकार, कुल मिलाकर महिला प्रतिभाओं के सामने दरपेश जिस तरह की चुनौतियों और कठिनाइयों का जिक्र किया, वह आज भी भारत-समेत दुनिया-भर में उसी तरह बदस्तूर कायम है। अपने इस व्याख्यान में उन्होंने बहुत ही मार्मिक कथन लिखा कि अगर महिलाओं को लिखना है तो उनके पास अपना पैसा और खुद का एक कमरा जरूर होना चाहिए।

(A Women must have money and a room of her own if she is to write fiction.)

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं कि स्त्रियों के सम्बन्ध में पितृसत्तात्मक सोच, रवैया, पुंसवादी मानसिकता समाज में व्याप्त है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी रचनात्मकता भी सदियों से बाधित होती आ रही है। अपने इस व्याख्यान में लगातार इस बात पर जोर देती हैं कि महिलाओं की बौद्धिक, भाषिक स्वतन्त्रता तभी सम्भव हो सकेगी जब वे वित्तीय रूप से स्वतन्त्र होना सीखेंगी।

बहुत खुले रूप में तो नहीं, लेकिन वर्जीनिया के इस चिन्तन में भाषा और सामाजिक भागीदारी का सवाल एक अंडरकरंट के रूप में मौजूद है।

उनकी इस पुस्तक के प्रकाशन के लगभग बीस वर्षों बाद सीमोन द बोउवार (1908-1986) की किताब 'द सेकंड सेक्स' (1949) ने इस मुद्दे को वैश्विक चिन्तन के केन्द्र में ला दिया।

'महिलाएँ पैदा नहीं होतीं, बनायी जाती हैं', जैसे मूलभूत सिद्धान्तों और बहसों को जनमने वाली इस किताब ने महिलाओं की स्थितियों-परिस्थितियों का बारीक विवेचन किया है। पितृसत्तात्मक रणनीति को तार-तार करती हुई यह किताब यह स्थापित करने में सफल रही कि किस तरह इस पितृसत्तात्मकता ने महिलाओं को घरेलू श्रम में उलझाकर उसकी क्षमताओं को सीमाबद्ध किया और उनके 'गर्भाशय' और 'योनि' को 'पैतृकसिद्ध-अधिकारों' में तब्दील कर दिया।

सीमोन ने बहुत बारीकी से समाज में महिलाओं की दोयम स्थिति के कारणों की पड़ताल की और एक महिलापन (Womenness) के बनाये जाने वाले कारकों की व्याख्या की। महिलाओं की कष्ट सहने, त्याग करने, बलिदान देने जैसी प्रवृत्तियों की छद्म महानता के आवरण को बेनकाब करते हुए सीमोन इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि ये तमाम युक्तियाँ इसलिए अपनायी जाती हैं, ताकि महिलाओं की सामाजिक भागीदारी को अवरुद्ध किया जाये और यदि उनमें कोई रचनात्मकता हो भी तो उसका दायरा घर और घर के काम-काज ही रहे।

इस किताब में स्त्रियों को लेकर सीमोन की चिन्ता व्यापक दायरों को समेटती है और इस किताब के आने के बाद स्त्रियों की निर्मिति के तमाम कारकों पर बहस और उससे निकलने की छटपटाहटें और तेज होती गयीं।

इसी क्रम में फ्रांस की एक स्त्रीवादी लेखिका और साहित्य सिद्धान्तकार, हेलेन सिकसाउस ने 'द लाफ ऑफ मेडूसा' और 'द न्यूली बॉर्न वूमन' नामक दो निबन्ध लिखे।

1975 में प्रकाशित अपने इन निबन्धों में, सिकसाउस एक ऐसे लेखन की खोज करना चाहती हैं जो परम्परागत पुल्लिंगी शैली और उसके लेखन सिद्धान्त को नकार सके, क्योंकि उनका मानना था कि इसके अनुसरण के कारण ही महिलाएँ अपनी कोई स्वतन्त्र शैली विकसित नहीं कर पाती हैं, जिससे उनका लेखन बहुत ही बनावटी, असहज एवं प्रतिभाहीन हो जाता है। अपने समय और समाज के पूर्वाग्रहों को स्पष्ट करते हुए सिकसाउस पितृसत्ता की उस मानसिकता को उजागर करती हैं जो सभी अच्छी चीजों और उत्पत्तियों को लिंग (पुरुष) से जोड़कर देखता है और रचनात्मकता और जीवन को भी पुरुषों का निजी क्षेत्र घोषित कर देता है तथा स्त्रियों के किसी भी निजी क्षेत्र की अवधारणा को सिद्धान्ततः नकारता है।

सम्भवतः उस समय में फ्रांस में सीमोन का ही वह व्यापक असर रहा होगा, जिसके कारण उस समय इस तरह की चिन्तातुरता, स्त्री-विमर्श के केन्द्र में आ गयी थी। लुई इरीगरी, जूलिया क्रिस्तोवा जैसी कई स्त्रीवादी लेखिकाओं के यहाँ स्त्री-लेखन और स्त्रीभाषा को लेकर व्यापक चिन्ता दिखाई देती है।

इरीगिरी की पहली ही किताब, 'स्पैकुलम ऑफ द अदर वूमन' (1974) समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक मूल्यों का उपहास उड़ाती है और समस्त पुरुष लेखन को 'Phallocentric' मानती हैं। इरीगिरी के अध्ययन का क्षेत्र बहुत व्यापक था और

वे भाषा विज्ञान, मनोभाषाविज्ञान और स्त्रीवाद की अच्छी अध्येता थीं। उन्होंने मुख्यत: लिंग, अस्मिता और भाषा के सह-सम्बन्धों पर अपना शोध केन्द्रित किया है। उनका स्पष्ट मानना है कि पुरुषों और स्त्रियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा में अन्तर होता है और यह अन्तर सामाजिक संरचनाओं में उनकी भागीदारी के स्तर से पैदा होता है। इस बहस को स्त्रीवादी उपन्यासकार जूलिया क्रिस्तोवा और आगे बढ़ाती हैं। वे ज्यादा वस्तुनिष्ठ तरीके से स्त्रियों की अस्मितापरक राजनीति की वकालत करती हैं। अपने निबन्ध 'नेसेसिटी ऑफ आइडेंटिटी पॉलिटिक्स' में क्रिस्तोवा यह मानती हैं कि समाज में पहचान के दो ही वर्ग – स्त्री और पुरुष नहीं होते हैं। व्यक्तित्व एवं अस्मिता निर्माण के अन्य कई महत्त्वपूर्ण अवयव भी होते हैं। लेकिन वे यह भी मानती हैं कि भाषा व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का एक प्रमुख माध्यम है और स्त्री और पुरुषों के द्वारा बरती जा रही भाषा की भिन्नता का आधार, समाज में उनकी भागीदारी के स्तर, वर्चस्व की स्थिति और उनके आर्थिक सम्बन्धों से ही तय होता है।

अब स्त्रीभाषा की भिन्नता का सवाल खुले तौर पर सामने आ गया था। 1975 में रॉबिन लैकॉफ की किताब 'लैंग्वेज एंड वूमेन प्लेस' तथा 1977 में मैरी हाइट की किताब 'द वे वूमन राइट' ने इस सवाल और स्थापना से लगभग खलबली मचा दी कि स्त्रियों की भाषा, पुरुषों की भाषा से नितान्त भिन्न और अलग होती है। मैरी हाइट ने स्त्रीभाषा को पहचानने के कई सूत्र निर्मित किये, जैसे– स्त्रियों के वाक्य अमूमन छोटे होते हैं, सरल होते हैं, मूल्य निर्णय का अभाव होता है। वहीं मैरी हाइट का मानना है कि स्त्रियाँ कम से कम दावे के साथ लिखती हैं। लैकॉफ भी स्त्रीभाषा की पहचान के सूत्र बताते हुए कहती हैं कि स्त्रियों की भाषा में टैगिंग का इस्तेमाल ज्यादा होता है। वे टैग प्रश्नों को स्त्रीभाषा की आधारभूत विशेषता मानती हैं। (टैग प्रश्न– किसी वस्तु या घटना के बारे में घोषणा या निष्कर्ष और प्रश्न के बीच की स्थिति होती है।) जैसे– तो?, फिर? आदि।

लेकिन 1980 में प्रकाशित पुस्तक 'लैंग्वेज स्टडी' में मार्क लिबरमैन कहती हैं कि स्त्रीभाषा में व्यक्त होने वाली कमजोरियाँ उनकी सत्ता संरचना में कम भागीदारी की वजह से हैं, न कि स्त्री होने की वजह से।

इसी क्रम में मोनिका विटिंग अपनी पुस्तक 'दि प्वाइंट व्यू : यूनिवर्सल ऑर पर्टिकुलर' (1983) में यह घोषणा करती हैं कि दो लिंग नहीं होते, एक ही लिंग होता है और वह है स्त्रीलिंग।

वहीं डी. केनसन अपनी किताब 'फैमिनिज्म एंड लिंग्विस्टिक' (1983) में रेखांकित करती हैं कि स्त्रियाँ उन शब्दों का प्रयोग करती हैं, जो पुरुष अमूमन नहीं करते।

1986 में प्रकाशित पुस्तक 'वूमन एंड लैंग्वेज' में जेफिर कोट्स इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि स्त्रीभाषा कमतर या कमजोर भाषा नहीं है। बस यह एक अलग और भिन्न भाषा है, जिसे पहचानने के सूत्र अभी निर्माण की प्रक्रिया में हैं।

स्त्रीभाषा को समझने के लिए भाषा के 'मैक्रो और माइक्रो' पक्ष को जानना भी जरूरी हो जाता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष दोनों ही भाषा-वर्ग इस्तेमाल करते हैं, लेकिन दोनों की भाषा के लेखन और बरतने में काफी भिन्नता है जो समाज में उनकी भागीदारी, वर्चस्व, आर्थिक सम्बन्ध एवं शक्ति-संरचना पर निर्भर करती है।

उपरोक्त सभी पुस्तकों के माध्यम से सारे भाषा वैज्ञानिक पुरजोर तरीके से एक बहस, विमर्श को स्थापित करते हैं कि महिलाओं एवं पुरुषों की भिन्न-भिन्न भाषा, लेखन-पद्धति एवं अभिव्यक्ति की शैली होती है। वे लेखन में एक समान शैली का इस्तेमाल नहीं करते, क्योंकि यह उनके समाज में स्थित उनकी उपस्थिति पर निर्भर होता है। समय के साथ-साथ जैसे-जैसे आर्थिक सम्बन्ध, समाज में भागीदारी बढ़ती है; उसी अनुरूप स्त्रीभाषा को लेकर जो मान्यताएँ स्थापित हैं, वह भी बदलती हैं।

स्त्रीभाषा आज भी एक अप्रचलित एवं चौंका देने वाला सवाल है एवं इसे अ-शास्त्रीय एवं भिन्न दृष्टि से देखे जाने की रूढ़िता भी है। इसलिए भी यह कई मायनों में महत्त्वपूर्ण बनता है, क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध स्त्री-अस्मिता से है और यही अस्मिता का बोध स्त्रियों को समाज में उनकी हर तरह की भागीदारी दिलवाता है जिससे 'Mental Space' बढ़ने की शुरुआत होनी शुरू होती है और फिर स्त्रियों की भाषा में निर्णयात्मकता एवं पूर्णता आनी शुरू होती है।

इन सारे परिणामों को भाषा अर्थात् स्त्रीभाषा के स्वरूप में आ रहे बदलावों की गहन पड़ताल से ज्यादा अच्छे से एवं प्रमाणों के साथ समझा जा सकता है।

भारतीय भाषाविज्ञान या आलोचना सिद्धान्तों में अभी भी स्त्रीभाषा एक अजनबी पद है।

❑

सिविल लाइंस, पीडब्लूयडी रेस्ट हाउस के पीछे,
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 7264051626

लेखाजोखा

वर्ष 2022 की स्त्री-रचनाशीलता

साधना अग्रवाल

अभी-अभी इतिहास हुआ साल 2022 साहित्य के नक्शे पर इस अर्थ में एक गहरी लकीर खींच गया क्योंकि पिछले वर्ष रचनात्मकता की दृष्टि से, खासकर महिलाओं ने अपनी सृजनात्मकता से सार्थक हस्तक्षेप किया है।

इस वर्ष प्रकाशित साहित्य की विभिन्न विधाओं से मैंने टिप्पणी के लिए खासकर महिलाओं द्वारा रचित पुस्तकों को चुना है। मैं यह दावा तो नहीं कर सकती कि सभी रचनाकारों की पुस्तकें मैं पढ़ सकी लेकिन अपनी सीमा को जानते हुए जितना कुछ मैं पढ़ सकी, आपके सामने है–

सबसे पहले मैं बात करना चाहूँगी इस वर्ष प्रकाशित उपन्यासों पर क्योंकि यह प्रश्न जब-तब हमारे सामने उठता है कि आखिर उपन्यास से हमारी क्या अपेक्षा रही है? काल का यथार्थ, व्यक्ति-समाज का यथार्थ और इन दोनों से परे निजी मन का यथार्थ? वरिष्ठ कथाकार **चन्द्रकान्ता** कश्मीर-केन्द्रित लेखन के लिए जानी जाती हैं। उनके अब तक 14 कहानी-संग्रह और 8 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इस वर्ष प्रकाशित उनका उपन्यास 'समय-अश्व बेलगाम' में भी कश्मीरी पंडितों के विस्थापन की ही कथा है जिसमें एक कश्मीरी पंडित परिवार अपनी जमीन से उखड़कर महानगर दिल्ली में शरण लेता है और जिन्दगी की जद्दोजहद में नये सिरे से जीवन की शुरुआत करता है। लेकिन विडम्बना ये है कि लेखिका का यह उपन्यास भी अपने पिछले कश्मीर से सम्बन्धित उपन्यासों के आगे कोई नयी लकीर नहीं खींचता।

सुपरिचित कथाकार **मधु कांकरिया** का उपन्यास 'ढलती साँझ का सूरज' इस वर्ष का एक उल्लेखनीय उपन्यास कहा जा सकता है। इसके केन्द्र में आत्महत्या करते किसानों का त्रासदीपूर्ण जीवन है। जहाँ सरकारी तन्त्र, व्यवस्था, भूमंडलीकरण, शोषण, गरीबी, तंगहाली, संघर्ष, जिजीविषा आदि समस्याओं को लेखिका ने बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। यह मधु कांकरिया का एक शोधपरक उपन्यास है जिसमें तथ्यों की यथार्थपरक आधारभूमि पर कल्पना के रंगों से शब्दों की रेखाओं से आकार दिया गया है।

'शहर से दस किलामीटर' **नीलेश रघुवंशी** का दूसरा

उपन्यास है जो उनके पहले उपन्यास 'एक कस्बे के नोट्स' के दस साल बाद वर्ष 2022 में आया है। इस अन्तराल से समझा जा सकता है कि लेखिका ने अपने अनुभवों को, बिना किसी हड़बड़ी के, एक ऐसे विषय को उठाया है जो बिल्कुल अलग हटकर है। यह उपन्यास अनेक मुद्दों को उठाता है जिनमें प्रमुख है, किसानों का मुद्दा। किसान मजबूर होकर बाजारवाद की गिरफ्त में आकर अपनी जमीन बेचने को विवश हैं और शहर से दूर पिछड़े इलाकों में जाकर अपनी खेती-किसानी कर रहे हैं। यह उपन्यास तेजी से बदलती दुनिया को बहुत नजदीकी से दिखाता है।

वरिष्ठ कथाकार **नासिरा शर्मा** का 'अल्फा बीटा गामा' उपन्यास, कोरोना जैसी महामारी के दौरान उपजी समस्याओं और संघर्षों के बहाने एक ऐसे विषय को उठाता है जो अभी तक अलक्षित था, जिसकी तरफ इससे पहले सम्भवत: किसी का ध्यान नहीं गया। इसमें उन्होंने कुत्तों की अनेक प्रजातियों के गहरे अध्ययन और शोध के माध्यम से हमारी संवेदना को झकझोरा है। कोरोना के समय में इंसानी संघर्ष और जिन्दगी बचाने के लिए जिजीविषा की ओर तो ध्यान बहुत लोगों का गया लेकिन उसी अनुपात में जो पशु, खासकर कुत्ते जो सार्वजनिक स्थलों जैसे दुकान, होटल, फुटपाथ और रेहड़ी जैसी जगहों के बन्द हो जाने के कारण, न सिर्फ भूखे हो गये बल्कि बीमार और अकेले तथा बेसहारा भी। लेखिका ने कुत्तों की पीड़ा को मानवीय भाषा में समझाने का प्रयत्न किया है।

सुपरिचित लेखिका **जयश्री राय** का नया उपन्यास 'थोड़ी सी जमीन थोड़ा आसमान' मनुष्य की संवेदना को बहुत गहराई से कुरेदता है क्योंकि हमने अपने चारों ओर भाषा, धर्म, वर्ग, जाति, क्षेत्र, रंग आदि के न जाने कितने घेरे या बाड़े बना लिए हैं, जिनसे हम बाहर नहीं निकलना चाहते और अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित होकर अपने में सिमटने को मजबूर हैं। लेखिका ने अँधेरे कोनों में मनुष्यता की रोशनी तलाशने की कोशिश की है। इसका लोकेल विशाल फलक तक फैला है जिसकी जद में न केवल हमारा देश आता है बल्कि कई दूसरे देश भी। कहा जा सकता है कि जयश्री राय ने मनुष्यता को बचाने की कोशिश में भूगोल की तमाम दीवारों को लाँघ दिया है।

'अन्त से शुरू' कथाकार **नीला प्रसाद** का पहला ही उपन्यास है। हालाँकि इससे पहले उनके चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके है और चर्चित भी। नीला स्वयं कोल इंडिया के महाप्रबन्धक पद पर कार्य कर चुकी हैं। सम्भवत: इसी लिए उनके लेखन के केन्द्र में कामकाजी स्त्री होती है। इस उपन्यास में भी नायिका नन्दिता केन्द्र में है जो विवाहित होते हुए भी घर और बाहर के संघर्षों से जूझ रही है।

'चाँद गवाह' सुपरिचित कथाकार **उर्मिला शिरीष** का पहला ही उपन्यास है। यद्यपि इससे पहले उनके 10 कहानी-संग्रह प्रकाशित भी हो चुके हैं और भरपूर चर्चित भी। इस उपन्यास के केन्द्र में स्त्री है जो मन से लेकर देह तक का सफर ही नहीं करती बल्कि सवाल भी करती है कि देह के रिश्तों से बड़े रिश्ते आत्मा के होते हैं। यहाँ अकेलेपन की त्रासदी भी मौजूद है, बिखराव भी है और टूटन भी लेकिन विशेष बल दिया गया है कि जिन्दगी को अपने मन-माफिक जीने में ही सार्थकता है और वह भी निडर और निर्भीक होकर।

मनीषा कुलश्रेष्ठ अपने उपन्यास 'सोफिया' में प्राचीन परम्पराओं और रुढ़ियों को चुनौती देती हुई एक नया आख्यान रचने की कोशिश करती हैं। इसमें बने-बनाये धार्मिक ढाँचे को भी तोड़ने की पहल की गयी है। चूँकि मनीषा का मानना है कि प्रेम इन तमाम बातों से उपर होता है। क्योंकि प्रेम एक ऐसी मन:स्थिति है जिसे समाज सहजता और खुलेपन से स्वीकार नहीं करता जिसका खामियाजा अन्तत: मनुष्य को उठाना पड़ता है। इस उपन्यास के माध्यम से मनीषा एक ऐसी प्रेमकथा लेकर आयी हैं जो समाज के असहिष्णु चेहरे को सामने लाती है।

इन्दिरा दाँगी ने अपने उपन्यास 'विपश्यना' में हमारे सामने अनेक प्रश्न रखे हैं मसलन, हमें क्या चाहिए? हम कौन हैं? क्यों हैं? सुख की परिभाषा क्या है? आदि। यह उपन्यास अपने अन्तरतम की रोशनी में बाहर की दुनिया को देखना, जीना और जीवन की तलाश के साथ सत्य की खोज भी करता है।

लगभग तीन दशकों से लेखन में सक्रिय प्रतिष्ठित और वरिष्ठ कथाकार **चित्रा मुद्गल** का 'नकटौरा' पाँचवा उपन्यास है। वर्ष 1990 में अपने पहले उपन्यास 'एक जमीन अपनी' से ही साहित्य जगत में वह चर्चा में आ गयी थीं। जैसा कि इसके शीर्षक से उद्घाटित होता है कि बारात वाली रात को स्त्रियों को जो स्वायत्ता मिलती है, उसके ताने-बाने से उठाया है। लेकिन इस उपन्यास को उनका आत्मकथात्मक उपन्यास ही कहना चाहिए। इस उपन्यास के माध्यम से पाठक को चित्रा जी के जीवन-संघर्षो, चुनौतियाँ, विवाह, परिवार, समाज, सामाजिक कार्यकर्ता, अन्तर्द्वन्द्व, अन्तर्विरोध, निडरता, बेबाकी, साहस, निर्भीकता आदि स्पष्ट दिखाई देती है। एक अच्छी बात यह है कि वे बड़ी कुशलता से घर और बाहर दोनों में सन्तुलन बना लेती हैं। चित्रा मुद्गल को जानने के लिए यह उपन्यास बेहद जरुरी तो है ही, पठनीय भी कम नहीं।

'पंचम की फेल' उपन्यास **कृष्णा अग्निहोत्री** का नया और आठवाँ उपन्यास है जो इस बात की ताकीद करता है कि वे इस उम्र में भी (88 वर्ष) रचनात्मक रूप से सक्रिय हैं जो बड़ी बात है। अपनी रचनाओं से तो वे पाठकों में समादृत हैं ही लेकिन अपनी आत्मकथा के दो खंडों– 'लगता नहीं है दिल मेरा' एवं 'और, और, औरत' से वह काफी चर्चित रही हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों की जिन्दगी के सच को उजागर किया है जहाँ लोग सामान्य जिन्दगी के लिए भी संघर्षरत हैं और विकास से कोसों दूर।

रामकथा से प्रेरित अनेक रचनाएँ हमारे सामने आती हैं, उसी क्रम में सुपरिचित लेखिका **आशा प्रभात** का नया उपन्यास है 'उर्मिला'। जैसा कि हम जानते हैं कि रामकथा में उर्मिला लगभग उपेक्षित पात्र है और उसी को केन्द्र में रखकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' जैसा महाकाव्य लिखा था। यह उपन्यास इसी दृष्टि से उर्मिला के सम्पूर्ण अनुभव-जगत को सामने लाने का प्रयास करता है।

'पारा पारा' **प्रत्यक्षा** का एक ऐसा उपन्यास है जो एक स्त्री की अन्तरंग कथा कहता है। इसकी मुख्य पात्र हीरा अपने विवाहित जीवन में आयी प्रेम की ताजगी को सम्पूर्णता में बँधे

निष्पाप भाव से जीना चाहती है। इसमें नैतिकता के द्वन्द्व में उलझा एक मन है जो सुकून की चाहत में अतीत के सफर पर चलना चाहता है। अतीत में तमाम स्मृतियाँ हैं जिन्हें वह जीवित कर लेने की जुगत में है। यह उपन्यास, स्मृति और चाहत की बुनावट से, एक नया पाठ तैयार करता है और पाठकों को अपने आकर्षण में बाँध लेने की सामर्थ्य रखता है।

कहानी-संग्रह

यह अच्छी बात है कि अपने समकालीन कथाकारों में **प्रज्ञा** ने अपनी अलग और विशिष्ट पहचान बनायी है। 'मन्नत टेलर्स' से उनको एक मुक्कमल पहचान मिली जो उनके चौथे कहानी-संग्रह 'मालूशाही मेरा छलिया बुरान्श' तक निरन्तर प्रगाढ़ हो रही है। इस संग्रह में उनकी कुल नौ कहानियाँ हैं जिसमें उनके अनुभव-जगत का दायरा विशाल फलक तक फैला है। इसमें यथार्थ के बीहड़ रास्ते हैं तो उन रास्तों पर संवेदना के कोमल और नाजुक फूल छिटके दिखाई देते हैं। प्रज्ञा के पास समृद्ध भाषा है जो पाठकों को अपनी गिरफ्त में लेने में सक्षम है।

युवा कथाकार **दीपा गुप्ता** के प्रस्तुत कहानी-संग्रह 'अल्मोड़ा की अन्ना' के शीर्षक से ही पता लग जाता है कि इनका लोकेल पहाड़ी-अंचल है जिसमें स्त्री पात्रों के माध्यम से लेखिका ने छोटे-छोटे प्रश्नों से हमारे मन में न केवल बेचैनी पैदा की है बल्कि हमें वे उद्वेलित भी करती हैं। दीपा अल्मोड़ा की भौगोलिक और नैसर्गिक खूबसूरती के चित्रण से यहाँ आने का निमन्त्रण भी देती हैं।

वरिष्ठ कथाकार **सारा राय** ने अपनी भाषा के चलते कथा-जगत में अपनी एक अलग पहचान बनायी है। 'नबीला और अन्य कहानियाँ' में बहुत छोटी-छोटी घटनाओं की तलहटी में उतरते, अनोखे अन्दाज से कहानी लेकर वे बाहर आती हैं। यही कारण है कि इन कहानियों में साधारण से साधारण पात्र और घटनाएँ, कहानी के केन्द्र बिन्दु बन जाते हैं जिनमें एक तरफ मछली, उल्लू, कुत्ते, तितली, चींटा, कबूतर और कव्वों की दास्तान तो है ही तो दूसरी तरफ शीर्ष कहानी 'नबीला' में

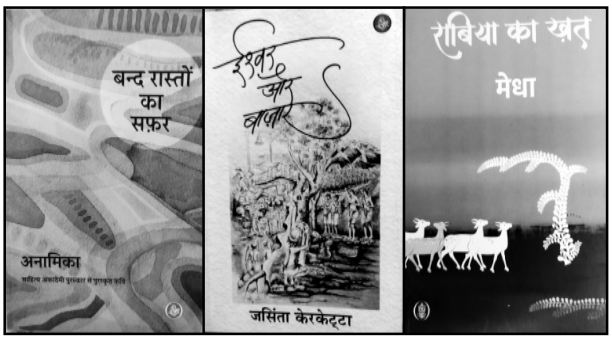

एक बांग्लादेशी विस्थापित लड़की की कहानी के माध्यम से स्त्री-विमर्श के भी वे तमाम सवाल उठाती हैं।

युवा कहानीकार **रश्मि शर्मा** ने कविता के गलियारे से कहानी के आँगन में आने की सार्थक कोशिश की है जो इसका प्रमाण है कि तात्कालिक लोकप्रियता हासिल करने का कोई लोभ उनकी कहानियों में दिखाई नहीं देता। 'बन्द कोठरी का दरवाजा' उनका पहला कहानी-संग्रह है। शीर्ष कहानी में पढ़ी-लिखी मुस्लिम स्त्री नसरीन को शादी के बाद अपने पति रेहान के 'गे' होने का पता लगता है तो बहुत कुशलता से इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेती है और बन्द कोठरी के दरवाजे खोलने की सफल कोशिश करती है।

कविता-संग्रह

सुपरिचित कथाकार और कवि **अनामिका** समकालीन लेखन की दुनिया में अपनी एक खास पहचान रखती हैं। उनकी कविताओं में बहुधा एकान्त आता है लेकिन वह उन्हें पसन्द नहीं क्योंकि वह बहुविध समाज को देखने में यकीन करती हैं। उनके यहाँ अकेलापन जब-तब आता तो है लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता। उनका नवीनतम कविता-संग्रह 'बन्द रास्तों का सफर' की पहली कविता 'छूटना' में उनकी फिक्र साफ दिखाई देती है। लेकिन हमें यह याद रखना है कि कुछ भी स्थिर नहीं होता खासकर समय इसलिए 'धीरे-धीरे जगहें छूट रही हैं/ बढ़ना सिमट आना है वापस अपने भीतर।'

'ईश्वर और बाजार' **जसिन्ता केरकेट्टा** का तीसरा कविता-संग्रह है। जसिंता की कविताओं की एक बड़ी खूबी यह है कि वह कल्पना के स्वप्नलोक में न फँसकर, यथार्थ की खुरदुरी जमीन पर पैर रखती हैं और सफलतापूर्वक अपनी मंजिल की ओर बढ़ती हैं। उनकी कविताओं में यथार्थ की कई परतें हैं जिन्हें वह हमारे सामने लाती हैं ताकि खुली आँखों से हम सच का सामना कर सकें।

'मुझे पतंग हो जाना है' **ऋतु त्यागी** का नया कविता-संग्रह है जो स्मृतियों के धागे से बँधा शब्द-रूपी मोतियों से पिरोया हुआ है। ऋतु के यहाँ पर्यावरण भी है, प्रकृति भी है और प्रेम तो सर्वत्र है ही।

'राबिया का खत' **मेधा** का पहला ही कविता-संग्रह है। जिसमें उनकी छोटी-बड़ी कविताएँ हैं जिनमें स्त्री कई रूपों में हमारे सामने आती है। इसके बिम्ब और प्रतीक बिल्कुल सहज और विश्वसनीय लगते हैं इसलिए भी मेधा बधाई की पात्र हैं।

आलोचना/ समीक्षा/ निबन्ध/ अनुवाद

साहित्य की सबसे बदनाम और शुष्क विधा आलोचना है। पाठक से लेकर रचनाकार तक इसकी विश्वसनीयता पर सवाल उठाते रहे हैं। जब तक आलोचना की खोयी हुई विश्वसनीयता वापस नहीं लौटती है, साहित्य में अराजकता की गम्भीर स्थिति बनी रहेगी। क्रमशः अच्छे-बुरे साहित्य की पहचान मिटती जाएगी। हमें याद रखना चाहिए कि रचना और आलोचना एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि बराबरी के पायदान पर हैं क्योंकि रचना भी अन्ततः आलोचना है और आलोचना रचना। इस बात को रचनाकार भी समझें और आलोचक भी।

इस वर्ष प्रकाशित **सुधा अरोड़ा** के सम्पादन में मन्नू भंडारी पर केन्द्रित पुस्तक 'संघर्षों का अलावः आखरों की आँच' आयी है जो वस्तुतः मन्नू जी की स्मृति में हँस ने एक अंक केन्द्रित किया था, वह अब पुस्तक-रूप में हमारे सामने है। इसमें मन्नू जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर तो लेख हैं ही बल्कि उनके जीवन से जुड़े तमाम नये पहलू सामने आते हैं। सुधा अरोड़ा अपने सम्पादकीय में लिखती हैं– 'मन्नू जी जितनी बड़ी लेखक थीं, उतनी ही संवेदनशील इंसान भी। कोई लेखकीय नखरा नहीं था उनमें। रचना हो या जीवन वे दोहरेपन की कायल न थीं।'

'दुनिया में औरत' युवा लेखिका **सुजाता** की स्त्री-विमर्श की एक ऐसी पुस्तक है जिसमें 13 अध्याय हैं जो विश्व की तमाम स्त्रियों के बीच एक ऐसा सम्बन्ध बनाते हैं जिससे स्त्री-विमर्श का एक नया पाठ किया जा सकता है। हालाँकि सुजाता अपनी ही पहली आलोचनात्मक पुस्तक 'आलोचना का स्त्री पक्ष' का अतिक्रमण नहीं कर पातीं, जो इसकी सीमा कही जा सकती है।

'समकालीन लेखन और हिन्दी आलोचना' पुस्तक **वन्दना मिश्रा** के समीक्षात्मक लेखों का संग्रह है जो समय-समय पर लिखे गये हैं। जो अधिकांश कथा-साहित्य पर केन्द्रित हैं। लेकिन इसे सिलसिलेवार नहीं रखा गया है बल्कि जब कभी उन्होंने किसी कृति पर समीक्षा लिखी है तो उनको संगृहित कर लिया गया है।

सुपरिचित कवयित्री **सुमन केशरी** की पुस्तक 'कविता के देश में' यूँ तो एक आलोचनात्मक पुस्तक है लेकिन यह इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि एक कवि दूसरे कवियों की कविताओं को कैसे पढ़ता है, गुनता है, विवेचन करता है, हमारे सामने लाती है। जिसके घेरे में एक ओर पूर्वज कवि हैं तो दूसरी ओर कुछ नये कवि भी। कह सकते हैं कि उन्होंने कविता के देश में एक नया प्रयोग किया है।

'शाहीन बाग: लोकतन्त्र की नई करवट' पत्रकार **भाषा सिंह** की एक ऐसी पुस्तक है जो शाहीन बाग आन्दोलन पर केन्द्रित है। इस आन्दोलन को इसलिए भी याद रखा जाएगा क्योंकि आजादी के बाद यह एक ऐसा व्यापक जन-आन्दोलन के रूप में उभरा जिसने राष्ट्रवाद-राष्ट्रप्रेम और देश से रिश्ते को भी नये सिरे से परिभाषित करने पर हमें विवश कर दिया। भाषा सिंह ने बहुत परिश्रमपूर्वक इस आन्दोलन का दस्तावेजीकरण कर इसे इतिहास में अमर कर दिया।

'आजादी मेरा ब्रांड' जैसी पुस्तक से चर्चित हुईं लेखिका **अनुराधा बेनीवाल** की 'लोग जो मुझमें रह गये' नयी पुस्तक है। यह मात्र यायावरी श्रंखला की पुस्तक नहीं है बल्कि यात्रा में मिले तमाम लोगों की मार्फत खुद को जानने और अपने भीतर घटित हो रहे बदलावों की स्मृतियाँ हैं।

हिन्दी और मैथिली की सुप्रसिद्ध कथाकार **उषाकिरण खान** का मूल रूप से मैथिली में लिखा गया नया उपन्यास 'पोखरि रजोखरि' हिन्दी में अनूदित होकर 'कथा रजोखर' नाम से आया है जिसका अनुवाद मीना झा ने किया है। इस उपन्यास में मिथिला की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

दो अनूदित पुस्तकों का जिक्र करना भी मुझे जरूरी लग रहा

है। यद्यपि दोनों पुस्तकों के लेखक हैं, बांग्ला के प्रसिद्ध लेखक रंजन बन्द्योपाध्याय। चूँकि इनका हिन्दी अनुवाद किया है **शुभ्रा उपाध्याय** ने इसीलिए इन दोनों पुस्तकों को मैंने अपने इस लेख में शामिल करना उचित समझा। पहली पुस्तक है मूल बांग्ला कृति 'आमि रवि ठाकुरेर बोउ: मृणालिनीर लुकानो आत्मकथा' जिसका हिन्दी अनुवाद है 'मैं रवीन्द्रनाथ की पत्नी: मृणालिनी की गोपन आत्मकथा'। इसमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पत्नी मृणालिनी देवी की कहानी है जिनका जीवन रवीन्द्रनाथ की विराट छाया में रहकर भी हमेशा अँधेरे में रहने को ही अभिशप्त रहा।

दूसरी पुस्तक है मूल बांग्ला कृति 'कादम्बरी देवीर सुसाइड नोट: रवीन्द्रनाथेर नोतुन बोउठाकेर शेष चिठि', जिसका हिन्दी अनुवाद है 'कादम्बरी देवी का सुसाइड नोट: रवीन्द्रनाथ की भाभी का अन्तिम पत्र'। इसमें विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाभी के त्रासद जीवन की मार्मिक कथा है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में लेखक ने स्पष्ट किया है कि 'महज 25 वर्ष की उम्र में रवीन्द्रनाथ की भाभी-जिन्हें वे नोतुन बोउठान कहते थे। कादम्बरी देवी ने आत्महत्या कर ली थी, कहा जाता है कि आत्महत्या का कारण बताते हुए उन्होंने एक सुसाइड नोट भी लिखा था। उस चिट्ठी का नष्ट कर दिया गया था। उसी चिट्ठी को ध्यान में रखकर, अनुमान से यह उपन्यास लिखा गया है। और लेखक ने बहुत सारे अनुत्तरित प्रश्नों का जवाब खोजने की कोशिश की है।

कुल मिलाकर यह वर्ष रचनात्मक दृष्टि से खासकर स्त्री-लेखन का उर्वर वर्ष कहा जा सकता है क्योंकि अभी तक यह माना जाता रहा है कि स्त्रियों की चौहद्दी घर-परिवार तक सीमित है जिसे उन्होंने हर विधा में हस्तक्षेप करके गलत साबित कर दिया है। आप सभी को नये वर्ष की शुभकामनाएँ!

जी-1702ए फ्यूजन होम, टेक जोन-IV
ग्रेटर नोएडा (पश्चिम),
गौतम बुद्ध नगर-201306 (उ.प्र.)
मो. 9891349058

गुडबुक

चाँद गवाह : उर्मिला शिरीष

स्त्री-संघर्ष की यात्रा

प्रज्ञा

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उर्मिला शिरीष एक स्थापित नाम है। कुर्की तथा अन्य कहानियाँ, पुनरागमन, निर्वासन, रंगमंच, शहर में अकेली लड़की, सहमा हुआ कल जैसे चर्चित कहानी-संग्रहों के बाद इनका पहला उपन्यास 'चाँद गवाह' सामयिक प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। स्त्री-जीवन के संघर्षों, सपनों, उम्मीदों, आकांक्षाओं से लेकर उसकी मायूसियों, हताशाओं और नाउम्मदियों की दुनिया इतनी पुरानी और इतनी नयी है कि इस विषय पर साहित्य में, विशेष रूप से आधुनिक साहित्य में, निरन्तर लिखा जाता रहा है। यह सत्य है कि इतने विपुल साहित्य की रचना के बावजूद, समय में आते निरन्तर बदलावों के साथ-साथ, स्त्री के संघर्ष और सपने भी बदलते रहे हैं। पितृसत्तात्मक, पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्री के संघर्ष की शुरुआत, अधिकारों के लिए किये जाने वाले संघर्ष से पहले, अस्तित्व से शुरू होती है। जन्म के लिए शुरू हुआ संघर्ष, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार से लेकर प्रेम, विवाह, सन्तान की प्राप्ति तक जाता है। इन सभी पड़ावों पर स्त्री को अपने लिए संघर्ष करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि जीवन के इन सामान्य-से लगने वाले पड़ावों पर निर्णय लेने का हक स्त्री को नहीं होता। उसके लिए निर्णय लेने का अधिकार पिता, पति और पुत्र के पास है। समाज की इस असमान और अन्यायपूर्ण व्यवस्था की विडम्बना यह है इसे सामाजिक-वैधानिक स्वीकृति मिली हुई है। सामाजिक विधान, संस्थाएँ पुरुष वर्चस्ववाद के पोषक हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री निरन्तर समझौते करने के लिए विवश कर दी जाती है। उर्मिला शिरीष का उपन्यास 'चाँद गवाह', स्त्री-जीवन की त्रासदी, सपनों और संघर्षों को, व्यापक सामाजिक सन्दर्भों में प्रस्तुत करता है।

'चाँद गवाह', दिशा नामक स्त्री की कहानी कहता है जो बेमेल विवाह की त्रासदी झेल रही है। दो युवा बेटियों– पारुल और निधि की माँ दिशा, शराबी पति राजीव के साथ रहते हुए, अपने मित्र सन्दीप को अपने साथ रहने के लिए बुला लेती है। सन्दीप और दिशा की यह प्रेम कहानी, व्यापक स्त्री-स्वाधीनता का आधार बनती है, जिसका विरोध परिवार और समाज करता है। यह बात प्रमाणित है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को एक सम्पत्ति की तरह माना जाता है। पुरुष यह मानकर चलता है कि स्त्री घर के अन्य सामान की तरह ही बेजुबान और खामोश रहे। वह एक जीवित मनुष्य की तरह सवाल न करे और न ही स्वामी के किसी निर्णय का विरोध करे। उपन्यास में, दिशा वर्षों तक इसी प्रकार का जीवन जीती है और जब तक वह यह जीवन जीती है तब तक वह एक आदर्श माँ, पत्नी और बहन मानी जाती है, परन्तु वह जिस दिन अपने पति राजीव के अत्याचारों से कराह कर मुक्ति की आवाज उठाती है, वह चरित्रहीन ठहरायी जाने लगती है। उर्मिला शिरीष इस उपन्यास में सवाल उठाती हैं कि ऐसा क्यों होता है कि एक स्त्री की पुकार को यह समाज अपने बनाये नियमों के कारण अनसुना कर देता है।

उपन्यास पितृसत्ता के बनाये गये अमानवीय और असमान नियमों को प्रश्नांकित करता है। उपन्यास दर्शाता है कि पितृसत्तात्मक समझ और सोच, मात्र पुरुषों में ही नहीं होती, अपितु यह सोच स्त्री को भी प्रभावित करती है। बहुत समय पहले अंटोनियो ग्राम्शी ने *'हेजेमनी'* को परिभाषित किया था जहाँ पर सत्ता पक्ष के मनुष्य-विरोधी विचारों को भी जनता एक सामान्य समझ या कॉमन सेंस के तौर पर स्वीकार कर लेती है। उपन्यास में 'मैं' का कथन पितृसत्ता के इसी वर्चस्व को दिखाता है: ''किसको संघर्ष नहीं करना पड़ता। किसके पति, भाई या पिता अत्याचारी, शोषक और भ्रष्ट नहीं होते। इसका यह मतलब तो नहीं कि उस तानाशाही और अपमान और पीड़ा से बाहर आने के लिए किसी अन्य पुरुष की शरण में चले जाओ।'' यानी भले ही स्त्री तमाम पीड़ा, यातना और अपमान झेले, परन्तु परिवार और सम्बन्धों की अमानुषिकता को चुनौती न दे। यह सोच

स्त्री की मुक्ति की इच्छा-मात्र को पाप और अनैतिक करार देती है। एक स्त्री की यौनिक शुचिता को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि स्त्री की सम्मान, स्नेह, आदर, प्रेम की सामान्य मनुष्योचित अपेक्षाएँ, यौनिक शुचिता की बलि चढ़ा दी जाती हैं। दिशा इसी प्रकार से अपमान और निन्दा का सामना करती है।

आम तौर पर स्त्रीवादी साहित्य में पुरुष को स्त्री-दुर्दशा के लिए जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। ऐसी कथाओं में अक्सर दो ही रंग होते हैं– एक काला और दूसरा सफेद। पर इस उपन्यास में उर्मिला शिरीष के पात्र काले और सफेद नहीं हैं। वे जीवन के गहरे-हल्के, धूसर और चमकते रंगों से रँगे हुए हैं। वे जीवन की अप्रत्याशा से धड़कते हैं। यह उपन्यास दिखाता है कि समाज के सारे पुरुष अन्यायी, अत्याचारी और स्त्री-विरोधी नहीं हैं और न ही समाज की सभी स्त्रियाँ, स्त्री के पक्ष में खड़ी होती हैं। सन्दीप, इस उपन्यास में, पुरुष की स्टीरियोटाइप छवि का विकल्प रचता है। सन्दीप, एक साथी की तरह, दिशा को आगे बढ़ाने के लिए अपने परिवार, दिशा के परिवार और समाज के ठेकेदारों से लड़ता है। उसके प्यार में एकाधिकार नहीं है। वह चाहता है कि दिशा, राजीव ही नहीं, अपितु अपने भाइयों पर भी निर्भर न रहे। अक्सर स्त्रीवादी विमर्श को स्त्रियों द्वारा, स्त्रियों के लिए और स्त्रियों का विमर्श मान लिया जाता है जिसमें जो जितनी जोर से पुरुषों का विरोध करता है, वह उतना अधिक स्त्रीवादी माना जाता है। यह सही है कि स्त्रियों की आर्थिक-सामाजिक-भावात्मक गुलामी के लिए पुरुष वर्चस्ववाद जिम्मेदार है, वहीं यह बात भी रेखांकित की जानी चाहिए कि समाज में अनेक स्त्रियाँ ऐसी हैं जो पुरुष वर्चस्ववाद का प्रतीक बन सकती हैं और अनेक पुरुष समाज में ऐसे मिलेंगे जो स्त्रियों के मानवाधिकार और अस्मिता संघर्ष में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। इसीलिए प्रसिद्ध स्त्रीवादी चिन्तक बेल हुक्स ने कहा था कि स्त्रीवाद सभी का है, इसलिए पुरुष भी स्त्रीवादी हो सकते हैं। 'चाँद गवाह' का सन्दीप, स्त्रीवादी पुरुष की परिभाषा पर खरा उतरता है। वह उस दिशा में आत्मविश्वास भरता है जिसे अभी तक हर काम के लिए तिरस्कार, उपेक्षा और अपमान ही मिला है। वह दिशा से कहता है, ''क्या जीवन इतना-भर है, खाना-पीना... काम के लिए संघर्ष करना! जीवन विराट है, बहुआयामी है... संघर्ष और सौन्दर्य का संगम है... प्रेम और घृणा का समन्वित रूप। तुम्हारे जीवन में तो दोनों ही भाव चरम पर हैं। एक ओर प्रेम और दूसरी तरफ अपने ही लोगों द्वारा फेंकी गयी घृणा... क्योंकि उन्हें तुम्हारे जीवन की सुन्दरता से नहीं, खुशी से नहीं, अपने सम्मान और स्टेटस से प्रेम है, मोह है...।'' उर्मिला शिरीष उपन्यास में सन्दीप के जरिए किसी देवता की छवि निर्मित नहीं करती हैं अपितु मनुष्य में ही सामान्य से ऊपर उठते सच्चे मनुष्य की छवि को सृजित करती हैं। दिशा को अपने पैरों पर खड़ा कर सन्दीप दिशा को छोड़ कर चला जाता है पर जाते-जाते स्त्री-पुरुष के प्रेम को एक नया उदात्त रूप दे देता है। वह कहता है, ''बताया था न... पचास हजार पेड़ लगाने और जो जंगल खनिज-सम्पदा के नाम पर काटे जा रहे हैं, उन्हें बचाने का लक्ष्य है, वहीं जाऊँगा। तुम्हारे नाम के पचास हजार पेड़। प्रेम का पल्लवन, प्रस्फुटन पेड़ों की शाखाओं से ज्यादा कौन फैलायेगा! हरितिमा, रस-गन्ध, फूल-फल, हवा, आकाश, बादल, इन्हीं में तो प्रेम का असली रूप दिखता है।''

'चाँद गवाह' सामाजिक दृष्टि से एक वर्जित प्रेम की कहानी कहने का साहस करता है। वर्जित इस अर्थ में कि एक शादीशुदा दो जवान होती बेटियों की माँ पति की मौजूदगी में अपने प्रेमी को अपने घर में रखने का साहस करती है। इसका विरोध परिवार करता है। दिशा की बेटियाँ मानती हैं कि सन्दीप दिशा से प्रेम नहीं करता बल्कि दिशा की सम्पत्ति के लिए प्रेम का नाटक करता है। वे दिशा को निरन्तर कोसती हैं। उपन्यास में दो पीढ़ियों का संघर्ष साफ दिखाई देता है। आज माता-पिता अक्सर यह शिकायत करते हैं कि बच्चे उनकी हर बात काटते हैं, उनको हमेशा गलत ठहराते हैं। पारुल और निधि को देखकर भी यही लगता है। परन्तु पारुल का पात्र भले ही उम्र में दिशा से आगे की पीढ़ी का पात्र है परन्तु अपनी सोच में वह नया नहीं है। उसकी सोच और पिछली पीढ़ी के महेश मामा की सोच में कोई बुनियादी अन्तर नहीं है। वह महेश की भाषा ही बोलती है। पारुल और निधि, दिशा के दारुण जीवन के लिए दिशा को ही जिम्मेदार मानती हैं। वे दिशा को उसके चुनाव के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने की बजाय उसकी निन्दा करते रहते हैं। उर्मिला शिरीष इस उपन्यास में बहुत गहरे से इस विरोधाभास को रेखांकित करती हैं।

दिशा दरअसल दो विपरीत दुनियाओं में जीने वाली स्त्री है। एक तरफ राजीव, महेश, पारुल की दुनिया है, जिसमें स्त्री की पराधीनता को, महानता का जामा पहना कर, महिमामंडित किया जाता है तो दूसरी दुनिया वह है जो सन्दीप की दुनिया है। सार्थकता, स्वावलम्बन और प्रेम से भरी हुई दुनिया। दिशा की समस्या यह है कि वह परम्परा से मिली पराधीनता को छोड़ नहीं पाती है और अपने द्वारा चुनी गयी दुनिया में बस नहीं पाती है। उसकी दुविधा उसके अस्तित्व पर

प्रेत-छाया बन हमेशा मँडराती रहती है। उसका प्रतिरोध किसी बड़े विरोध में परिणत नहीं होता अपितु आँसुओं की राह से बहता रहता है।

दरअसल 'चाँद गवाह' स्त्री-जीवन के एतिहासिक संघर्षों की गवाही देता है। उपन्यास बताता है कि भले ही युग-परिवेश, वर्ग और देशकाल बदलता है परन्तु स्त्री का जीवन नहीं बदलता। उपन्यास में दिशा सात कपाट खोलती है। इन सात कपाटों के पीछे स्त्री जीवन के सात अलग-अलग पक्षों की कहानियाँ बन्द हैं। उर्मिला शिरीष सही लिखती हैं कि कहानी जितनी हृदय विदारक होगी, कपाट उतनी ही मजबूती से बन्द होंगे, ताकि उनके पीछे की चीखें बाहर न आ सकें। स्वयं दिशा अपने भीतर का कपाट भी खोलती है। इन कपाटों में से दिखती है बेमेल विवाह की त्रासदी, स्त्री के चुनाव का विरोध, भावात्मक-शारीरिक हिंसा, प्रेम का विरोध, स्त्री की पुरुष पर निर्भरता और समाज का स्त्री की तकलीफों, यातनाओं और विलाप के प्रति बर्बर उपेक्षा का भाव। दिशा की कहानी पाठकों को, स्त्री-अर्न्तमन की यात्रा पर लेकर चलती है। अन्तर्मन की इस यात्रा में अनेक बार हम खीझते हैं। उसके आँसुओं के साथ पाठक पसीजता भी है पर यह भी कहता है कि स्त्री का प्रतिरोध और अधिक मुखर होना चाहिए। पर यह सच है कि समाज में अनेक ऐसी दिशाएँ हैं जो अपने सन्दीप का इन्तजार कर रही हैं। जो मुक्त होना चाहती हैं। सन्दीप-जैसा साथी न भी मिले पर स्त्री को अपने हिस्से की आजादी, अपने हिस्से के सपने, अपने हिस्से की जिन्दगी खुद छीन कर लेनी होगी।

एच-103, सेकेंड फ्लोर
साउथ सिटी-2, सैक्टर-50
गुरुग्राम, हरियाणा-122018

मुझे जुगनुओं के देश जाना है : सबाहत आफरीन

ज़िन्दगी में यकीन की कहानियाँ

मनीषा कुलश्रेष्ठ

सबाहत की लेखनी से मैं परिचित रही हूँ, जब वे नीलेश मिश्रा शो के लिए लिखा करती थीं। एक नफीस भाषा, गहरी रूमानियत में डूबे-डूबे कथानक।

उनकी कहानियों की किताब 'मुझे जुगनुओं के देश जाना है' हाल ही में रुझान पब्लिकेशन से प्रकाशित हुई है। निश्चय ही इस किताब का हिन्दी कथा-जगत में स्वागत इसकी ताजगी के लिए होगा। नया कहन, नया ढंग।

सबाहत के इस संकलन की कहानियाँ रूमानियत से ऊपर उठती हैं और अपने आस-पास की विडम्बनाओं को चुनती हैं।

इस संकलन की हर कहानी दूसरी की पूरक है मानो आगे की कथा कहती हो। प्रेम इन कहानियों की माला के बीच का धागा है। सबाहत के पास एक परिपक्व कथा-कौशल है जिसमें एक बहाव और उचित ठहराव दोनों है।

निषेध का बोर्ड लगे प्रेम के रास्तों पर चलने की स्त्री-मन की एक खामोश जिद आरम्भिक दो कहानियों का केन्द्र है। उनके सुखद अन्त आश्चर्य से भर देते हैं, वरना हम विडम्बना दिखा कर अनसुलझे अन्त पर कहानी छोड़ देते हैं। सबाहत की नायिकाएँ 'तन्हा ख्वाब' नहीं देखतीं, आगे बढ़ती हैं। आखिर उनके भी दिल, 'दिल ही तो हैं'।

'दिल ही तो है' कहानी का अंश...

'कई रोज गुजर गये, दिन-मौसम अपनी रफ्तार से बदलते जा रहे थे। अगर कुछ नहीं बदला तो वो थी मेरी किस्मत। बावर्चीखाने में देर से खड़ी मैं आँवले उबाल रही थी। अब्बा निहार-मुँह आँवले का मुरब्बा खाते थे, इसलिए एक साथ कई मर्तबान भरे मुरब्बे बन जाते थे। मेरी नजर यूँ ही खिड़की पर पड़ी जो अब कई रोज से मुस्तकिल बन्द रहा करती थी। मगर खिड़कियाँ बन्द करने से दिल के दरवाजे बन्द नहीं होते, ये राज मुझ पर अब खुला था। बेख्याली में बन्द झरोखों पर नजरें जमाये चौंक पड़ी, किसी की आहट महसूस हुई। पलट कर देखा तो दरवाजे पर सरमद खड़ा था, क्यूँ आया होगा? अमूमन वो बावर्चीखाने में नहीं आता, तो फिर... मैंने रुख फेर लिया और ध्यान से जलते हुए चूल्हे को देखने लगी, हालाँकि पूरा जिस्म कान में तब्दील हो चुका था।'

समाज के सर्टिफिकेटों को हौले-से टुकड़ों में फाड़ डस्टबिन के हवाले करती सबाहत की 'खूबसूरत औरतें' हासिल कर लेती हैं अपनी आत्मा का 'नो ऑब्जेक्शन'

सर्टिफिकेट। वो बड़े ही धीमे सुरों में बारीकी से विरोध का स्वर उठाती हैं। तीसरी कहानी 'खूबसूरत औरतें' में सबाहत लिखती हैं–

'अच्छी सूरतें भी अजाब की मानिन्द होती हैं। जिधर गयीं, उधर लोगों की नजरें टिक गयीं। हँसना-बोलना-खिलखिलाना और दौड़ना-कूदना सब मुश्किल। गुदाज बदन और प्यारी सूरतों वाली औरतें, इन मुश्किल कैफियात से अक्सर गुजरती हैं। किसी के भाई को मुस्कराकर जवाब दे दिया, किसी के शौहर से हँसकर हाल पूछ लिया, फिर तो मुखालिफ सिम्त की तरफ सुनामी आ जाना है।

'अच्छी सूरत वाली के जिस्म के हर रोएँ पे बड़ी पैनी निगाह रखी जाती है, मानो वो बाजार में ऊँचे दामों पे बिकने वाली कोई चीज है, जिसका मोल नहीं दे पाने की बेबसी में लालच से देखना ही कहाँ कम है...

'आलिया कभी-कभी जी भर के मजे लेती। मर्दों की बेकरार निगाहें, उसे छू लेने या उसे कुछ पल देख लेने की बेवकूफाना हरकतें, आलिया को गुरूर से भर देतीं। मगर कभी-कभार वो सख्त शर्मिन्दा हो जाती जब अपने सगे रिश्तेदारों की आँखों में अपने लिए छुपी तलब देखती, गलीज तलब!'

इसी कहानी संग्रह में एक और कहानी है– 'मुझे मंजूर नहीं'। यह कहानी अभी हालिया प्रकाशित 'वनमाली कथा' के नवलेखन अंक में आई थी और इसके बड़े चर्चे रहे। इसकी नायिका महरू सगे रिश्तों के उलझाव में जकड़ी हुई आखिर कह बैठती है– किसी और के फैसले 'मुझे मंजूर नहीं'।

'देखो महरू... ये तीसरी बार हुआ है, चार साल में तीन बार लड़ कर वहाँ से भाग आयी हो। अच्छा, तुम बताओ जरा, किसका मियाँ सेज पे दिन-रात बिठाये रखता है बीवी को? मर्द है, गुस्सा आ गया तो कुछ उल्टा-सीधा बोल दिया। कौन-सी गालियाँ जिस्म पे लगी रहती हैं? किस्मत में आग लगी है मेरी, इधर बाप जिन्दगी-भर दूसरी औरतों की फिराक में रहा, उधर बेटी का ससुराल में गुजर नहीं। पूरे गाँव में अलग ही चर्चे हो रखे हैं। चौधरी नसीर खाँ की लड़की ससुराल में टिक नहीं पा रही। अरे, बेटियाँ अपने घर सजती हैं महरू, इस बात को समझ लो तुम।'

अम्मी जाने कितनी देर तक बकती-झकती रहीं लेकिन महरू गुम-सुम चेहरा लिये अपनी हथेलियाँ देखती रही। उसे अम्मी की इतनी आसान-सी बात समझ में नहीं आ रही थी। वो नहीं देख पा रही थी कि उसका घर कहाँ है? जहाँ वो बैठे और सज जाये... एक उसकी जात की कद्र हो, वो जगह कौन-सी है? वो पूछ नहीं पा रही थी कि वो कौन-सी मिट्टी है, जहाँ उसके जिस्म का पौधा लगाया जाये तो फिर उसे दरख्त बन जाना नसीब होगा। वो कैसी आबो-हवा होगी जो उसे मुरझाने नहीं देगी, उसकी जड़ों को थाम लेगी, उसे बार-बार उखड़ने नहीं देगी।'

सबाहत की कहानियों के संवाद इतने जीवन्त और नफीस हैं कि लगता है आप माजी की मुहब्बतों में गिरफ्तार 'सफर-ए-लखनऊ' पर हैं।

'हाय तौबा! न जाने आँखों की रोशनी को क्या हो गया, सारे बुढ्डे जाने-पहचाने-से लगते हैं। ऐ लानत भेजो सुरैया, बुढ़ापा किसी अजाब से कम नहीं है।' वो धीमे से बुदबुदायीं और शराफत को देखने लगीं, जिसकी नजरें उस लड़की पे जम गयी थीं।

शराफत अली आस-पास से बेखबर लड़की के तफ्सीली जायजे में मशगूल थे। क्या ही अच्छा होता अगर सामने वाली सीट उस लड़की की होती। अभी वो उनींदी आँखों से ख्वाब बुन रहे थे कि वो लड़की और बुजुर्ग सचमुच उनके साथ वाली सीट पर बैठने लगे। शराफत अली खुशी से गुलाबी भी न होने पाये कि सुरैया बेगम की तेज आवाज उभरी– 'अरे, अरे कहाँ घुसे जा रहे हैं? कोई मुसाफिरखाना नहीं खुला हुआ, ये रिजर्वेशन वाला डिब्बा है, रिजर्वेशन वाला।'

उनकी तीखी आवाज के बदले में बड़ा ठहरा जवाब आया– अच्छा! फिर तो सही जगह पर आये हम, गलती से हमारा भी रिजर्वेशन है मोहतरमा।

सफेद कुरते वाले साहब ने सब्र से जवाब दिया तो शराफत अली होश में आये। जल्दी से उठकर उनके बैग वगैरह सेट करवाने लगे। बोले– 'प्लीज आप लोग आराम से बैठ जाएँ, दादी हैं मेरी, समझ नहीं पाई होंगी।'

सबाहत मनुष्यता और उसकी कमजोरियों के मनोविज्ञान को क्या खूब उकेरती हैं! 'जहरीले खत' जब लिखे जाते हैं वह जहर खुद जहरखुरान को लील जाता है। आँख जब खुलती है तब कुछ बचता नहीं।

मेरा हमेशा मानना है कि अच्छी कहानी लिख कर नहीं लिखी जाती बल्कि दृश्यों में दिखा कर लिखी जाती है। दृश्यात्मकता एक ताकत है इन कहानियों की जो बैकग्राउंड सजीव कर देती है, अनार के दरख्त, सहन, मेंहदी के कटोरे, दालान, अपनी सहेलियों के बचपन के पुराने घर याद आ जाते हैं। इसे उर्दू कहानी में मंजर-कशी पैदा करना कहते हैं। सबाहत के पास इसी विरासत की गजब किस्सागोई है।

इस संकलन की सबसे मजबूत और मार्मिक कहानी 'सुख की नींद' है, जो सहज कब मयस्सर होती है।

'अस्मा मुमानी की आँखें बेदार हो चुकी थीं। उन्होंने बेचारगी से रुकैया फूफी को देखा और बोलीं–

'बहुत जमाने से ऐसी नींद नहीं आई, अनवर साब पूरी रात जागते थे और मुझे पुकारा करते, मैं रात में सोना भूल गयी थी आपा। मुझे लगता था अब मैं कभी सो नहीं पाऊँगी मगर... आज वो खामोश हुए तो... आज मुझे नींद आ गयी। कहते-कहते उनकी आँखें आँसुओं से भर गयीं, चेहरा भीगने लगा।'

यह कहानी अन्दर तक हिला जाती है।

आखिरी कहानी 'शहीदुन बुआ और उनकी नाक' बूढ़ी काकी जैसी किसी सरल मगर क्लासिक कहानी से होड़ लेती प्रतीत होती है।

'शहीदुन बुआ औल-फौल बकती रहती, मगर उस जगह से तब तक टस से मस न होती, जब तक उस घर के बने सालन से अपना हलक तर न कर लेती।

बाकी गाँव के लोग मेहनत करते, कमा खा रहे थे। हैसियत अच्छी थी उनकी। कभी बिरयानी, कभी कबाब, कभी कीमा-कलेजी तो कभी कोरमे दो प्याजे बन रहे हैं। मगर निसार दर्जी की मेहनत उसके घर के बावर्चीखाने में कम ही दिखती थी।

निसार यूँ तो सिलाई मशीन पर दिन-भर बैठा रहता, मगर उसकी सीने की रफ्तार वैसी ही थी, जैसे दिन-भर माँगो तो दिया-भर, रात-भर माँगो तो दिया-भर। खैर, निसार की काहिली की बदौलत, उसके यहाँ दाल-रोटी बन जाये, वही गनीमत हो जाती थी। शहीदुन बुआ की नाक तो थी ही ईमानदार, निसार दर्जी के घर की दहलीज, बिना सालन-शोरबे के बुआ क्यों कर पार करतीं।

लेकिन कहते हैं न, बिल्ली के भाग से छींका टूटा। निसार ने अफसर कसाई की बीवी का शलवार जम्पर ऊँघते-ऊँघते कुछ इस अन्दाज का सिल दिया कि अफसर कसाई की बीवी खुशी के मारे निहाल हो गयी। और शुकराने के तौर पर आधा किलो गोश्त निसार के घर भिजवा दिया।

क्या तो जायकेदार तोहफा आया था, निसार की बीवी खिल उठी।'

सबाहत के पास कथानक नये हैं, प्रस्तुतीकरण और शिल्प प्रभावशाली है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात ये है कि ये कहानियाँ हमारे मन के उस हिस्से पर सीधे दस्तक देती हैं जो मनुष्य और उसकी कमजोरियों से जुड़ा है। उस कमजोर हिस्से में धड़कते प्रेम को वे रेखांकित करती हैं जिसे हम हर आयरनी के बरक्स सहेजना चाहते हैं, बनाये रखना चाहते हैं पर विवशता में कई बार उन्हें छोड़ भी देना पड़ता है। और तो और कभी-कभी ऐसा कोई मोहक सपना भी हमारे जीने की वजह बन जाता है।

जिन्दगी में यकीन दिलाने वाली ये कहानियाँ पैरों से तो यहीं, कठोर जमीन पर टहलती हैं मगर जहन को जुगनुओं के देश ले जाती हैं।

❑

मो. 9911252907

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका

ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016
मोबा.: 8269593844, 9893100979
ई-मेल: vanmali@aisect.org, kunal.singh@aisect.org

सदस्यता फार्म

सदस्यता संख्या ..... दिनांक .....

नाम : .....

पता : .....

पोस्ट.....जिला/राज्य.....पिन.....

फोन/मोबाइल : .....ई-मेल: .....

मैं 'वनमाली कथा' का वार्षिक सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ।

माह.....से प्रारंभ वार्षिक सदस्यता शुल्क...../- (मात्र) ड्रॉफ्ट/चेक द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पत्रिका उपरोक्त पते पर भेजें।

(भुगतान 'वनमाली' नाम से देय होगा।)

Bank A/c No. 40865384472, IFSC Code: SBIN0003867

Bank Name: State Bank of India, Branch: Mahavir Nagar, Bhopal (M.P.)

हस्ताक्षर

वार्षिक शुल्क- ₹500

.....✂.....✂.....✂.....

प्राप्ति प्रपत्रक दिनांक.....

नाम :.....पता: .....

प्राप्ति का विवरण : माह..... से प्रारंभ वार्षिक सदस्यता शुल्क..... /- (मात्र)

विक्रय अधिकारी

देशकाल

विश्वरंग 2022

50 देश, 1000 कलाकार, 80 सत्रों का रंगारंग महोत्सव

विश्व शान्ति और सद्भाव यात्रा से शुरू हुआ साहित्य महोत्सव

टैगोर चिल्ड्रन्स पेंटिंग प्रतियोगिता में उमड़ा विद्यार्थियों का सैलाब

बच्चों में छिपी प्रतिभा निखारने के उद्देश्य से विश्वरंग के तत्त्वावधान में और गेट सेट पेरेंट चिल्ड्रंस लिटरेचर, आर्ट एंड म्यूजिक फेस्टिवल के अन्तर्गत स्कूली विद्यार्थियों की रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने के प्रयास के तहत रवीन्द्र भवन में टैगोर चिल्ड्रन्स पेंटिंग कॉम्पटिशन का भव्य आयोजन हुआ। इसमें सरकारी, प्राइवेट एवं पब्लिक स्कूलों के लगभग 2000 से अधिक बच्चों ने भाग लिया। इस अवसर पर 'विश्वरंग' के निदेशक संतोष चौबे ने कहा कि इस तरह की प्रतियोगिताओं में भाग लेने से बच्चों में कलात्मक व मानसिक विकास होता है। इस दौरान उन्होंने छोटे-छोटे बच्चों की अच्छी चित्रकारी देखकर उनके अभिभावकों से बच्चों को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित भी किया। प्रतियोगिता में 500 विद्यार्थियों की पेंटिंग 'विश्वरंग' में प्रदर्शित की गयीं।

मुक्ताकाश में रामायण मंचन की प्रस्तुति

'विश्वरंग' का मुख्य आकर्षण श्रीराम भारतीय कला केन्द्र द्वारा रामायण की प्रस्तुति रही जो कि गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस पर आधारित थी। इसमें कलाकारों ने रामायण के प्रमुख प्रसंगों को नृत्य-नाटिका के रूप में पेश किया। इसमें जहाँ एक ओर भारतीय एवं शास्त्रीय नृत्य की झलक थी तो वहीं दूसरी ओर लोक डांडिया और आदिवासी नृत्यों को भी शामिल किया गया था। विदित हो कि इस समूह द्वारा विश्व-भर में 2000 से अधिक प्रस्तुतियाँ दी जा चुकी हैं। रामायण का निर्देशन शोभा दीपक सिंह द्वारा किया गया है।

याकूब अली की शहनाई

सागर से आये राष्ट्रीय शहनाई वादक, हाजी मोहम्मद याकूब अली खान एवं समूह ने उद्घाटन समारोह में शहनाई की मधुर तान के साथ 'विश्वरंग' में एक अनूठा समाँ बाँधा। मध्यप्रदेश की सरजमीं, सागर के रहवासी, उस्ताद याकूब अली खाँ

शहनाई के मकबूल फनकार हैं। याकूब ने विश्वरंग के साहित्य महोत्सव में अपनी शहनाई से मशहूर गाने 'मोहे रंग दो लाल' और 'याद पिया की आने लगी' जैसे गानों को बजाया। याकूब ने अपनी प्रस्तुति से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

विश्व शान्ति और सद्भावना यात्रा

इस साहित्य महोत्सव का औपचारिक शुभारम्भ विश्व-शान्ति और सद्भावना यात्रा निकालकर किया गया। इस यात्रा में देश-भर के कला प्रेमियों, साहित्यकारों, फनकारों के साथ-साथ सात समन्दर पार के देशों से आये कला प्रेमियों ने हिस्सा लिया। इस अवसर पर असम के 'क्रिस्तेनि ग्रुप' द्वारा मनमोहक बिहू नृत्य प्रस्तुत किया गया। इस बिहू नृत्य से पूरा प्रांगण नृत्यमय हो उठा। प्रेम, शान्ति और सद्भावना का सन्देश लिये कारवाँ ने आगे बढ़ते हुए, कुशाभाऊ ठाकरे इंटरनेशनल कन्वेंशन सेन्टर के प्रांगण में 'भारत के ऋषि वैज्ञानिकों की प्रदर्शनी' का उद्घाटन, फीता काटकर किया।

पुस्तक प्रदर्शनी का भव्य शुभारम्भ

विश्वरंग-2022 के भव्य समारोह के अन्तर्गत 17 नवम्बर 2022 की शाम को कुशाभाऊ ठाकरे इंटरनेशनल कन्वेंशन सेंटर परिसर में पुस्तक प्रदर्शनी का शुभारम्भ किया गया। पुस्तक प्रदर्शनी का शुभारम्भ 'विश्वरंग' के निदेशक संतोष चौबे, ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता वरिष्ठ साहित्यकार प्रतिभा राय और अन्य गणमान्य अतिथियों के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस विशेष अवसर पर अतिथियों द्वारा आईसेक्ट समूह की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं: विश्वरंग संवाद, वनमाली कथा, रंग संवाद, इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये, विश्वरंग 2020-21 कॉफी टेबल बुक और अन्य पत्रिका 'पहला अन्तरा' का विमोचन किया गया। इस अवसर पर विशेष अतिथि प्रतिभा राय ने कहा कि सभी को पुस्तकों से प्रेम होना चाहिए और खासकर युवाओं को तो इससे जुड़ना ही चाहिए। इसी तरह के विचार अन्य अतिथियों ने भी प्रकट किये।

युवा गायिका मैथिली ठाकुर के लोकगीतों से गुंजायमान हुआ विश्वरंग

लोकगीतों के गायन से लोगों के दिलों पर राज करने वाली मैथिली ठाकुर ने 'विश्वरंग' में अपने गीतों से हजारों श्रोताओं को सराबोर किया। एक के बाद एक भजन और लोकगीतों की प्रस्तुति से श्रोता झूमते नजर आये। मैथिली ने रागों का ऐसा समाँ बाँधा कि 'विश्वरंग' की शाम ऐतिहासिक बन गयी। 'विश्वरंग' में देर रात तक मैथिली ठाकुर के लोकगीतों का रंग गूँजता रहा।

'विश्वरंग अलंकरण' से सम्मानित हुए भारतीय भाषाओं के वरिष्ठ रचनाकार

उद्घाटन सत्र में माननीय राज्यपाल श्री मंगुभाई पटेल ने भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्य रचने वाले वरिष्ठ साहित्यकारों डॉ. नन्दकिशोर आचार्य, जयन्त परमार, शरण कुमार लिम्बाले, ए. अरविन्दाक्षन, प्रतिभा राय, सुकृता पॉल और डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी को 'विश्वरंग अलंकरण' से सम्मानित किया।

यह स्त्री-लेखन का स्वर्णकाल है: उषाकिरण खान

पचास वर्ष पूर्व जब हमने पढ़ना शुरू किया और उसके बाद जब लिखना शुरू किया, तब लेखन में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं था, जैसा आज है। कुछ विमर्श उछालने के लिए यह स्त्री-विमर्श का जुमला छोड़ा गया है, जिसमें आज हम सब उलझ गये हैं। लेकिन अब यह घिस चुका है और अपनी समाप्ति की ओर है। उक्त विचार वरिष्ठ लेखिका पद्मश्री उषाकिरण खान ने 'स्त्री-लेखन का समकाल' विषय पर आयोजित परिचर्चा में अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहे। इस अवसर पर अल्पना मिश्र ने अपने विचार रखते हुए कहा कि पूर्वाग्रह के साथ स्त्री को कैसे समझा जा सकता है। स्त्री राजनीति पर बात करती है, समाज में व्याप्त अन्य समस्याओं पर बात करती है लेकिन फिर भी जब बोलने की बात होती है तो स्त्री-विमर्श जैसे विषय आकर खड़े हो जाते हैं। इस दौरान बतौर वक्ता मनीषा कुलश्रेष्ठ, इन्दिरा दाँगी भी मौजूद रहीं।

शिक्षा, संस्कृति और शंकराचार्य पर हुए वैचारिक सत्र

विश्वरंग-2022 टैगोर अन्तरराष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव का दूसरा दिन वैचारिक सत्रों के नाम रहा। इसमें दिन की शुरुआत 'अद्वैतवाद, शंकराचार्य और रूमी' विषय पर चर्चा से हुई, जिसमें विचारक और लेखक पवन वर्मा ने भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं अद्वैतवाद पर चर्चा करते हुए कहा– ''वास्तव में हमें यह बात समझने की जरूरत है कि हमारे यहाँ विचार की परम्परा कितनी बड़ी है। लेकिन अब हम मूल जड़ों से अलग हो रहे हैं और अपने विचारों से भी अलग होते जा रहे हैं। हिन्दू धर्म जीवन-शैली है, इस जीवन-शैली को समझना और उस पर जीवन जीना ही हमारा ध्येय होना चाहिए।'' उन्होंने आदिशंकराचार्य जी के जन्म से लेकर समाधि की समस्त यात्राओं के बारे में बड़ी बारीकी से उल्लेख करते हुए कहा कि शंकराचार्य की दृष्टि को आज विज्ञान पूर्ण रूप से भी नहीं देख पा रहा है, जो उन्होंने वर्षों पहले देख लिया था। उन्होंने कहा कि अद्वैतवाद दर्शन के अलावा भी और 6 दर्शन हैं, जिनकी जानकारी कम लोगों को है। इस दौरान संतोष चौबे ने पूछा कि ब्रह्म सूत्र क्या है। इसके जवाब में पवन वर्मा ने कहा कि ब्रह्म क्या है और ब्रह्मांड क्या है, इसके बारे में जानना ही ब्रह्मसूत्र है। कार्यक्रम की अध्यक्षता 'विश्वरंग' के निदेशक संतोष चौबे ने की।

रामलीला में लक्ष्मण के किरदार ने दिलायी पहचान और बनाया एक्टर: मनोज पाहवा

टैगोर अन्तरराष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव, विश्वरंग का छठवाँ दिवस रंगमंच, सिनेमा, युद्ध और निर्वासन जैसे विषयों के नाम रहा। इस दौरान फिल्म अभिनेता मनोज पाहवा 'रंगमंच और सिनेमा' विषय पर आयोजित एक प्रमुख सत्र में शामिल हुए। यहाँ इला जोशी ने उनकी रंगमंच यात्रा को जाना, जिसमें मनोज पाहवा ने बताया कि किस प्रकार रामलीला में लक्ष्मण के किरदार ने उन्हें मोहल्ले में पहचान दी और फिर थिएटर के करीब ले आया। वहीं रंगमंच से सिनेमा तक की यात्रा और फिर रंगमंच से जुड़ाव पर मनोज पाहवा ने बताया कि मुम्बई जाने से पहले उनकी शादी हो चुकी थी और बच्चे भी थे। सर्वाइव करना था, सो कॉमेडी किरदार करने लगा और कई सीरियल्स में एक्टिंग की। मुम्बई शिफ्ट होने के बाद रंगमंच के स्टेज पर नहीं चढ़ा था। रंगमंच भूल गया था लेकिन जब नसीरुद्दीन शाह मिले तो उन्होंने मुझे रंगमंच करने की सलाह दी। मैं उस समय रंगमंच को लेकर गम्भीर नहीं था लेकिन नसीर साहब ने मुझे एक दिन स्क्रिप्ट लाकर दी तो दोबारा रंगमंच से जुड़ गया। इला जोशी ने मनोज पाहवा से फिल्म के अलग-अलग फॉर्मेट पर चर्चा की, जिसमें मनोज ने बताया कि उन्होंने एड-फिल्म, फिल्म, वेब सीरिज के साथ कई अलग-अलग फिल्मों के फॉर्मेट में काम किया। काम करते-करते कई लोगों से सीखने का मौका मिला। उन्होंने कहा– ''तकनीक पर ध्यान देता गया और आज हर फॉर्मेट पर काम करता हूँ।''

भारत में स्त्री-विमर्श की अवधारणा है ही नहीं

वरिष्ठ कथाकार मृदुला गर्ग का कहना है कि भारत में स्त्री-विमर्श जैसा कुछ भी नहीं है। यह पाश्चात्य अवधारणा है। वह निराला सभागार में लेखकों से बातचीत के सत्र में बोल रही थीं। इस सत्र में युवा कवयित्री नीलेश रघुवंशी से युवा आलोचक अरुणेश शुक्ल ने भी बातचीत की। वहीं कथाकार मृदुला गर्ग से उपन्यासकार महेश कटारे ने बातचीत की। नीलेश रघुवंशी ने अपने ताजा उपन्यास 'शहर से दस किलोमीटर दूर' को केन्द्र में रखकर ही अपनी बात कही। उनका कहना था कि यह उपन्यास एक रूपक की तरह है। विकास के चक्र में स्त्री कहाँ है, इसकी पड़ताल करता चलता है।

प्रवासी भारतीय रचनाकारों ने किया कविता पाठ

'प्रवासी साहित्य: कविता पाठ' सत्र में ब्रिटेन के जय वर्मा ने

अपनी रचना 'चल निकल चलें तेरे गुलिस्ताँ से, कौन जानता है कि राह किधर ले जाये...', न्यूजीलैंड के रोहित कुमार हैप्पी ने 'उसने जन्म दिया मुझे, उसने जीवनदान, दो माओं का लाल मैं, ये मेरी पहचान...' का पाठ किया। इसके बाद शिवांगी शुक्ला ने 'खिड़की पर बैठी हूँ मन को समझाकर, बाबा दफ्तर से जल्दी में घर आकर, जोड़ रही हूँ बीती सारी कड़ियाँ...' का पाठ किया। नीदरलैंड के रामा तक्षक ने 'शिकायत पाती' शीर्षक से 'शिकायत न करो अब कुछ तो समझो, तुम मेरी खामोशी के अँधेरों में और न घसीटो...' का पाठ किया। वहीं, अमेरिका के अनूप भार्गव, अनिल जोशी, विनिता तिवारी और सिंगापुर के विनोद दुबे ने भी रचना पाठ किया।

प्रवासी साहित्य सत्र में हुआ गद्य रचना-पाठ

सत्र की पहली वक्ता के रूप में बोलते हुए नीदरलैंड की ऋतु शर्मा ने एक कविता से अपनी बात शुरू की, बाद में एक कहानी का आंशिक पाठ किया जिसमें एक छोटी लड़की के कुत्ते के खोने का वर्णन है। रूस से आयीं प्रगति टिपणीस ने एक आलेख प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने रूस में हिन्दी अनुवाद, हिन्दी भाषा और संस्कृति की स्थिति आदि पर प्रकाश डाला। लक्जमबर्ग से आये मनीष पांडे ने आपबीती के अन्दाज में विदेश के अपने अनुभव और एहसास साझा किये। इसके अलावा सत्र में अमेरिका से मीरा सिंह, चीन के विवेक मणि त्रिपाठी, अमेरिका निवासी डॉ. नीलम जैन शामिल रहे। सत्र के अध्यक्ष सुरेन्द्र गम्भीर ने अमेरिका में हिन्दी के शिक्षण-प्रशिक्षण तथा शोध और वहाँ होने वाले कार्यक्रमों पर रोशनी डाली।

लोक-आस्था और पर्यावरण

''प्रकृति हमारे ही भीतर तो है। हमारी भीतर नम्रता की नदी है। अहंकार का पर्वत है। वसन्त का मन है। स्थिरता की पृथ्वी है। हम सब प्रकृति में परिवर्तित होने का गुण सीख जाएँ तो सारी दुविधाएँ और समस्याएँ अपने आप समाप्त हो जायेंगी...'' ये बातें डॉ. श्याम सुन्दर दुबे ने 'विश्वरंग' के सत्र 'लोक आस्था और पर्यावरण' में कही। इसी सत्र में अपने वक्तव्य देने के लिए डॉ. दुबे के साथ पंकज चतुर्वेदी, डॉ. साधना बलवटे शामिल हुए और वरिष्ठ ललित निबन्धकार डॉ श्रीराम परिहार ने अध्यक्षता की कमान सँभाली। परिहार ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा कि लोक से ही जीवन जीने की समझ विकसित की जा सकती है और लोक से ही कृतज्ञता का भाव पैदा होता है। प्रकृति के बीच रहना है तो निश्छल, सरल और निष्पक्ष होना होगा।

जनजातीय साहित्य और भारतीय साहित्यिक परम्पराएँ

इस सत्र में डॉ. हीरा मीणा ने आदिवासी साहित्य को सहेजने के लिए जनजातीय भाषाओं को बचाने पर जोर दिया। डॉ. जयन्ती भाई चौधरी ने आजादी के अमृत महोत्सव में जनजातीय साहित्य के लोकव्यापीकरण की योजना को लागू करने पर विचार व्यक्त किये। प्रो. किशोर गायकवाड़ ने गोंड चित्रकारी के माध्यम से आदिवासी परम्परा से रूबरू कराते हुए कहा कि जनजातीय चित्रकारी के हरेक चित्र में एक सम्पूर्ण रचना मौजूद रहती है।

अशनीर ग्रोवर और डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी की बातचीत

'व्यापार के बदलते रूप और मातृ भाषा का प्रभाव' विषय पर आयोजित सत्र में 'भारत पे' के फाउंडर और शार्क टैंक इंडिया के सेलेब्रिटी 'शार्क' अशनीर ग्रोवर शामिल हुए। इस दौरान उनसे 'विश्वरंग' के सह-निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने बातचीत करते हुए कई सवाल किये जिनके जवाब अशनीर ने अपने चिर-परिचित अन्दाज में ही दिये। पहला सवाल करते हुए सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने पूछा कि आखिर अशनीर एक साहित्य महोत्सव में क्या कर रहे हैं क्योंकि यह कोई स्टार्टअप या इंटरप्रेन्योरशिप का मंच नहीं है। इस पर अशनीर ने कहा, ''मुझे भोपाल काफी पसन्द है। यहाँ काफी सारी चीजें हैं जिनका

प्रमोशन होना चाहिए, इसलिए भोपाल आना ही था।'' एक सवाल के जवाब में अशनीर ने कहा कि जहाँ सरकार नहीं है, वहाँ ग्रोथ आसान है। यह बात आईटी और स्टार्टअप सेक्टर में देखने पर सच दिखाई पड़ती है।

शिक्षा और रंगमंच पर हुआ सार्थक संवाद

एक महत्त्वपूर्ण सत्र 'शिक्षा और रंगमंच' पर भी सम्पन्न हुआ। सत्र में मध्यप्रदेश नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक संजय उपाध्याय, फिल्म-कला निर्देशक, जयन्त देशमुख, टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक, मनोज नायर और मशहूर रंगकर्मी और अभिनेता, आलोक चटर्जी मौजूद थे। नायर ने इस दौरान अपने रंगकर्म के शुरुआती दौर को याद करते हुए कहा कि रंगमंच अपने आप में शिक्षा ही है। यह जीवन की शिक्षा है। सत्र में बातचीत के दौरान आलोक ने कहा कि रंगकर्मी को अपना बौद्धिक विकास भी निरन्तर करते रहना चाहिए अन्यथा सब व्यर्थ है। संजय ने कहा कि रंगमंच की शिक्षा मनुष्य को एक ईमानदार मनुष्य बनाती है। देशमुख ने कहा कि बच्चों को कविता और कहानी सुनाते रहना चाहिए। साहित्य से बच्चों को बचपन में ही परिचित करा दिया जाना चाहिए।

ओटीटी के जरिए फिल्मों को दर्शकों तक पहुँचाना हुआ आसान : रसिका दुग्गल

विश्वरंग के अन्तिम दिन सुबह के सत्र 'नयी कहानियों का नया मंच' में मशहूर अभिनेत्री रसिका दुग्गल विश्वरंग के दर्शकों से रूबरू हुईं। डॉ. पल्लवी राव ने सत्र के विषय को केन्द्र में रखकर कई सवाल पूछे। जब उनसे पूछा गया कि शुरुआत कहाँ से और कैसे हुई तो उन्होंने बताया कि वे फिल्म इंस्टीटयूट के बारे में पहले ज्यादा कुछ नहीं जानती थीं लेकिन जब दाखिला लिया और कुछ समय बिताया तब उस जगह के बारे में जान पायीं कि वो जगह कितनी अद्‌भुत है। नये प्लेटफॉर्म के बारे में बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि पहले भी शॉर्ट फिल्म बन रही थीं। फिल्में बन कर तैयार हो जाती थीं लेकिन उन्हें दर्शकों तक पहुँचाना बहुत मुश्किल होता था। उनका डिस्ट्रीब्यूशन ही नहीं हो पाता था। फिल्म बन कर पड़ी रहती थी लेकिन अब ऐसा नहीं है। इतन सारे ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म हो गये हैं। यू ट्यूब भी है। मिलियन्स व्यू एक-दो दिन में ही आ जाते हैं। अब फिल्मों को दर्शकों तक पहुँचाना बहुत आसान हो गया है। उन्होंने मिर्जापुर और दिल्ली क्राइम के अपने किरदारों पर भी बात की।

कम बजट में अच्छा कंटेंट देता है ओटीटी : विशाल भारद्वाज

एक महत्त्वपूर्ण सत्र में 'भारत का उभरता नया सिनेमा' विषय पर लेखक, फिल्म निर्माता विशाल भारद्वाज और एंकर इरफान ने बातचीत की। चर्चा में एंकर इरफान ने विशाल से बदलते सिनेमा पर सवाल किया तो उन्होंने कहा कि जब कोई नयी चीज या तकनीक आती है तो उसमें कई अच्छाइयाँ भी होती हैं और कई बुराइयाँ भी। मैंने ओटोटी में हमेशा अच्छाइयाँ देखी हैं। बदलाव हर दौर में हुए हैं। एक दौर आया जब मुम्बई में बड़ी-बड़ी रिकॉर्डिंग की जाती थीं, जहाँ 50-50 म्यूजिशियन बैठकर संगीत प्ले कर रहे होते थे। लेकिन कुछ समय के बाद म्यूजिक इंडस्ट्री में बदलाव हुआ और नये संगीतकार इंडस्ट्री में उभरकर आये और आज हमारे संगीत को अन्तरराष्ट्रीय पहचान मिली। ओटीटी का आना अच्छा है। फिल्म में समय की बन्दिश है। ओटीटी का सीधा नाता कमर्शियल और इकॉनोमी से है। साथ ही इसमें बजट कम लगता है, अच्छा कंटेंट मिलता है। आज छोटे शहरों में वेब सीरीज बन रही हैं। इसमें सेंसरशिप नहीं है। अनुभव साझा करते हुए उन्होंने कहा कि फिल्म 'मकबूल' की स्क्रीनिंग के लिए सेंसर ने मुझे बुलाया। थियेटर के अन्दर जाते ही वहाँ बैठी एक महिला ने मुझसे कहा कि ऐसी फिल्म क्यों बना रहे हो? इससे क्या फायदा होगा? कई सवाल किये। तो

ओटीटी में इन सवालों से नहीं गुजरना पड़ता है। हाँ, अगर आजादी मिल जाती है तो 90 प्रतिशत तो पहले गन्दगी सामने आयेगी लेकिन समय के साथ अच्छे और खूबसूरत विषय ओटीटी पर दिखाई देने लगेंगे। आज ओटीटी में सब इंवॉल्व हो रहे हैं। रचनात्मकता दिखाई दे रही है। इसके लिए हर एक स्टेट को इंवॉल्व होना भी जरूरी है जो अभी कम है।

सबसे ज्यादा कठिन है सरल लिखना

'विश्वरंग' में 'कहन के नये उपकरण' विषय पर आयोजित सत्र में साहित्यकार उमाशंकर चौधरी ने कहा कि उपन्यास में विवरण बर्दाश्त किया जाता है, लेकिन कहानियों में विवरण स्वीकार किया जाता है। उन्होंने कहा कि सबसे ज्यादा कठिन है सरल लिखना। इस अवसर पर उपस्थित साहित्यकार प्रकाश कान्त ने कहा कि नये समुदाय आ रहे हैं, नये लोग आ रहे हैं नया कंटेंट आ रहा है इसलिए कहानी के उपकरण भी लगातार बदल रहे हैं, यह समय की जरूरत है। साथ ही सत्र में वरिष्ठ साहित्यकार भगवान दास मोरवाल, सतीश जायसवाल, कुणाल सिंह, आनन्द हर्षुल, श्रद्धा थवाईत शामिल रहे। कार्यक्रम में आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा वनमाली शृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित वरिष्ठ कथाकार सतीश जायसवाल की कहानियों पर केन्द्रित 'दस कहानियाँ' पुस्तक का विमोचन भी किया गया।

गेट सेट पेरेन्ट का बाल महोत्सव

बाल साहित्य एवं कला के देश के सबसे बड़े महोत्सव, गेट सेट पेरेन्ट चिल्ड्रंस लिटरेचर, आर्ट एंड म्यूजिक फेस्टिवल का भव्य आगाज, भोपाल के कुशाभाऊ ठाकरे-इंटरनेशनल कन्वेन्शन सेंटर (मिंटो हॉल) में किया गया। इसके पहले दिन विक्रम श्रीधर ने मस्ती भरे अन्दाज में स्टोरी टेलिंग की।

बच्चों ने इंजॉय किया डूडल सेशन

'कडमाड डिजाइन्स' के मन्दार सेते और कविता डिचोलकर ने बच्चों के लिए डूडलिंग सेशन कंडक्ट किया।

हेलेन ओ ग्रेडी ने बच्चों को सिखाया थिएटर

हेलेन ओ ग्रेडी ग्रुप की नीलिमा गुप्ता ने बच्चों को ड्रामा के बारे में जानकारी दी। उन्होंने बच्चों को अपने हावभाव, बातें कहने की कला सिखायी।

स्पेन की सैंटोस ने कराया बच्चों को क्लाउन का एक्सपीरियंस

स्पेन से आयीं मोनिका सैंटोस द्वारा क्लाउनिंग शो किया गया। उन्होंने बच्चों को मंच पर बुलाकर कई गतिविधियाँ कराईं। इस दौरान उन्होंने बच्चों का खूब मनोरंजन किया। बच्चों ने भी इस शो का बेहद आनन्द उठाया। इसके साथ ही अनेक गतिविधियाँ भी आयोजित की गयीं जिसमें नाटक, कार्टून, ऑरिगामी आदि अनेक कलाएँ बच्चों को सिखायी गयीं।

कलाकारों के संघर्षों की पड़ताल करता है नाटक 'बन्दिशें'

कलाकार अपने ऊपर पड़ रहे तमाम दबावों से कैसे निकले? एक कलाकार किन संघर्षों से जूझता है? कला को रोकने वाली कौन-सी बन्दिशें होती हैं और उनसे कैसे पार पाना है? ऐसे कुछ सवालों पर गायन कला के माध्यम से नाट्य प्रस्तुति 'बन्दिशः 20 से 20,000 हर्ट्ज' ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

नाटक की शुरुआत इस प्रकरण से होती है कि भारत की आजादी के सत्तर साल के मौके पर एक नेता के इलाके में एक जलसा है और उसमें कुछ गायकों और गायिकाओं को बुलाया गया है। उनका सिर्फ सम्मान होना है। चम्पा बाई गाना चाहती है लेकिन अधिकारी उसे रोकता है और कहता है कि पुराने दौर के लोक-कलाकारों को यहाँ गाने के लिए नहीं बुलाया है, उनका सिर्फ सम्मान होगा और पैसे भी मिलेंगे। बेनी बाई खुद गाना नहीं चाहती क्योंकि उसने नहीं गाने की कसम बरसों पहले ले ली है।

विश्वगुरू बनने की राह का पहला कदम 'विश्वरंग'

सात दिनों तक चले साहित्य, कला और संस्कृति के संगम का रंगारंग व आतिशी समापन हुआ। इस अवसर पर औपचारिक समापन सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में छत्तीसगढ़ की राज्यपाल माननीय डॉ. अनुसूइया उइके, संस्कृति मन्त्री मध्यप्रदेश उषा ठाकुर, लोक स्वास्थ्य एवं कल्याण विभाग मन्त्री मध्यप्रदेश प्रभुराम चौधरी एवं 'विश्वरंग' के निदेशक संतोष चौबे तथा विश्वरंग परिवार के सभी सदस्य उपस्थित रहे। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि माननीय डॉ. अनुसूइया उइके ने कहा कि विश्वरंग आयोजन में देश-दुनिया की कला, संस्कृति और साहित्य का संगम हुआ है। साहित्य एवं संस्कृति के इस वैश्विक आदान-प्रदान से भारतीय युवाओं को भी, भारत के साथ दुनिया की संस्कृति का ज्ञान होगा। भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को यह आयोजन दर्शाता है। सही मायने में सामाजिकता, कला, संस्कृति के मूल्यों को युवा स्वीकार कर सकें। यह दायित्व साहित्यकारों का है। 21वीं सदी में भारत के विश्वगुरु बनने की राह में 'विश्वरंग' पहला कदम है। मैंने अपने जीवन में अब तक कला, संस्कृति एवं साहित्य पर केन्द्रित ऐसा

कार्यक्रम न कभी देखा है, न कभी सुना है। संस्कृति मन्त्री, मप्र उषा ठाकुर ने कहा कि कई सदियों में संतोष चौबे जैसी महान विभूतियों का जन्म होता है। टैगोर के नाम पर इतना कार्य करना सराहनीय है। कला, संस्कृति साहित्य के संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में काम करने के लिए टैगोर स्वयं भी आशीर्वाद दे रहे हैं, जिसका माध्यम संतोष चौबे हैं।

लोक स्वास्थ्य एवं कल्याण विभाग मन्त्री, मप्र प्रभुराम चौधरी ने कहा कि विश्वरंग-जैसे आयोजन से वैश्विक स्तर पर भाषाओं के साथ संवाद स्थापित होता है। उन्होंने कहा कि विश्वरंग खुशियों के रंग भरने वाला आयोजन है। यह भारतीय कला-संस्कृति एवं साहित्य को विश्व-पटल पर ले जाएगा। विश्वरंग की सह-निदेशिका डॉ. अदिति चतुर्वेदी वत्स ने पुस्तक यात्रा से लेकर विश्वरंग के समस्त कार्यक्रमों की विस्तार से जानकारी महामहिम को दी। गेट सेट पेरेंट के चिल्ड्रंस लिटरेचर आर्ट एंड म्यूजिक फेस्टिवल की निदेशक डॉ. पल्लवी राव चतुर्वेदी ने बाल-महोत्सव की पूरी जानकारी दी और बच्चों के उत्साह को रेखांकित किया। 'विश्वरंग' के सह-निदेशक डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने आभार प्रकट किया।

शिल्पा राव के गीतों से 'विश्व रंग' का हुआ खूबसूरत समापन

सिने जगत की युवा पार्श्वगायिका शिल्पा राव की प्रस्तुति से 'विश्वरंग' का समापन हुआ। उन्होंने 'मौला मेरे' की प्रस्तुति से कार्यक्रम का आगाज किया तथा अपनी पसन्द और श्रोताओं की फरमाइश के गीत गाये।

❑

प्रस्तुति : ज्योति रघुवंशी

अपने शहर-कस्बे की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों की सचित्र (जेपीईजी फॉर्मेट में) रिपोर्टें प्रकाशनार्थ भेजें। ईमेल करें– vanmali@aisect.org, सब्जेक्ट में 'देशकाल के लिए' अवश्य लिखें।

अन्ततः

सत्कथा कही नहीं जाती

मुकेश वर्मा

वाकया अभी हाल में सम्पन्न हुए 'विश्वरंग' महोत्सव के एक सत्र का है। परिचर्चा का विषय था– समकाल में स्त्री-लेखन। श्रद्धेय उषाकिरण खान, अल्पना मिश्र, मनीषा कुलश्रेष्ठ, इन्दिरा दाँगी आदि विदुषी लेखिकाओं का जीवन्त और उल्लसित जमावड़ा था। चर्चा शुरू हुई तो रस्मी तौर पर अपनी गति से चलने लगी और धीरे से उस मचान पर ठहर गयी जहाँ से पुरुषों की इस प्रवृत्ति को निशाने पर लिया गया कि वे चाहे समकाल के लेखक हों या आलोचक, पाठक हों या सम्पादक, उन सबके मन के भीतर के मन में यह धारणा बार-बार प्रबल होकर गूँजती है कि महिलाएँ खुद से कभी कुछ नहीं लिख पाती हैं और उनकी रचनाओं के बनाव, रचाव और रखरखाव में किसी न किसी पुरुष का सहानुभूतिपरक योगदान तो निश्चित रूप से होता है सो होता है। इति।

सभा में सर्वसम्मति से अधिक मति से माना गया कि यह स्त्री की मेधा और मनीषा पर कुटिल प्रहार है और वास्तव में मर्दों की अहसासे-कमतरी है। यही वजह है कि पुरुष-प्रधान समाज की घटिया मानसिक दुनिया में स्त्री-लेखन को वास्तविक रूप से पहिचाना नहीं जा रहा बल्कि उसे 'इग्नोर' किया जा रहा है और उसके अवमूल्यन के 'हिडन एजेंडे' कूटगति से कार्यशील हैं।

यह आत्मीय बातचीत गर्मागर्म चल रही थी और पुरुषों के पाखंड के पुर्जे-पुर्जे उड़ाये जा रहे थे कि मुझ पर बुरे वक्त की मार कि हमेशा की तरह गुनहगार की कैफियत में बीच कचहरी में पहुँच गया। चूँकि मैं इस सत्र का संयोजक था और विषय का चयन भी मेरे द्वारा किया गया था, साथ ही, अपने दायित्वों के निष्पादन के अधीन मुझे कुछ कमरों में जाकर हाल-चाल भी जानना था। लेकिन यहाँ तो लोहा था और हथोड़ों की जद और हद में मैं बेबस आ गया। सभी महिला लेखिकाओं ने निराकार को छोड़ साकार को धर दबोचा और इस बात पर डाँटा-फटकारा गया कि इस तरह के जेंडर बायस विषय रखना उसी कुत्सित मानसिकता का मन्तव्य है जो स्त्री-लेखन को दोयम दर्जे का लेखन सिद्ध करना चाहता है और एक किस्म के आरक्षण देने का स्वाँग रचकर साहित्य में पुण्य-अर्जन करने का मनोरथ पालता है। उनका समवेत स्वीकृत अध्यादेश था कि साहित्य सिर्फ साहित्य होता है। उसमें स्त्री-पुरुष का भेद रखना मूर्खता और नीचता का मिश्रित विचार मूलतः घृणित है।

मैं भी इस आप्त-वचन से पूर्णतः से अधिक सहमत था लेकिन उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं था क्योंकि ऐसे वक्त जब आपकी पिटाई हो रही हो तब कोई नहीं जानना चाहता कि आप उनके ही समर्थन में कितनी बढ़िया बातें कह रहे हैं।

मैंने उन सभी आदरणीयाओं को प्रणाम किया और लगभग भागा। तब मेरी समझ में आया कि अहा, विनम्रता में कितनी

मैंने उन सभी आदरणीयाओं को प्रणाम किया और लगभग भागा। तब मेरी समझ में आया कि अहा, विनम्रता में कितनी शक्ति होती है, इतनी तो निश्चित ही कि आप पिटने से अधिकतम बच सकें। थोड़ा बहुत पिट जाना और अक्सर पिट जाना एक नागरिक के लिए सहज-सामान्य है। ऐसी हर स्थिति में भला नागरिक विचार करता है और फिर सो जाता है।
मैंने भी सोने के पहले विचार किया और पाया कि उनका रोष गलत नहीं है।

शक्ति होती है, इतनी तो निश्चित ही कि आप पिटने से अधिकतम बच सकें। थोड़ा बहुत पिट जाना और अक्सर पिट जाना एक नागरिक के लिए सहज-सामान्य है। ऐसी हर स्थिति में भला नागरिक विचार करता है और फिर सो जाता है।

मैंने भी सोने के पहले विचार किया और पाया कि उनका रोष गलत नहीं है।

क्या यह दुनिया अन्याय, अत्याचार और शोषण की बुनियाद पर नहीं बनी है? जब सृष्टि में कुछ भी न था, तब सबकुछ था। धीरे-धीरे इसे ज्यादा से ज्यादा सुख और सुविधाओं से भरने, आराम से रहने और इत्मीनान से बिताने के लिए कितना कुछ नहीं किया गया! घर-समाज बनाया, खेती की, व्यापार जमाया, युद्ध किये। साहित्य और कला का संसार रचाया। गीत-संगीत-नृत्य-नाटक-चित्रकला और अन्यान्य कला-उपक्रमों से वातावरण सजाया। तकनीक का सहारा लिया। कहने का मकसद क्या-क्या न किया!

लेकिन क्या उस पाप से छुटकारा पा सका जो उसने दुनिया की आधी आबादी के साथ किया, आज भी करता आ रहा है और उसे इस घोर अपराध के लिए उसे न तो लज्जा है, न क्षोभ और न प्रायश्चित, जबकि इस दौरान उसने अपने घर-दुकान-विद्यालय-विधानालयों को ईश्वर, सत्य, न्याय, समता, प्रेम, कृतज्ञता, परोपकार आदि जैसे बड़े-बड़े दिग्गज शब्दों के अवशेषों से इस कदर भर लिये कि उनके छप्पर टूटने को आ पड़े और जो भाँति-भाँति के दर्शन, विचारधाराओं और ज्ञान की बैसाखियों के सहारे ढहने के पहले किसी तरह खड़े हैं।

इस सनातन अन्याय को दुनिया के हर कोने में घोषित-अघोषित वैधता दी गयी और पुरुषों ने अपनी शारीरिक शक्ति और बर्बरता के बल पर ऐसी व्यवस्था कायम की जिसमें यह सब सहज स्वीकार जीवन की सामान्य गति मान लिया गया। सदियों से इसी के अनुरूप पारिवारिक प्रणाली, सामाजिक संरचना, सारी शिक्षा, धर्म का रख-रखाव, सांस्कृतिक व्यवहार, परम्पराएँ, मनोवैज्ञानिक प्रभाव और दबाव और मनोवृत्तियों का सन्धारण तथा संचालन कूट-कुटिलता से किया जाता रहा। जब कभी इस आसानी में कोई विघ्न या व्यवधान आया तो पूरा समाज किसी भीतरी चेतना और सामरिक निपुणता से व्यग्र होकर असहनीय आपदा के शमन और दमन के लिए नृशंसतापूर्वक तैयार और तत्पर हो जाता जिसकी गवाही इतिहास के खून से लथपथ पन्ने हर युग में देते रहे हैं।

यह तो उस गुजरे समय की बात हुई जब छल-बल और अत्याचार से निर्मित सामन्तवादी व्यवस्था का कोई समुचित और सुदृढ़ प्रतिरोध नहीं था। आज हालात उतने और उस तरह तो नहीं बदले, लेकिन फिर भी इतने तो बदले हैं कि अब किसी भी अन्याय, अत्याचार और शोषण के खिलाफ पुरजोर तौर पर आवाज उठाई जा सके। नकारात्मकता और सकारात्मकता के मिले-जुले-से वातावरण में हर आवाज सुनी जा रही है, भले ही उसका असर कम हो या बराबर हो या न भी हो। यह शताब्दी खुशकिस्मत है कि समाज के पर्यावरण में गहरे परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं। इसका सबब भी इसलिए है क्योंकि वे प्रतिभाशाली हैं। इतिहास और समाजशास्त्रीय ज्ञान की जानकार। कला और साहित्य की तमाम विधाओं में पारंगत। आत्मविश्वास से परिपूर्ण। उनका अनुभव-संसार विस्तृत और अनोखा है। उनकी अनुभूतियों में गहन गम्भीरता है। कल्पनाओं में नवाचार की खुशबू है। उनकी संवेदनशीलता सीधे मर्म को छूती है।

आधी आबादी के सच को देखने, समझने और सीखने के प्रयोजन से इस बार 'वनमाली कथा' का यह अंक प्रस्तुत है जिसमें वरिष्ठ कथाकार से लेकर एकदम नयी लेखिका की रचनाधर्मिता के आस्वाद के जरिए अपने समय और समाज को जानने की एक मामूली कोशिश की गयी है।

हम आधी आबादी के तमाम उमंग, उत्साह और उपक्रमों को नव वर्ष की शुभकामनाओं के साथ उन्हें प्रणाम करते हैं और उनके साथ-साथ चलते हुए इस जीवन को कुछ बेहतर बनाने का जतन करते हैं।

मो. 9425014166

कथादेश

भारत के हिन्दी कथाकारों पर केन्द्रित कथाकोश

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग
BHOPAL (INDIA)

प्रधान संपादक **संतोष चौबे**

आईसेक्ट पब्लिकेशन

'कथादेश' के सम्पूर्ण सेट का मूल्य 17,820 रु. है। जिस पर निर्धारित छूट देय होगी।

कथादेश के खंड निम्न समूहों के अनुसार भी क्रय किये जा सकते हैं :

धरोहर

(धरोहर, प्रेमचंदोत्तर कहानी-1 व 2)

तीनों खंड एक साथ 2970 रु. (छूट के साथ 2200 रु.)

नई व साठोत्तरी कहानी

(नई कहानी-1 व 2 तथा साठोत्तरी कहानी-1 व 2)

चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

समकालीन कहानी

(समकालीन कहानी-1, 2, 3, 4, 5, 6 व 7)

सातों खंड एक साथ 6930 रु. (छूट के साथ 5200 रु.)

युवा कहानी

(युवा कहानी-1, 2, 3 व 4)

चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

डाक से मँगाने पर डाक खर्च अलग से देय होगा।

'कथादेश' प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-4851056, 8818883165
E-mail : aisectpublications@aisect.org, mahip@aisect.org

आईसेक्ट लिमिटेड

स्कोप कैम्पस, एनएच-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047
फोन : 0755-2432801, 2432830

'कथादेश'
अमेजन व आईसेक्ट ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध है

आईसेक्ट पब्लिकेशन

फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली द्वारा एक्सेलेंस इन बुक प्रोडक्शन के 6 पुरस्कारों से सम्मानित प्रकाशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा
कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं
अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

विशेष : शोध पर आधारित पुस्तकों के प्रकाशन में अग्रणी संस्थान
(विश्वविद्यालयों के फैकल्टी एवं छात्रों के लिये विशेष स्कीम)

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

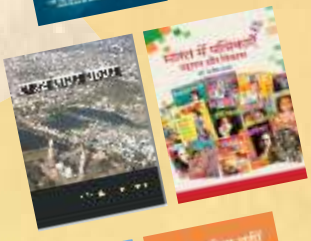

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : मो.+91-8818883165
- अधयक्ष, वनमाली सृजनपीठ : मो.+91-9425014166
  ई-7/22 अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16 फोन- 0755-4851056
- E-mail : mahip@aisect.org, aisectpublications@aisect.org

www.rntu.ac.in

RNTU

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™
MADHYA PRADESH, BHOPAL

#futureready

Your dependable partner in your career development.

For over a decade, we have been preparing our students to become the leaders of the future. We offer not only quality education and a holistic development but, a platform where one gets an NEP aligned curriculum with different skill courses while making them industry ready along with developing their communication and personality, to become **#futureready!**

Featuring

- India's First Skill University
- 20 Centres of Excellence
- 52-Acre Green Campus; World-class Infrastructure
- International and Corporate Partnerships
- 56 Start-ups Incubated under AIC (NITI Aayog)
- Shiksha Mitra Scholarship on Merit

Courses Offered

Engineering & Technology | Humanities & Liberal Arts
Law | Management | Agriculture | Commerce | Science
Computer Science & IT | Nursing & Paramedical Science
Education | Bachelor of Vocational | Master of Vocational
Ph.D. in selected subjects through separate entrance tests

Integrated courses in association with

AISECT Future Skills Academy · N·S·D·C National Skill Development Corporation · Red Hat · coursera · MICRO FOCUS · Hewlett Packard Enterprise · BOSCH · DAIKIN

Start-up Incubation Centre

AIC-RNTU

Honoured for hard work

- Rank Band 101-150 in Universities — nirf 2021
- Ranked 186 in Engineering — nirf 2021
- 1st Ranked Private University 2021 in Bhopal — INDIA TODAY
- 1st Ranked Private University in Madhya Pradesh 2021 — Outlook

ZEE Education Excellence Award 2020

Best Physio Excellence University Award 2022

World Education Award 2016 (Dubai)

Madhya Pradesh Gaurav Samman 2019

More than 500 companies for placements and internships (Offering upto 15 LPA)

paytm · KUNI · hitech · IFFCO KISAN · Tech Mahindra · TATA · Us · HCL · WIPRO · genpact · Netlink

Want to unlock your potential?

Rabindranath Tagore University: Bhopal– Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, Madhya Pradesh, India
City Office: 3rd Floor, Sarnath Complex, Opposite to Board Office, Link Road No. 1, Shivaji Nagar, Bhopal– 462016 | **Email: info@rntu.ac.in**

Call us:
+91-755-2700400, 2700413
+91-755-4289606

ADMISSIONS OPEN